



रामकान्यधारा अनुसधान एव अनुचितन



रामकाव्यधारा अनुसंधान एवं अनुचितन

•

डा० मगवती प्रसाद सिंह

भाचाय तथा अध्याय, हिंदी विभाग,  
गोरखपर विश्वविद्यालय, गोरखपर

**लोकभारती प्रकाशन**

15-ए, महात्मा गांधी मार्ग, इलाहाबाद-१

लोकभारती प्रकाशन  
१५ ए, महात्मा गांधी मार्ग  
इलाहाबाद-१ द्वारा प्रकाशित

•  
कापीराइट

डा० भगवती प्रसाद सिंह

•  
प्रथम संस्करण १९७६

•  
लोकभारती प्रेस

१८, महात्मा गांधी मार्ग  
इलाहाबाद-१ द्वारा मुद्रित

मूल्य ३०००

‘भायप भगति’  
के साक्षात् स्वरूप  
परलोकवासी  
दादा जोधार्सिंह  
को  
अर्पित



## आत्मनिवेदन

राममक्ति-साहित्य से मेरा सम्बन्ध चन्दन-पानी का रहा है। सबसे ? कह नहीं सकता। उससे सम्बन्ध में पढ़ने-लिखने का रुचि, पढ़ने-लिखने में गति हाने का साथ ही अकुरित हुई, किन्तु इस क्षेत्र में अनुसंधान की प्रवृत्ति आचार्य स्व० प० रामचन्द्र शुक्ल की प्रत्यक्ष प्रेरणा तथा तपानिधि प० चन्द्रबली पाण्डेय के प्रास्ताह्वन से अगो। इसके फलस्वरूप सरस्वती (जनवरी, १९४३) में मेरा प्रथम लेख 'मूर्खरखेत' प्रकाशित हुआ। तुलसी साहित्य के सुधी विद्वानों में उसका जैसा स्वागत हुआ, उससे मुझे परिष्कृत शोध प्रविधि अपनाने में सहायता मिली।

राम काव्य के ऐतिहासिक विकास का अनुशीलन करते हुए तुलसीदास के पूर्ववर्ती तथा समकालीन अनगिनत राममत्त कवियों और काव्यग्रथा का अध्याय मिला। उनमें एक अत्यन्त महत्वपूर्ण ग्रन्थ है—पदमुक्तावली। यह प्रायः विद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर में सुरक्षित है। इसके अन्तर्गत १५वीं तथा १६वीं शती के अनेक निष्पन्न सगुण राममत्तों के पद संग्रहित हैं। उनकी विषय-शैली की मीमांसा करने से आचार्य शुक्ल का यह अनुमान तथ्याश्रित प्रतीत हुआ कि 'सूरसागर पहले से चली आती हुई हिन्दी गीतिकाव्य-परम्परा का एक अत्यन्त विकसित रूप है।' स्वामी रामानन्द से लेकर तुलसी के समकालीन महात्मा अग्रदास और उनकी परम्परा के राममत्तों की पद-शैली की रचनाओं से उक्त विद्या की लोक तथा सत समाज में समान रूप से व्याप्त प्रतिष्ठा प्रमाणित हो गयी। अतः तुलसीदास की जीवनी एवं कृतित्व के अन्तर्गत एक अल्पख्यात तत्त्वा का अनुसंधान तथा विश्लेषण अपनी साहित्य साधना का मुख्य उद्देश्य बन गया। इस मुदीधकाल-व्यापी शोध की अतयाशा में सचित तथ्यों और तत्त्वाओं का प्रकाश में लाने के समय-समय पर अनेक निमित्त बनते रहे। प्रस्तुत ग्रन्थ उन्हीं स्फूर्तिगो का समवेत रूप है।

गहरे अनुशीलन से प्राप्त इन बिलखी हुई मुक्तामणियाँ को सग्रहित करते हुए मेरी दृष्टि इनके माध्यम से यथासम्भव न केवल राममक्ति-काव्य धारा का



शृङ्खलाबद्ध वृत्त प्रस्तुत करने की ओर रही है, वरन् इस शृङ्खला की कुछ अनात और अननुसधानित कडियाँ को विद्वज्जना के समझ प्रस्तुत करने तथा नवीन सदम में सामायत समस्त रामभक्ति-काव्य और विशेषतः तुलसीदास के काव्य का आस्तिक दृष्टि से मूल्यांकन करने की ओर भी रही है। इस लक्ष्य को दृष्टि में रखकर निवन्धा को सकलित, नियोजित एवं व्यवस्थित करने के कारण इनके प्रकाशन का ऐतिहासिक क्रम सुरक्षित नहीं रह सका है। यह तथ्य मेरे साहित्यिक व्यक्तित्व के विकास क्रम को लक्षित करने में बाधक हो सकता है। अतः तत्त्वग्राही पाठकों से मेरा विनम्र निवेदन है कि वे इसके क्षीराश—राम-तत्व तथा उसके आस्वादक सतों की निष्ठा—को ग्रहण कर लें और नीराश—दुराग्रह तथा दृष्टिदोष को भरा अतर्मल धुलने के लिये झाड़ दें।

श्री जानकी नवमी वैशाख शुक्ल ६, स० २०३३  
 सानेत, वेतियाहाता, गोरखपुर।

—भगवती प्रसाद सिंह

## विषय-सूची

क्रमांक	पृष्ठ	
१	आत्मनिवेदन	५
२	सांप्रदायिक रामोपासना का प्रवर्तन	६
३	नाथयोग और रामभक्ति धारा	२७
४	श्री कृष्णार्जुनस पर्वहारी की योगमूला भक्ति	३१
५	मध्यकाल के अल्पख्यात रामभक्तों की कुछ नवप्राप्त रचनाएँ	४१
६	स्वामी अग्रन्त और उनकी अप्रकाशित पदावली	७८
७	अकबर की रामनिष्ठा	१३४
८	तुलसीदास का गुह्यधाम	१३७
९	रामलला नदछू पुर्नविचार	१६५
१०	मानवता और रामचरितमानस	१८६
११	तुलसी की लोकाराधना	२०६
१२	तुलसी का लोकानुभव	२३२
१३	मीराबाई के रामभक्ति-परक पद	२५६
१४	रामभक्ति साधना में योग तत्व	२६४
१५	तुलसी विषयक शोध का मूल्यांकन	२७८
१६	बिहार के रसिक सत	२९२
१७	तुलसीमत और वर्तमान जीवन सघष	३१०
१८	माता प्रागन्तस के कुछ नवप्राप्त छंद	३२०
१९	बाना लक्ष्मीनारायण दास पौहारी	३२५
	पश्चिम (क) मीराबाई के रामभक्ति-परक पद	
	(ख) नामानुब्रमणी	



## सांप्रदायिक रामोपासना का प्रवर्तन

पुराणों में रामावतार की प्रतिष्ठा हो जाने के साथ ही रामोपासना का द्वार उमुक्त हो गया। वाल्मीकि रामायण<sup>१</sup> तथा महाभारत में हनुमान और विभीषण की रामभक्ति का जो वृत्त प्रस्तुत किया गया है, उससे यह स्पष्ट लक्षित होता है कि रामोपासना का बीजारोपण सर्वप्रथम दक्षिण की आग्निवासी जातियों— वानरो, ऋषी तथा अमुरा में हुआ। हनुमान, सुग्रीव जाम्बवत विभीषण आदि रामभक्त के रूप में लोकविश्रुत हैं। उत्तरी भारत में इसका प्रसार उन्हीं के माध्यम से हुआ। महाभारत काल में राम के साथ उनके भक्त, विशेष रूप से हनुमान की भी पूजा होने लगी थी। वनपर्व<sup>२</sup> में पांडवा के द्वारा की गई हनुमान-पूजा प्रकारान्तर से रामपूजा अथवा रामभक्ति का ही आनुपंगिक विकास माना जायगा। वाल्मीकि रामायण के अनुसार विभीषण ने ऐदवानुजा के कुलदेव श्रीरग का दिव्य विग्रह विमानसहित अयोध्या से लाकर श्रीरगनाथ धाम में कावेरी की दो धाराओं के बीच स्थापित किया था। श्रीवैष्णव संप्रदाय में श्रीरग राम में अभिन्न और श्रीरगधाम वैष्णवभक्ति का प्रमुख केन्द्र माना जाता है। ऐतिहासिक काल में शठकोप, कुलशेखर आदि प्रमुख आलवारों तथा नाथमुनि एवं रामानुज जैसे अग्रणी वैष्णवाचार्यों को रामभक्ति का प्रसाद इसी दिव्यधाम में प्राप्त हुआ था।

व्यक्तिगत साधना में रामोपासना की यह परंपरा गुप्तकाल में अबाधरूप में चलती रही। महाकवि कालिदास ने अपने समय में 'रामगिरि'<sup>३</sup> की रामतीर्थ रूप में प्रतिष्ठा का संकेत दिया है। गुप्तकालीन इतिहास में भी चंद्रगुप्त की पुत्री प्रभावती गुप्ता को 'भगवत रामगिरि स्वामिन्' की उपासिका कहा गया है। वराहमिहिर ने भी बृहत्संहिता में नाशरथिराम की उपासना के प्रचार की चर्चा की है। यह क्रम प्राचीन पांचरात्र संहिताओं के निमाणकाल (चौथी से आठवीं

१ वाल्मीकि रामायण उ० का० ४०/१४ १७

२ महाभारत वनपर्व १४८/१६ १७, १८, २०

३ महाभारत वनपर्व १५१/१५, १६, १७

४ मेघदूत १

५ दि कलासिद्ध एज, पृ० ४१७

## १० रामका मधारा—अनुसधान एव अनुचिंतन

शताब्दी) तक किसी प्रकार चमता रहा, इसका पता अद्विबुध्ममहित्रा के कति-  
पय उल्लेखों से लगता है।

यह द्रष्टव्य है कि प्रवतन काल से लेकर आठवीं शती तक रामोपासना  
व्यक्तिगत साधना के क्षेत्र में ही विद्यमान रही। उसका सांप्रदायिक रूप इसके  
परचाव विकसित हुआ। सांप्रदायिक साहित्य का प्रणयन भी तभी से आरंभ  
हुआ। श्री वैष्णव ऐतिहासिक काल में अपनी परंपरा का सूत्रपात शठकोप  
आलवार (नवीं शती) में मानते हैं। रामानंदीय संप्रदाय का प्रवतन श्रीगप्रदाय  
के ही अन्तर्गत हुआ। अतएव रामभक्त भी शठकोप जो ही अपना प्रथम आचार्य  
कहते हैं। इस प्रकार रामभक्ति की सांप्रदायिक धारा का प्रवाह नवीं शती से  
आधुनिक काल तक अविच्छिन्न रूप में पाया जाता है।

### आलवारों की रामभक्ति

गुप्त साम्राज्य के पतन के परचाव उत्तरी भारत में भागवत धर्म का ह्रास  
होने लगा। उनके परवर्ती शासक मिहिरकुल यशोधर्मन् और हर्षवधन वैष्णवैतर  
धर्मों के अनुयायी थे। अतएव आर्य और प्रोत्साहन के अभाव में, गंगा की  
घाटी तथा मध्यभारत से हटकर, द्रविड देश वैष्णवसाधना का मुख्य गड बन  
गया। आठवीं शताब्दी में आलवारों की पीयूषवाणी से सिंचित हो भक्तिलता  
पुन लहलहा उठी। इनकी संख्या बारह मानी जाती है। जिनमें प्रथम चार  
प्लायगार, भूततार, वे, तथा तिरुमलिशाइ, प्रधानतया नारायण और विष्णु के  
उपासक थे। पाँचवे आलवार शठकोप थे। वे नमालवार के नाम से भी जाने  
जाते हैं। आलवारों में इन्हीं की सर्वाधिक प्रसिद्धि हुई। इनकी 'सहस्रगीति' में ही  
दाशरथि राम की अनन्य शरणागति का सर्वप्रथम उल्लेख प्राप्त होता है।  
'दशरथस्य सुत त विना अदशरणवाप्नास्मि' में इनकी यह भावना स्पष्टतया  
व्यक्त हुई है। संप्रदाय में य राम की पादुका के अवतार कहे जाते हैं। अपने  
समय के जिन ३२ त्रिव्यविग्रहों की स्तुति इन्होंने की है, उनमें राममूर्तियाँ भी  
हैं।<sup>२</sup>

बेकटाचल के निरुक्त तिरुपति में श्री रामचंद्र की मूर्ति की स्थापना इन्होंने  
ही की थी। इसका उल्लेख सांप्रदायिक साहित्य में पाया जाता है।<sup>३</sup> सदाशिव-

१ सहस्रगीति, ३/६/८

२ प्रपन्नामृत, पृ० ३६७

३ श्रीराम रहस्यत्रयाय (परि०), पृ० ४३, ४४

सहिता मे कनिषुग मे रामतारक मत्र के उपदेश से सांप्रदायिक रूप मे रामोपासना के प्रचार का श्रेय, इन्ही को दिया गया है । इनकी साधनाभूमि बेंकटा-चल बताई गई है—

कनिकलोद्भवाना च जीवानामनुकम्पया ।  
 दय्यानुबोधित साप्ताङ्गिणु सवजनेश्वर ॥  
 व्रतकृत्या तदा लक्ष्मीलब्धा मत्र पडक्षरम् ।  
 दधी प्रीत्या तदा दधी विध्वक्मेनाय तारकम् ॥  
 बद्धुटागौ पुरा वेदा द्वापरान्त पराकुश ।  
 विध्वक्सेन समाराध्य लभिष्यति पडक्षरम् ॥  
 तत्समीपे महापीठे बद्धुट रङ्गमण्डपे ।  
 जपिष्यन्ति चिर मत्र तारक विमिरापटम् ॥<sup>१</sup>

इसमें रामभक्ति के प्रचार में शठकोप आलवार का महत्त्व आका जा सकता है । उनकी माधुसूयभक्ति की विवेचना आगे की जायगी ।

छठवे आलवार शठकोप के शिष्य मधुर कवि हुए । सांप्रदायिक ग्रन्थों में इनकी जीवनी का जो अंश प्राप्त है, उससे इनका रामोपासक होने में कोई संदेह नहीं रह जाता । प्रपन्नामृत में इनका अयोध्यायात्रा, सरयूस्नान और सीताराम-पूजा का उल्लेख करत हुए कहा गया है कि इन्होंने कुछ दिन अयोध्यावास भी किया था ।

सातवे आलवार केरल के राजा कुलशेखर प्रसिद्ध रामभक्त हुए हैं । रामायण का वे वेना के समान पूज्य मानत थे ।<sup>२</sup> कहा जाता है कि रामचरित में उनकी इतनी आस्था थी, कि एक बार क्या मैं व्यास के मुख में खरदूपण द्वारा विशाल

१ यही (सदाशिव सहिता से उद्धृत), पृ० ४४

२ तस्मिन्कालेऽप्य वेदातिस्तस्माद्दरिकाध्रमात् ।

अयोध्यामगमद्दीमाकविमधुरसक्तक ॥

स्नात्वाय सरयून्द्या वेदाती भगवत्पर ।

ससेभ्य सीतासहितमयोध्यारघुनदनम् ॥

कचित्कालभुवासात्र नित्यजासरत सत् ॥ प्रपन्नामृत, पृ० ३६२

३ वेदवेद्ये परे पुंसि जाते दशरथात्मजे ।

वेद प्राचेतसादासीत्साभ्याद्रामायणात्मना ॥

वेदतुल्यमिव सादारणीमद्रामायण परम् ।

काल सतिष्य तद्भक्त्या भगवान्कुलशेखर ॥ यही पृ० २७८

राजसी मना क साथ आस राम पर आक्रमण किए जान का युक्तान्त मुनवर से आवन म आ गर य और प्रभु का सहायता क विण दृष्ट आनी सना का दका बत्रवा लिया था । इसी भाँति एक अरु अक्षय पर मीठाकरण का युक्तान्त मुनउ ही, उनर उदार क निण उहो मँवा पर धावा बान लिया था और सेना सतिन ममु म कू पडे य ।<sup>१</sup>

ताभागत ने मगगम क नाम ग इनका परिये देउ हुए हमका मरा किया है । यियागम १ इहे 'आरग रामभा कहा है । कुनगर क मयय म यह भी प्रसिद्ध है कि उर न राग का प्ररता म आना गुना उनर प्रसिद्ध श्रीरगदेव को व्याहृ दा था ।<sup>१</sup> आगध्य क प्रति पम अगाथ अनुराग क उगाहण भतिमाहिय म लुभ है ।

रामभक्ति क र भाव कुनगर की कृतिमा म भी अराजित हुए । तमिम भाग क एकाएक रूपा म उर दारा कलित मगून रामकथा, भतिमाहिय की एक प्रमु र विधि है । एम पानी बर भक्ति क उरगता म आउप्राउ मगून

१ घरी, पृ० २६०

२ तन शक्ति आने सर्वे, अगट प्रम कतिपुग प्रपात ।

भरतदाग हुक भूर भवन तापहर कीनी ॥

मार-मार करि तरुग कर्म तागर में बीनी ।

कर्मण को अनुकरण होइ हिरण्युग मारुयो ॥

बने मने बाराय राम सिरण तन दारुयो ॥

अभ्यमान मरीर (कर्मण) पृ० ३३७

रामचरित क दशन होन हैं । आरम्भ म अयाव्या और राम की स्तुति करके आठवे छंद तक राम क राज्याभिषेक की कथा बही गई है । इसके पश्चात् सीता के भू-प्रवेश का उद्देश्य पृथ्वी मे अपने अणुपरमाणुवा का मिनाकर लवकुश के समान रामयशगायको को जन्म देना बताया गया है । दसवे छंद म उनकी सेवा म गरुड की नियुक्ति का कारण भक्तो की रक्षा बही गई है । ग्यारहवे श्लोक म राम के मंत्री और दूत हनुमान की बदना की गई है । अंत में राम का गुणगान करने वाले भक्ता को परम पद की प्राप्ति का अधिकारी कहा गया है ।<sup>१</sup> इस विवेचन से यह सिद्ध हो जाता है कि वस्तुतः माप्रदायिक रामभक्ति की उद्भव-स्थली, द्रविड देश क उपयुक्त आलवार भक्तो की भावसाधना ही है ।

### वैष्णवाचार्यों की रामभक्ति

वैष्णवा के चार संप्रदाया—थी, सनक, ब्रह्म आर रुद्र—मे रामभक्ति के सूत्र केवल श्रीसंप्रदाय और ब्रह्मसंप्रदाय, म ही पाये जान हैं । उसका सांप्रदायिक परम्परा भी इन्ही ने के भीतर पल्लवित हुई । प्रथम के आदि आचार्य नाथमुनि और द्वितीय के मध्व थे ।

### श्रीसंप्रदाय के आचार्यों की रामभक्ति

आलवारा के उत्तराधिकारी श्रीसंप्रदाय के आचार्य हुए । ये उच्चकोटि के विद्वान् होने के साथ ही भक्तिरस के भोक्ता भी थे । आलवारा की भाति इन्होंने विष्णु तथा उनके अवतार म कृष्ण, वामन और तुसिंह के साथ रामावतार म भी अपनी पूर आस्था और तद्विषयक साहित्यरचना म रुचि लिवाई । इसीलिए रामभक्ता म ये पार्वदा के अवतार के रूप मे पूज्य हैं ।<sup>१</sup> वीने श्रीसंप्रदाय मे लक्ष्मीनारायण को ही प्रमुखता दी जाता है, किंतु सीताराम की उनस एकात्मता स्थापित कर इन उलाराशय थोर दीघदर्शी महात्मावा ने सम्प्रदाय के भीतर रामभक्ति के प्रति एक अद्भुत आकर्षण पैदा कर लिया ।

१ प्रपन्नामृत, पृ० २८५

२ देखिये—'पिठमल—तिरुमुडि' (स० पी० कृष्णमाचार्य), पृ० १५४ ५७

३ प्रपन्नामृत, पृ० ४५०

४ थी वैष्णव संप्रदाय के एक मुख्य सिद्धांत यथ—'बहद्ब्रह्म संहिता' में सीताराम और लक्ष्मीनारायण की अभिन्नता विताई गई है—  
तत्रायोध्यापुरो रम्या यत्र नारायणो हरि ।



प्रथम आचार्य नाथमुनि (८२४ ई०—१२४ ई०) थे। य रघुनाथाचाय तथा रमाचाय क नाम से भी जाने जान हैं। 'दिव्य दशा' का पद्यन करते हुए, इन्होंने अयोध्या और चित्रकूट का भा दशन किया था।<sup>१</sup> इनके द्वारा आराधित कोण्ड पाणि राम की मूर्ति बालाजी पर्वत पर बड़े जियरमठ में अब तक विद्यमान है। सर्वप्रथम श्रीरामानुजाचाय ने इसी विग्रह स प्रेरणा प्राप्त की थी। तत्पश्चात् गोविन्दराज ने रामायण की विद्युत, 'भूषण टीका की रचना, इसी स्थान पर, हनुमान जी के समग वैठकर की थी। श्रीमत्यन्नभूषणरम्य शिखरे श्रीमाला सतिधौ' से इसकी पुष्टि आप ही हो जाती है। इनक द्वारा विरचित 'नाथमुनि यागपटल और 'मानसिक ध्यान रामायण नामक दा रामभक्तिविषयक ग्रन्थ बताये जान हैं।<sup>१</sup> इनमे प्रथम के सम्बन्ध में श्री रामदहनराम का कहना है कि उसकी ताताश्रिमठ से प्राप्त ३०० वर्ष पुरानी प्रतिलिपि उपलब्ध है। इसक ५०वे पटल से इन्होंने राममन्त्र-वैभव पर लिखे गय कुछ छन्द भी उद्धृत किये हैं।<sup>५</sup> इसके अतिरिक्त प्रपञ्चामृत में नाथमुनि के महाप्रस्थान का जो वृत्तान्त लिया गया है, उससे रामचरणा में उनकी अलौकिक श्रद्धा व्यक्त होती है। कहते हैं एक दिन नाथमुनि को दूढ़ते हुए दो घनुधर राजकुमार, एक मुदरी और बलवान वानर के साथ, उसके घर आये। उनकी पुत्री से पूछने पर उन्हें पता चला कि नाथमुनि

रामरूपेण रमते सीतया परया सह ॥

आविभूता महालक्ष्मी सीता तु विभवे मता ।

आविर्भाव क्षितौ जाता जानकी दिव्यरूपिणी ॥

व० ब्र० स०, पु० ८४, ८६

१ प्रपञ्चामृत, प० ४५०,

२ श्रीरामरहस्यत्रयाय (परि०), प० ४५

३ वही, प० ४६

४ एवं श्रीरामदेवस्य मन्त्राक्षरघडाकर ।

रां रामाय नम इति मन्त्रराजी मितार्थश्च ॥

ध्यायेदय जगन्नाथ राम दशरथात्मजम् ।

पर ब्रह्मेति सच्चित्य बष्णवस्य विभूतिभि ॥

तत श्रीराममन्त्रस्य षडक्षरनियोगिन ।

रामबीजेन रामस्य परमवप्रदो भवेत् ॥

(श्रीनाथमुनि योगपत्र से उद्धृत)

श्री रामरहस्यत्रयाय (परि०), प० ४६-४७

कहो बाहर गये हैं। अतएव चारो आगन्तुक लौट गये। पिता व घर आने पर पुत्री ने सारा हाल कह सुनाया। नाथमुनि तुरन्त ही उनके दशना के लिए घर स निकल पडे। गाँवो, नगरो, पर्वतो और जगला म दूढते-दूढते जब वे हवाश हो गये, तो आराध्य वा साक्षात्कार लाभ करने के उद्देश्य से उन्हाने परमधाम की यात्रा की।<sup>१</sup>

नाथमुनि के अनन्तर पुडराकाय आचार्यपीठ के अधिकारी हुए। उनका रामार्था नामक रामभक्ति का ग्रंथ दक्षिण के 'दिव्य दशो मे पाया जाता है।<sup>२</sup> तीसरे आचार्य राममिश्र थे। इनकी दो रचनाओ 'रामपदार्थरूपपत्तिस्तोत्र' और धार्मीक-रामायण की 'भावप्रकाश टीका' का ~~नाम है।~~ नाम से ही इनका प्रतिपाद्य स्पष्ट है।<sup>३</sup> श्री राममिश्रक शिष्य 'देवमुनि' मुनि (६१६-१०४० ई०) असाधारण महत्त्व के आचार्य हुए। वास्तव मे श्रीसप्रदाय की स्थापना तथा उसक सिद्धान्ता का प्रवर्तन इही की प्रेरणा का फल था। अपनी प्रसिद्ध रचना 'आलवत्तरस्तोत्र' म, इन्होंने राम की विभीषण स की गई प्रतिज्ञा 'सकृतदेव प्रपन्नाय की दुहाई दी है और अपने पितामह नाथमुनि की अकृत्रिम रामभक्ति का स्मरण दिलाकर, उसी नात से चरणो म स्थान पाने की पात्रता

१ सम्यगवेद्यस्तत्र धामेषु नगरेषु च ।

तौ राजपुत्रौ नाथाय काननेषु च सावरम् ॥

चचार लग्नहृदयस्तेषा सबशने तदा ।

तेषामलभमानोज्य वशन सुमहात्मनाम् ॥

कुत्रापि भूतले योगी क्यचिदपि यत्नत ।

चकुठेऽपि च तान्द्रष्टु यतेपमिति वाद्यया ॥ प्रपन्नामृत, पृ० ४१८

२ श्रीरामरहस्यत्रयाय (परि०), पृ० ४७

३ रामटहलदास जी ने राममिश्र स्वामी के राममंत्रविषयक १० श्लोक 'श्रीराम पदक्षर प्रपत्ति स्तोत्र' से उद्धृत किये हैं। उनमे से नमूने के लिये दो नीचे दिये जाते हैं—

रामायणपरत्वाधप्रतिपाद्यपर स्मृतः

एकातिकाना सेव्योज्य मन्त्रराज पदक्षर ॥

गुह्यक्षीद्रकाकावीन भल्लप्लवगराक्षसान ।

मोक्षो वत्त पुरा येन स मे भ्राता भविष्यति ॥

यही, पृ० ४८

लिखाई है ।<sup>१</sup>

रामानुजाचार्य (१०१६-१११७ ई०) यामुन मुनि क प्रशिष्य थे । इन्होंने अपनी जीवन-प्राप्ता का अविकाश श्रीसप्रणय के सैदान्तिक प्रथा की रचना और प्रचार में बिताया । सप्रणय व अतगत ये अपने नाम-गुणानुसार शप अथवा लक्ष्मण के अवतार माने जात हैं और अहर्निश अप्रज की सेवा ही इनकी निष्ठा बताई जाती है । प्रसिद्ध है कि महापूण स्वामी ने इनका दोगासस्कार रामविग्रह के सामने मोरुह राममदिर (बेकटाचल, निरूपति) म किया था ।<sup>३</sup>

बाल्मीकि रामायण म, इनकी अत्यधिक निष्ठा थी । उसकी चौथीम आधुनिकियां इन्होंने श्रीगुण स्वामी से मनायोगपूर्वक मृनी थी । रामतीर्थों म इनकी भक्ति हमी में, अती श्रीगुण, ही, कि गेह राजा क्रमिकठ द्वारा आजात चित्रकूट का इन्होंने उद्धार किया था । जीर अपोष्या का भी दर्शन करत आय थे । प्रपन्नामृत के अनुसार यादवाचल पर इन्होंने स्वयं राम के लीलाविग्रह सपतकुमार' की स्थापना की थी ।<sup>२</sup> उसमें इनकी अनुरक्ति इतनी ह् हो गयी थी कि आलवारा तथा अय पूर्वाचार्यों द्वारा आराधित श्रीरगदेव को भी ये भूल गय थ । श्रीभाष्य

- १ ननु प्रसन्न सकृदेव नाथ तवाहमस्मोति च याचमान ।  
तवानुकम्प्य स्मरत प्रतिज्ञा मदेकवज्र्य किमिद धत ते ॥  
अकृत्रिम त्वच्चरणारविद प्रेपप्रकर्षयिधिमात्मवतम् ।  
पितामह नाथमुनि विलोक्य प्रसीद मद्भवत्तमचिन्तित्वा ॥

आलवदारस्तोत्र, पृ० ६७, ६८

- २ श्रीरामो भगवापुव तत्र ज्येष्ठो भवद्यथा ।  
तथवाभूत्कलिपुगे श्रीमाल्लक्ष्मणदेशिक ॥ प्रपन्नामृत, ४५०
- ३ सन्निधौ रामचन्द्रस्य कोदडशरधारिण ।  
तप्ताम्या शल्लचक्राम्या विधिनाम्नो कृपानिधि ॥ वही, पृ० ३४  
यह कोदडराम मदिर अब तक विद्यमान है । विशेष विवरण क लिए देखिये—कल्याण, तीर्याङ्क, पृ० ३४६
- ४ वही, पृ० १००
- ५ वही, पृ० ८७
- ६ वही, पृ० १०८
- ७ वही पृ० १५५
- ८ सपत्सुतस्य जनवटिमनोहरस्य लावण्यसपदि निमग्नमना धतोद्र ।  
विस्मृत्य रगपतिमागम भूषरेद्रे तस्यो सुख विविधदास्यपरपराभि ॥  
वही, पृ० १५६

की रचना इसी स्थान पर हुई थी। 'शरणागति गद्य' में राम क प्रति अभि-  
व्यक्ति भाव, इनकी अगाध रामभक्ति के द्योतक हैं।

श्री रामानुज की शिष्यपरम्परा में, कुरेश स्वामी व 'पंचस्तवी', पराशर  
भट्टाय के 'गुण रत्न कोष', लोकाचार्य के 'श्रीवचनभूषण' और देवराजाचार्य के  
'वरवरमुनि शतक' आदि ग्रन्था म पूवाचार्यों की रामभक्ति का अखंड प्रवाह मिलता  
है। इनके पीछे भी श्रीसम्प्रदाय के आचार्य—रुसिंहार्य, ताताचार्य और लक्ष्मी-  
कुमार ताताचार्य रामभक्ति का प्रचार करते रहे। विजयनगर के वीरशैव मतानु-  
यायी राजा विरूपाक्ष (द्वितीय) को 'पंचसंस्कारा' से भूषित कर रामभक्त बनाने'  
का श्रेय श्री रुसिंहार्य का ही है। प्रपन्नमृत के इस उल्लेख का समर्थन तत्का-  
लीन इतिहास भी करता है। विजयनगर के राजा विरूपाक्ष (द्वितीय) द्वारा निर्मित  
'हजारा राममंदिर' उस प्राचीन नगर क ध्वसावशेषों के बीच खड़ा आज भी

१ वही, पृ० १५०

२ 'अपारकारुण्यसौशील्यवात्स-योदायैश्वर्यसौ-दयमहोदधे काकुत्स्थ ।'  
'मा ते भूवत्र सशय अनृत नोक्तपूर्व मे न च वक्ष्ये कदाचन, रामो  
द्विर्नाभिभाषते ।

सकृदेव प्रपन्नाय तत्रास्मीति च याचते ।

अभय सवभूतेभ्यो ददाम्येतद् दत मम ॥

इति मयव ह्युक्तम्, अतस्त्व तत्त्वतो मज्जानदशनप्राप्तियु निस्सशय  
सुखमास्व ।" शरणागति गद्य, पृ० ११, १२

३ नरसिंहार्य इति ख्यात सर्वशास्त्रविशारद ।

रामभक्तो विशेषेण नित्य रामकथाप्रिय ॥

विरूपाक्षस्ततो धीमावीरशिवमतोऽपि स ।

पुत्रमिन्द्रकलत्रादिसहितश्च स नागर ॥

पंचसंस्कारसम्पन्ने बभूव सुमहायश ।

राजांगुलीये श्रीराममुद्रा ददतरा ध्ययात् ॥

श्रीराममुद्रा सवत्र तदा प्रभृति विधुता ॥

प्रपन्नमृत, पृ० ४८५

४ प्रपन्नमृत, पृ० ४७७

५ The Hazara Ram Temple is probably the work of  
Virupaksha II is a -m est but perfectly finished  
example of this style The inner walls of the temple are  
decorated in relief with scenes from the Ramayana

A History of South India  
(K A Nilkantha Shastrī) P 464

अपने निर्माता की रामभक्ति का साक्ष्य दे रहा है।

प्रपन्नामृत म वर्णिन परवर्ती आचार्यों की रामभक्ति सम्बन्धी अनेक कथाओं से यह बात होता है कि पन्द्रहवीं शताब्दी तक विकसित होत-हान श्रीसंप्रदाय के भीतर राम की प्रतिष्ठा इतनी बढ़ गई थी कि आचार्य लोग उनके चरित का गुण-मान ही नहीं करत थे प्रत्युत उनकी विधिवत् पूजा और राममंत्र सहित पंचसंस्कार दीक्षा का भी प्रचार करने लगे थे।

### ब्रह्मसंप्रदाय में रामोपासना

श्री मध्वाचार्य (११६६-१३७३ ई०) के ब्रह्मसंप्रदाय में रामभक्ति का मूल आरम्भ ही से मिलता है। उत्तर भारत की दिग्विजय करके बदरिकाश्रम से वे दिग्विजयी राम की एक मूर्ति दक्षिण ले गये थे।<sup>१</sup> प्रसिद्ध है कि अपने शिष्य नरहरितीर्थ से, १२६४ ई० के लगभग, उन्होंने जगन्नाथपुरी से मूल रामसीता की मूर्ति मंगाई थी। यमवन यही विग्रह उन्होंने अपने अष्ट शिष्या में से एक को दिया था, जिसकी स्थापना उत्तरादिमठ मसूर में 'मूलराम' के नाम से हुई थी। इसके अतिरिक्त उडुपी के 'कनमारमठ' में प्रतिष्ठित रामविग्रह भी मध्वाचार्यप्रदत्त बताया जाता है। काशी में हनुमान घाट पर स्थापित 'मध्वाश्रम', मध्व संप्रदाय की रामभक्ति शाखा की मूल गद्दी—उत्तरादिमठ—में ही सम्बद्ध है।

मध्वाचार्य हनुमान के अवतार कहे जाते हैं।<sup>२</sup> मध्व विजय में रामदूत हनुमान का यशगान किया गया है। सांप्रदायिक परंपरा में, हनुमान की राम-भक्ति सम्बन्धी एक छंद प्रचलित चला आता है, जिसका भाव यह है कि रामाचन

१ बष्पाविजय शविजय (भंडारकर), पृ० ६६

२ मध्व संप्रदाय में मूलराम विग्रह की वदना का श्लोक नीचे दिया जाता है। इससे उसके प्राचीन इतिहास पर भी प्रकाश पड़ता है—

सीतायुक्तमजादिपूजितपद श्रीमूलराम विभुम् ।

राम दिग्विजयाद्यमेवममल शिवशराम सुधी ॥

ध्यासाख्या प्रतिमा सुवशनशिला श्रीविट्टलाचार्या मुदा ।

चक्राकानपि पूजयन् दिजयते म्भ्यप्रमोदो गुह ॥

३ राममंत्र निज कण सुनाया । (५) तत्त्व सलावा ॥

संप्रदाय विधि मूल प्रधाना । आचार्यो रामह हनुमाना ॥

मध्व रूप सोई अवतरिया । मत अभेद जिन खडन करिया ॥

के लिए सांप्रदायिक आचार के अनुसार अजलि म पुण्य धारण करने में जितना प्रयत्न उह करना पड़ता है उतना सजीवनी वूटी समेत द्रोणाचल को उठाकर लाने में भी नहीं करना पड़ा था ।<sup>१</sup> माध्वमत में हनुमान के साथ भीम का भी बड़ी प्रतिष्ठा है । हो सकता है, वायुपुत्र होने से हनुमान के बहुत्व के कारण ही उन्हें यह गौरव प्राप्त हुआ हो । उत्तराद्रिमठ की शाखाओं में राम और हनुमान के साथ उनकी भी मूर्ति पूजा जाती है ।

मध्वाचार्य विरचित 'द्वादश स्तोत्र' में जानकीकान्त राघव की बदना भाव-पूण शली में की गई है ।<sup>२</sup> माध्व-संप्रदाय में रामोपासना के ये बीज आगे चल कर रामभक्ति की स्वतंत्र परंपराओं की स्थापना में सहायक हुए । १८वीं शती के विख्यात रामभक्त निध्वाचार्य रामसखे इसी मत के अनुयायी थे । अथाध्या तथा मैहर (मध्य प्रदेश) में स्थापित गढ़िया की परंपरा अब तक चली आती है । माध्वसंप्रदाय में रामभक्ति का प्रसार मात्र इसी शाखा द्वारा हुआ, जो उसके विशाल स्वरूप का देखते हुए नगण्य ही कहा जायगा । उसकी मुख्य धारा कृष्ण-भक्ति को लेकर चला, गौडीय वैष्णव संप्रदाय अथवा चैतन्यमत भारतीय धर्म-साधना में उसकी सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण देन है ।

### रामायत संप्रदाय की स्थापना

रामानुजाचार्य की परंपरा के बारहवें आचार्य हर्षानन्द स्वामी के समय तक श्रीसंप्रदाय के अन्तर्गत रामभक्ति का प्रचार दक्षिण भारत में हाना रहा । उत्तरी भारत में रामगंगा के भगीरथ बने स्वामी राघवानन्द । ये स्वामी हर्षानन्द के शिष्य थे, जिनका आविर्भाव आचार्य रामानुज की परंपरा में बारहवीं पीढ़ी में हुआ था ।

१ रामाचने यो नयत प्रसून द्वाभ्या कराम्यामभवत्प्रयत्न ।  
एकेन दोष्णा नयतो गिरीन्द्र सजीवनाद्याश्रयमस्य नाभूत् ॥

२ प्रथमो हनुमन्नाम द्वितीयो भीम एव च ।  
पूणप्रज्ञस्तृतीयस्तु भगवत्कायसाधक ॥

३ 'राघव राघव राक्षसशत्रो मारुतिवल्गुभ जानकीकान्त'—द्वादशस्तोत्र (मध्वाचार्य), पृ० ६/४

४ रामानुजाचार्य—गोविंदाचार्य—भट्टाक स्वामी—वेदान्ताचार्य—कलिजित स्वामी—कृष्णाचार्य—लोकाचार्य—शैलेशस्वामी—वरवरमुनि—देवाचार्य—पुरुषोत्तमाचार्य—हर्षाचार्य—राघवानन्द । गलता गढ़ी (जयपुर) की आचार्य

नाभादास के अनुवर्ती राघवदास ने स्वरचित भक्तमाल में इस परंपरा का विशिष्ट आचार्यों का परिचय देने हुए लिखा है—

इस रामानुज का पाटि, पटेठर देवाचारिय ।  
 देवाचारिय के शिष्यो, हस हरियानद आरिय ।  
 हरियानद करि हेत, राघवानद निवाजे ।  
 ताके रामानद महस महिपुर में बाजे ॥  
 अब राघो रामानद के है, अनतानद सिप बडो ।  
 येकास सिप आर है, आदि पधित अनुब्रम पडो ॥<sup>१</sup>

स्वामी हर्षानंद रामोपासक थे। उन्हीं के आदेश से रामभक्ति का प्रचार करने के लिए राघवानंद ने आचार्यपीठ से विदा लेकर उत्तरी भारत की ओर प्रस्थान किया था। वहाँ पहुँचकर इन्होंने अयोध्या, काशी, प्रयाग आदि तीर्थों का पर्यटन करते हुए स्थिति का अध्ययन किया और रामोपासना के प्रसार की पृष्ठभूमि तैयार की। इसके पश्चात् दण्डिण का लौट गया। आचार्य पीठ में पहुँचने पर इन्हें गुरु के देहावसान का समाचार मिला। गद्दी पर गुरुभाई को बैठे दण्डिण उनमें बड़े प्रेम से मिले। यही इनकी माता भी रहती थी। उनका चरण-वन्दन किया। मन्दिर में जब 'पगत' का समय आया तो वहाँ के कर्मचारियों ने इनका आसन पक्ति से अलग लगाया। जिसका कारण यह था कि राघवानन्द जी आचार्य-व्यवहार में वैष्णवमान में भेद नहीं रखते थे। उनका यह सिद्धान्त श्री वैष्णवों की उस गद्दी की सत्ताचार्य-परंपरा के विरुद्ध पडता था। गुरुमाइयो के इस व्यवहार से विभ्रत हो वे काशी चले आये और फिर आज में यही रह कर रामभक्ति का प्रचार करते रहे। पञ्चगंगा घाट पर इनकी मढ़ी का अवशेष आज भी पाये जाते हैं। 'हरिभक्त रसाश्रुत सिंधुमेला' नामक ग्रन्थ में अनन्तस्वामी ने भी राघवानंद का दण्डिण से आकर उत्तर भारत में रामभक्त प्रचार करने की चर्चा की है। इनकी

परंपरा यही है। भक्तमाल में भी गई परंपरा से इसमें भिन्नता केवल ११वें आचार्य के नाम में पाई जाती है। भक्तमाल के अनुसार हर्षादाय देवाचार्य जी के शिष्य थे, किन्तु इससे वे पुरुषोत्तमाचार्य के शिष्य ठहरते हैं।

१ राघवदासकृत भक्तमाल, पृ० ५१

२ गद्दी पर अपर गुरु भाई को बैठे विलोकि,  
 करिक प्रणाम मिले परस्पर घाइकी ।  
 माता तह आई ताके पव सिर नाइ,  
 पाई सुखब असोस लह्यो आनब अघाइक ।  
 मंदिर में तीरथ स पगति में आये जब,  
 सदाचार रीति ते बैठारे बिलगाइ कै ।

'सिद्धान्त पंचतमात्रा'? नामक रचना इधर खोज में मिली है। उससे ज्ञात होता है कि ये योगपरक-सगुण-रामभक्ति के प्रतिपादक थे। अतः इष्टदेव की पूजा में आरती, अर्घ्य, चरणामृत आदि बाह्य उपचारों की आवश्यकता स्वीकार करते हुए भी आंतरिक श्रद्धा को अधिक महत्त्व देते थे। प्रसिद्ध है कि काशी में इन्होंने शंकरमतानुयायी, प्रयागनिवासी, कान्यकुब्ज ब्राह्मण रामदत्त अथवा रामभारती<sup>१</sup> को राममंत्र की दीक्षा दी। यही आगे चलकर रामानंद के नाम से प्रसिद्ध हुए।

## स्वामी रामानंद

स्वामी रामानंद रामोपासना के इतिहास में एक युग-प्रवर्तक आचार्य हैं। उमें एक संगठित तथा स्वतंत्र सम्प्रदाय का रूप देना इन्हीं का काम था। इनके पूर्व श्रीसम्प्रदाय में श्रीराम की प्रतिष्ठा होती हुई भी प्रधानता लक्ष्मीनारायण को ही दी जाती थी। आरंभिक आचार्यों की दृष्टि में दोनों समान रूप से पूज्य थे, किन्तु सम्प्रदाय के प्रसार के साथ उसकी कुछ शाखाओं में भेदपूर्ण व्यवहार होने लगा था। इसके साथ ही वैष्णवाचार्य के निर्वाह की भी समस्या थी। श्रीसम्प्रदाय के भीतर रामभक्तों का यह अपने सहधर्मों अथवा वैष्णवों की अपेक्षा आचार्य-व्यवहार में अधिक उदारता का समर्थक था। स्वामी राघवानंद को इसी कारण आचार्य पीठ से बहिष्कृत होने का दंड मिला था। दोनों वर्गों में कटुता का एक और कारण उपस्थित हो गया था। वह था रामभक्तों की विचारधारा पर नाथ षय का प्रभाव। राघवानंद जी की 'सिद्धान्त पंचतमात्रा' में उसकी पूरी छाप दिखाई देती है। 'सदाचार'-परायण तथा भक्तिप्रधान वैष्णवसम्प्रदाय से सामाजिक एवं व्यक्तिगत आचार को अपेक्षाकृत गौण स्थान देने वाली इस ज्ञानमार्गी शैव साधना का परंपरागत विरोध था। इस प्रकार के मौलिक मतभेदों के कारण अपनी मातृभूमि, द्रविड देश में विकास की सम्भावना न देखकर, रामोपासना, आचार्य पीठ से स विना ही, राघवानंद के साथ उत्तर भारत आई थी। रामानंद के हाथों वह सर्वांग समृद्ध बनी।

देलि अभिमान उर याग बलवान कहो,

करौ शुद्ध वापे जल मधुर बनाइक ॥ २० प्र० भ०, पृ० ११

१ यदे श्रीराघवाचार्य रामानुजकुली-द्वयम् ।

याम्पादुत्तरमागत्य राममंत्र प्रचारकम् ॥

योगप्रवाह, प्रथम स० २००१, पृ० २२ (पाव टिप्पणी) में उद्धृत।

२ २० प्र० भ०, पृ० १२

३ श्रीमद्रामानंद दिग्विजय, भूमिका, पृ० २३



## संज्ञातिक विपतायें

स्वामी रामानंद ने श्रीसम्प्रदाय के विशिष्टाद्वैत दर्शन और प्रपत्तिसिद्धांत का आधार लेकर रामायत सम्प्रदाय का सगठन किया। इसमें उन्होंने कुछ नये विचार रखे, जो पुराने मत के विरुद्ध पड़ते हुए भी सामयिक परिस्थिति के अनुकूल तथा लोकोपयोगी थे। इसकी प्रेरणा उन्हें राघवानंद जी में मिली थी, इसमें संदेह नहीं। उन्होंने श्रीवैष्णवों के नारायणमंत्र के स्थान पर रामतारक अथवा पड़कर राममंत्र को सांप्रदायिक दीक्षा का बीज मंत्र माना ब्राह्मण मताचार की अपेक्षा साधना में आन्तरिक भाव की शुद्धता पर जोर दिया, जाति पति धुआ-धून, ऊच-नीच का भाव मिटा कर वैष्णव मान में ममता का समर्थन किया, नवधा में परा और प्रेमासक्ति का श्रेयस्कर बताया और सांप्रदायिक सिद्धान्तों के प्रचार में परंपरापोषित संस्कृत भाषा का अपेक्षा हिन्दी अथवा जनभाषा को प्रधानता दी। एक आचार्य होने के नाते सांप्रदायिक विचारों के निरूपण में उन्होंने जहाँ एक ओर प्राचीन पद्धति का सत्कार कर 'वैष्णवमताब्जभास्कर' और 'रामाचनपद्धति' की रचना संस्कृत में की वहीं दूसरी ओर रामरक्षास्तोत्र सिद्धान्त पटल ज्ञान लीला ज्ञान निलक और योगचिन्तामणि आदि हिन्दी रचनाओं में तत्कालीन आध्यात्मिक, सामाजिक और राजनीतिक परिस्थितियों से उत्पन्न नवीन आस्थाओं और विचारों को भी स्थान दिया। शैव तथा शाक्त पंथियों के प्रभाव से समाज में तंत्र, मंत्र कीलक-कवचादि तान्त्रिक उपासना के अंगों के प्रति लोगों का आकर्षण तब उन्होंने रामोपासना में भी उनकी व्यवस्था की। रामरक्षा की रचना इसी उद्देश्य से हुई थी। इसी प्रकार नाथपंथी उपासकों के आदर्श पर सत जीवन के प्रत्यक्ष कृत्य के लिए उन्होंने पृथक-पृथक मंत्रों की रचना कर सिद्धान्त पटल का निर्माण किया था। उनके श्रमों की प्रामाणिकता में बहुता को संदेह है। तो भी इतना तो निश्चित ही है कि रामानंद ने जनवाणी का सत्कार करते हुए संस्कृत तथा हिन्दी (तत्कालीन लोकभाषा) दोनों भाषाओं में अपने विचारों का प्रकाशन किया था।

यह सब केवल इस उद्देश्य से किया गया कि रामोपासना युगधर्म के अनुकूल बने और पंथों के दलदल में फँसी हुई जनता का उद्धार करके उन्हें उचित मार्ग प्रदर्शन कर सके।

## सांप्रदायिक सगठन

सांप्रदायिक सिद्धान्तों के प्रवर्तन के पश्चात् उनके प्रचार की समस्या सामने आई। स्वामी रामानंद ने इसे जितनी सफलता के साथ हल किया उससे उनकी

अद्भुत सगठन शक्ति का परिचय मिलना है। इस्लामा शासन के आतंक से प्रस्त उत्तरी भारत के प्रमुख तीर्थों में, उन्होंने अपने केंद्र स्थापित किये। इस नवीन संप्रदाय के अनुयायी वैराग्य कहलाये। ये तीर्थों में जन्म कर रामभक्ति का प्रचार करने लगे। इससे यवन शासकों की असहिष्णुता से प्रेरणाहित मुसलमानों द्वारा नष्ट भ्रष्ट किये जाने से तीर्थों की रक्षा हुई। इसके साथ ही बलपूर्वक मुसलमान बनाये गये हिन्दुओं को रामतारक मंत्र की दीक्षा देकर पुनः हिन्दू बनाने का क्रम भी चलाया गया।<sup>१</sup>

भविष्यपुराण में अयोध्या में आय दिन घटने वाली इस प्रकार की घटनाओं का उल्लेख मिलता है—

भ्लेच्छास्ते वैष्णवाश्चासन् रामानदप्रभावत ।  
सद्योगिनश्च ते तेषां अयोध्याया बभूवुरे ॥  
कठे च तुलसीमाला जिह्वा राममयी कृता ।  
भाले त्रिपुड चिह्नं च श्वेतरक्तं तदाभवत् ॥  
भविष्य पुराण, ३/४/२१

### व्यक्तित्व की व्यापकता

स्वामी रामानंद के द्वारा की गई दश और धर्म के प्रति इन अमूल्य सेवाओं

- १ 'रामानंद की हिंदी रचनायें' के विद्वान संपादक डा० पीताम्बरदत्त बडगवाल का इस सम्बन्ध में कहना है "हिन्दू धर्म से त्रिष्टुब्ध हुए पूवजों को स्वामी रामानंद ने फिर से हिन्दूधर्म की गोद में स्थान दिया था। इसी प्रकार सयोगियों को जिन्हें फजाबाद के नवाब ने बल से मुसलमान बना लिया था, उन्होंने हिन्दू बनाया' (रा० हि० २०, पृ० ३०)। यह विचारणीय है कि नवाब दश के प्रथम सूबेदार सआदत खाँ बुर्हानुल मुल्क की अवधि में निपुक्ति १७३२ ई० में मुगल बादशाह मुहम्मदशाह ने की थी और वह अयोध्या में किला मुबारक (वर्तमान लक्ष्मण किला) नामक स्थान पर रहता था। उसके उत्तराधिकारी दूसरे नवाब शासक, अब्दुल मसूरअली खाँ सफवर जंग (१७३६-१७५४ ई०) ने, फजाबाद को नगर का रूप देकर, उसे अपनी राजधानी बनाया। इस प्रकार रामानंद जी के समय (१४१० से १५१० ई० अथवा १३५६-१४६२ ई०) और फजाबाद में नवाबी शासन के स्थापना काल में ३०० से अधिक वर्षों का अंतर पड़ जाता है। अतएव डा० बडगवाल का उक्त मत प्राह्य नहीं है। हो सकता है अयोध्या के नवाब से उनका तात्पर्य यहाँ के मुसलमान सूबेदार से रहा हो।

ने सभी संप्रदायों के वैष्णवों के हृदय में उनका महत्त्व स्थापित कर लिया। भारत के सांप्रदायिक इतिहास में परस्पर विरोधी सिद्धांतों तथा साधना-पद्धतियों के अनुयायियों के बीच इतनी लोकप्रियता उनके पूर्व किसी संप्रदाय-प्रवक्तक को प्राप्त नहीं हो सकी थी। महाराष्ट्र के नाथपंथियों ने नानदेव के पिता विठ्ठल पंत के गुरु रूप में उन्हें पूजा, अद्वैत मतानुयायियों ने ज्योतिर्मठ के ब्रह्मचारी के रूप में उन्हें अपनाया, बावरीपंथ के सत्तों ने अपने संप्रदाय का प्रवक्तक मानकर उनकी वदना की और कबीर के गुरु तो वे थे ही, इसलिए कबीरपंथियों में उनका आदर स्वाभाविक है। स्वामी रामानंद के व्यक्तित्व की इस व्यापकता का रहस्य, उनकी उदार एवं सारग्राही प्रवृत्ति और समन्वयवादी विचारधारा में निहित है, जिसकी प्रेरणा से सभी जातियों और वर्गों के जिनासुओं को शरण में लेकर उन्होंने प्रकाशमय पथ पर अग्रसर किया था। हिंदू मुसलमान दोनों धर्मों के सत उनके उपदेशों से दृढ़तकृत हुए। उपासना की सगुण और निगुण दोनों पद्धतियों को उनसे विकास की प्रेरणा मिली। उनके बारह प्रधान शिष्यों में इन दोनों प्रणालियों के प्रचारक सत्ता में प्रमुख थे—अनन्तानंद और कबीर। इनमें प्रथम से सगुण और द्वितीय से निगुण धारा का प्रसार हुआ। भारतीय संस्कृति की रक्षा और विकास में उक्त दोनों संप्रदायों का कितना योग है यह किसी से छिपा नहीं है। अतः यदि उनके जन्मदाता की तुलना 'नाभादास' ने सांस्कृतिक आदर्शों के प्रतिनिधि राम<sup>१</sup> से कर दी हो तो अत्युक्ति नहीं कही जा सकती।

### रामभक्ति का प्रसार और रसिक साधना का सूत्रपात

इसी रामानंदीय वैष्णवपरंपरा में तुलसी का आविर्भाव हुआ। वे अनन्तानंद जी के प्रशिष्य और नरहरिदास अथवा नरहर्यानंद के शिष्य थे। यदि रामानंद संप्रदाय के प्रवक्तक का श्रेय स्वामी रामानंद को है तो जन जन तक उनका संदेश पहुँचा कर लोकमानस में रामभक्ति की प्रतिष्ठा और रामचरित के प्रति श्रद्धा का भाव जागरित करना तुलसी का ही काम था। उनके 'मानस' से जो रसलहरी उठी उससे शताब्दियों के राजनीतिक उत्पीड़न, सामाजिक अनाचार और आर्थिक अयवस्था से सतप्त राष्ट्रहृदय तृप्त हो गया।

गोस्वामी जी ने रामचरित के जिस स्वरूप की अभिव्यक्ति अपनी कृतियों

१ बहुत काल वपु धारिक प्रणत जनन को पार दियो ।

श्रीरामानंद रघुनाथ ज्यों दुतिय सेतु जग तरन कियो ॥

मे की, वह ऐश्वय प्रधान है। उनके राम लोकमर्यादा वे रणक, लोकविरापी तत्वा के उमूलक और लोमधर्म वे मस्यापक हैं। मन्तु तुलमी की समकालीन रामकाव्य-धारा म रामोवामना वं एक दूसरे पक्ष वे अस्तित्व वे भी चिह्न मिनन हैं, जिसका ल्शन स्वयं तुलसी की वृत्तिया म भी यत्र-तत्र हो जाता है—वह है रामायत सम्प्रदाय म माधुयभक्ति का उर्क। रामोवामना की इस पद्धति का प्रचार भक्तों वे एक सम्प्रदाय विशेष तक मीमित था। म्द्वान्ता की गोपनीयता के कारण उसका उपदश केवल अतरग और दीमित साधका को ही िया जाता था। अतएव उसका सारा साहित्य आचायपीठो क वस्ता म वधा, अप्रकाशित और अविवेचित ही पडा रहा। उधर तुलसीसाहित्य क प्रचार स रामचरित के ऐश्वय प्रधान अथवा शुक्तजी क शब्दा म 'शील, शक्ति मीन्दय समवित रूप की प्रतिष्ठा लोकन्यापक हो गई। उसक आधार पर जनसाधारण क्या, साहित्य की गति-विधि से परिचित विद्वानो तक की यह धारणा बन गयी कि रामकाय का पर-परागत स्रोत एकमात्र मर्यादायुद्ध अथवा ऐश्वयपरक भक्ति को ही लेकर चला है। माधुयविययक ओ रचनाए उसम यत्र-तत्र उपलब्ध होती हैं वे अत्यन्त अवाचीन, अश्लील और अमर्यान्त हैं।

परन्तु अनुसंधान, स्थिति का एक दूसरा ही रूप प्रस्तुत करता है। इधर इस माधुयनारा का जो साहित्य उपलब्ध हुआ है, उमसे विदित होता है कि गोस्वामी तुलसीदास की पूर्ववर्ती, समकालीन और परवर्ती रामापासना इसी से ओत-प्रोत थी। वास्तव म इस पद्धति के साधक कविया की मर्या इतनी अधिक है कि तुलमी अपने समकालीन भक्ति क्षेत्र म प्रसृत श्रृंगारी रामभक्ति क एक अपवाद स प्रतीत होने हैं। यह दूसरा बात है कि इस सम्प्रदाय म इतनी प्रखर प्रतिभा का कोई कवि अवतरित नही हुआ, जो सूर और मीरा की तरह जनसामाय को भी इस लियरस का आस्वादा करा सकता।

'गुल मरकार श्री मीठाराम' का मधुर लीलाआ क घ्याता और गायक, य सन 'रसिक अथवा भाविक'<sup>१</sup> नाम से जाने जात हैं। इस वग के भक्तो की अपनी एक अलग माधता-पद्धति है और पृथक भक्तमाल भी। परिमाण की दृष्टि से सपूर्ण

- १ दपति मधुर छवि छाके सख्य भाव बाके,  
धूम नृत्यराधव की कला भरे गात हैं।  
भाविक सभा मे गुण आगर रसिक प्रेम,  
सागर समान प्रेम सागर लखात हैं।

रामभक्तिसाहित्य का दो तिहाई से अधिक भाग रामिक भक्तों द्वारा ही विरचित मिलता है और प्राचीनता के विचार से, साम्प्रदायिक विश्वासों के अनुसार, यह कम से कम उतनी ही पुरानी है, जितनी तुलसी को ऐश्वर्यप्रधान भक्तिपद्धति। इसके विकासमूत्रा के अनुशीलन से यह स्पष्ट हो जाता है कि किसी कालविशेष में किन्हीं कारणों से इसका प्रवाह क्षीण भले ही पड़ गया हो, किन्तु स्रोत अभी सूखता नहीं दिखाई दिया।

रामोपासना की ये दोनों धाराएँ आज भी समानांतर बह रही हैं। इनकी गहिराई भारत के विभिन्न प्रदेशों में स्थापित हैं। रामभक्ति के माध्यम से इनके द्वारा राष्ट्रभाषा हिन्दी का अहिन्दीभाषी प्रदेशों में प्रचार तो होता ही है, प्रक्रान्तर से भावात्मक एकता की स्थापना का भी पथ प्रशस्त हो रहा है। इस दृष्टि से रामभक्ति का आध्यात्मिक महत्त्व के साथ परम्परागत सांस्कृतिक मूल्यों की रक्षा में भी विशिष्ट अवदान है।

## नाथयोग और रामभक्तिधारा

महायोगी गोरखनाथ भारतीय अध्यात्मसाधना के ज्योतिस्तम थे। उनकी आचार एवं विचार परंपरा से सारा मध्यकालीन साहित्य ओतप्रोत है। क्या निगुण और क्या सगुण दोनों भक्तिधाराएँ उनकी योग-साधना से प्रभावित हुईं और विषय तथा शैली दोनों क्षेत्रों में उनसे प्रेरणा प्राप्त कर समृद्ध हुई। कबीर और जायसी ने नाथसाहित्य एवं नाथपंथी साधकों से प्रत्यक्ष प्रेरणा प्राप्त की थी यह उनके दार्शनिक विचारों एवं साधनाप्रणाली से स्पष्ट हो जाता है। किन्तु सगुण भक्ति साहित्य में यह प्रभाव प्रतिक्रिया के माध्यम से परोक्षरूपेण अभिव्यक्त हुआ। भ्रमरगीत की रचना करते समय मुरदास के मानसनेत्रों के समान अवश्य ही नाथपंथी योग-साधक रहे हैं। गोस्वामी तुलसीदास को तो नाथयोग का बन्ता हुआ प्रभाव देखकर लोकमानस से भक्तिभावना के सर्वथा लुप्त हो जान की आशंका हाँ चली थी। यह उनके निम्नांकित उद्गार से प्रकट होता है—

गोरख जगायो जोग भगति भगायो लोग,  
निगम नियोग सा सो केलि ही छरो सो है ॥

किन्तु इससे यह भ्रम न होना चाहिए कि रामभक्तिधारा का योगप्रक्रिया से कोई प्रवृत्त विरोध था। वैष्णवधर्म के प्रधान उपजीव्य ग्रंथ भागवत में योग की शारीरिक क्रियाओं को वैधी भक्ति में और मानसिक प्रक्रियाओं को ध्यान में पर्यवसित करके भक्तिसाधना में योगपद्धति की महत्ता स्वीकृत की गई थी। नवधा के पश्चान् दशधा अथवा प्रेमाभक्ति की साधना आराध्य की रसमयी लीलाओं के ध्यान द्वारा ही होती थी। ऐसी स्थिति में नाथयोग का प्रकट रूप में विरोध करते हुए भी परोक्ष रूप में उसके सिद्धांतों का अनुसरण करने से वैष्णव भक्त, चाहें वे रामभक्त हों या कृष्णभक्त, अपने को रोक नहीं सके। इस नये सदर्भ में योग उपासक-उपान्य वे शब्दस्थापना का सर्वोत्कृष्ट साधन बन गया।

रामभक्तिसाधना में योगधारा का अजस्र प्रवाह स्वामी राघवानन्द के समय से मिलता है। उनके शिष्य रामानन्द तथा प्रशिष्य स्वामी अनन्तानन्द से इस भावना के प्रसार में विशेष बल मिला। किन्तु वह पराकाष्ठा को पहुँची थी कृष्णसायपहारी की अलौकिक सिद्धियों के प्रकाश में। पयहारीजी की 'राजयोग'

नामक एकमात्र रचना प्राप्य है। इनकी मुख्य साधना-भूमि गलता और पुष्कर थी। नाभादास वृत्त भक्तमाल प्रियान्तस वृत्त उसकी टीका और रसिक-प्रकाश भक्तमाल में इनकी सिद्धिया का वर्णन करते हुए कहा गया है कि इन्होंने जयपुर के महाराज पृथ्वीसिंह के शासनकाल में तारानाथ योगी को पराजित करके जयपुर दरवार में राजगुरु का पद प्राप्त किया था।

महायोग के चार सोपानों—मंत्र योग, हठयोग, लययोग और राजयोग में अन्तिम होने से राजयोग योगसाधना की परमोत्कृष्टावस्था है। राजयोग का साधक कुडलिनी शक्ति का जागरण द्वारा पटव्रभेदन कर अनाह्वनाद का रसास्वादन करता हुआ ब्रह्मजीव की एकता का रहस्यज्ञान प्राप्त कर मुक्ति की ओर अग्रसर होता है। पयहारी जी ने मुक्ति के लोकप्रचलित चार भेदों—सालोक्य, साभीष्य, सारूप्य और सायुज्य में परे पाँचवीं मुक्ति ध्यानलीन दशा की कल्पना की है और इस पथ का साधक की उसमें स्थिति बताई है। कवीर, दादू आदि निगुण भक्ता की भाँति उन्होंने भी अनह्वनाद का रामनाम की अखंड ध्वनि का पर्याय माना है। भेद केवल इतना ही है कि जहाँ निगुणमार्गी भक्त नाथपरियों के आदेश पर मात्र ज्योति का दर्शन करता है वहाँ पयहारी जी उसका अतमत् अपने जारायगुल 'सीताराम का भी दर्शन करते हैं—

आगे सुपताका उडत देखि । तह मत छत्र छाया सुपेखि ।  
 वासन सफेत् तह अरुन भूमि । पहुँ दिसि प्रकास नहि बरन धूमि ।  
 को बरनि सकत प्रभु को सरूप । रवि कोटि चद छवि ते अनूप ॥  
 नभ नील मेघ इति याम गान । नखि पीत वसन विद्युत लजात ।  
 इमि बसत राम निज सहित राम । सब सत कहत जेहि परमधाम ॥

पयहारी जी का अनुभव था कि इस स्थिति को प्राप्त करने से सारे भवबंधन छूट जाते हैं। यही योग की परम उपलब्धि है—

तह गण मिटत है जम मरण । तेहि हेत जाग जेहि रामशरण ॥'

'राजयोग में अपने शिष्य अग्रदास को वे इस योगसाधना का उपदेश देने हुए लिखते हैं—

प्राणहि अपान ह्त् गाधि डोरि । कुडलिनि आव सम युक्ति जोरि ।  
 तब चलत पवन वह ब्रह्मरथ । तह छोडि जाहि सब त्रिगुण बध ॥  
 उलटे मु इला-पगला नारि । मुपुमना सुद लोजे बिचारि ।  
 पहुँचे सो जवे अनहद गह । राखै मुणक हरि सो सनेह ॥

आठ पहर चौसठि घरी । ररकार घहराय ।

सकन मोह दावा मिटे तब नाना ठहराय ॥<sup>१</sup>

यह सनविदित हे कि गोरखनाथ जी अवतारवाद के विरोधी थे, उन दश-  
रथ-पुत्र राम के प्रति उनकी अनाम्या स्वाभाविक थी—

दस औतार औतिरीया तिरिया, वे णणि राम न होई

कमाई अपनी उनहूँ पाई करता औरै कोई ॥<sup>२</sup>

किन्तु परम्परा से ब्रह्मरूप में सूयवशी महाराज रामचन्द्र को जो प्रतिष्ठा  
प्राप्त हो चुकी थी, उसकी मूल स्वीकृति 'गोरखबानी' के निम्नांकित छन्द में मिलती  
है । इतना ही नहीं पयहारी जी ने रामभक्ति की प्राप्ति के लिए योग-साधना की  
जिस प्रक्रिया की व्याख्या 'राजयोग' की उपयुक्त पत्तियाँ में की है, वह अविकल  
रूप से नाथयोग में मिल जाती है—

मन रे राजा राम होइल नृदद ॥

मूले कमलै राजि ले रविचद ॥

अनहद भौरो भवे तृवेणो क घाट ।

पीयले महारस फाटिलै कपाट ॥

चदा करिले पूटा मूरज करिलै पाट ।

नित उठि धोवी धोवै, तृवेणी के घाट ॥

भरिलै नाडी पोडी, पूरिलै बक नालि ।

बदत गोरपनाथ अवधू, इम उतरिवी पार ॥

पयहारी जी के शिष्यों ने रामभक्ति शाखा में इस योगमूलक सगुण निगुण  
मिश्रित साधना का प्रचार किया । उनके पट्ट शिष्य कील्हदास इसके मुख्य म्त्तम्भ  
मान जाते हैं ।<sup>३</sup> प्रसिद्ध है कि इनकी ध्यान-समाधि इतनी उच्चकोटि की होती थी

१ राजयोग छ० २८ २ गोरखबानी पृ ५४ ३ वही, पृ० ५५

४ गाणेश मृत्यु गज्यो नहीं, त्यों कील्ह करन नहि काल बस ॥

रामचरण चितवनि रहति निसिदिन लौ लागी ।

सथभूत सिर नमित शूर भजनानद भागी ॥

साक्ष्ययोग मत सुदृढ़ कियो अनुभव हस्तामल ।

बहारधर करि गौन भए हरितन करनी बल ॥

सुमेरुदेव सुत जग विदित, भू विस्तारयो विमल जस ।

गाणेश मृत्यु गज्यो नहीं, त्यों कील्ह करन नहि काल बस ॥

भक्तमाल (द्विपकला) पृ० ३१५



कि इस स्थिति में ये सर्वथा बाह्यमान शून्य हो जाते थे। इनकी परम्परा के अवधूतवेष धारण करने वाले साक्षात् विचरणशील एवं स्थानधारी रामभक्त महात्मा आज भी भारत के विभिन्न प्रदेशों में पाये जाते हैं। नाथपंथी अवधूता में इनका पार्यन्त बसल तिलक की भिन्नता में जाना जाता है। इस परम्परा में सम्पन्न अवधूतसत मूज की करधनी, अधारी, विशाल जटाएँ, वस्त्र के नाम पर मात्र केले के मूगे पत्ते, टाट अथवा छत्र अगुल चौड़े कपड़े की लगोती धारण करते हैं। रामोपासना की यह योगाश्रयी शाखा गोस्वामी तुलसीदास की मर्यादावादी लोकमप्रही पद्धति से सर्वथा भिन्न एकान्तिक साधना का आदर्श लेकर चली है जिगमे हृदययोग द्वारा शरीर और प्राण को वश में करने के अनन्तर ब्रह्मजीव की एकात्म्यता का सम्प्राप्त होता है। यही इनकी निर्विकल्प समाधि है। इस शाखा के साहित्य में गोरक्षपंथ और नाथयोग के सिद्धान्तों की न तो कहीं निंदा मिलती है और न उन्हें रामभक्ति के विकास में बाधक ही माना गया है। रामभक्ति धारा के प्रसार में इसका विशेष योगदान रहा है। इसने विशाल साहित्य के अवेषण-परिक्षण से निश्चय ही मध्यकालीन हिन्दी रामकाव्य के अनुशीलन में एक नई दिशा मिलेगी।



## श्री कृष्णदास पयहारी की योगमूला भक्ति

श्री कृष्णदास पयहारी स्वामी रामानन्द के प्रशिष्य और अनन्तानन्द के शिष्य थे। रामानन्दीय संप्रदाय का वतमान व्यापक रूप बहुत अंश में इन्हीं की देन है।<sup>१</sup> वास्तव में संप्रदाय प्रवक्तक के महान् उद्देश्य की सिद्धि के लिये जिन चारित्रिक गुणों की अपेक्षा की थी, कृष्णदास ने प्रभावशाली व्यक्तित्व में वे पर्याप्त मात्रा में विद्यमान थे। उनके प्रशिष्य नामदास के निम्नांकित शब्द इसका गाम्भी हैं।<sup>२</sup>

जाके सिर कर धर्यो तासु कर तर नहि अडडयो ।  
 अप्यो पद निर्वाण भोक निभय कर छडडया ॥  
 तेज पूज बल भजन महामुनि ऊरघरेता ।  
 सेवत धरन सराज राव-नाना भुवि जेता ॥  
 दाहिमा वश दिनकर उदय, सत कमल द्विय सुख दयो ।  
 निर्वेद अवधि कलि कृष्णदास, अन्न परिहरि पय पान कियो ॥

ये राजस्थान के निवासी दाधीच्य ब्राह्मण थे। इनका गुरुप्रपुत्र नाम कृष्णदास था। दीदा के अनन्तर योगसाधना में प्रवृत्त होने पर इन्होंने अन्न त्याग कर केवल दुग्धपान का व्रत ल लिया था इसलिये तत्कालीन मतसमाज में 'पयहारी' नाम से प्रसिद्ध थे। इनकी मुख्य साधनाभूमि गलता थी।<sup>३</sup> भक्तमाल में इनकी सिद्धियों का वर्णन करते हुए कहा गया है कि एक बार इन्होंने अतिथि रूप में आए हुए सिंह की अम्यर्थना अपना मास अर्पित करके की थी और इस प्रकार कलियुग में परोपकारी महर्षि दाधीच्य के आश्रम की स्थापना की थी। प्रियादास

- १ रामभक्तों के ३७ द्वारों में से २० द्वारे श्री कृष्णदास पयहारी की ही परम्परा के हैं। इनकी शताधिक शाखा प्रशाखाएँ देश के विभिन्न भागों में फैली हुई हैं।
- २ श्री भक्तमाल (भक्ति रसायनी व्याख्या वृंदावन)—पृ० २६५।
- ३ जयपुर नगर के पूर्वी भाग में सूरजपोल से गलता को माग जाता है। यह स्थान वहाँ से थोड़ी दूरी पर पहाड़ी में स्थित है। पयहारी जी की गद्दी और धूनी का दर्शन करने प्रति वर्ष हजारों यात्री यहाँ आते हैं। इस आश्रम पीठ की परंपरा अब तक अक्षुण्ण रूप में चल रही है।
- ४ गलते गलित अमित गुण, सदाचार मुठि नीति ।  
 दाधीच्य पाद्ये दूजी करी, कृष्णदास कलि खीति ॥

ने अपनी टीका में पयहारी जी की सिद्धाई के दो और उदाहरण प्रस्तुत किए हैं— एक है कुन्हु (पजाव) के राजपुत्र को प्राण रक्षा कर उस अपना तृपापात्र बनाना और दूसरा है एक स्त्री के गभस्थ बालक के विषय में सत्य भविष्यवाणी करना कि वह महान् सत होगा ।

रसिक प्रकाश भक्तमाल' के रचयिता जीवाराय 'युगलप्रिया ने गलता के अतिरिक्त पयहारी जी की एक दूसरी तपाभूमि पुष्कर का भी उल्लेख किया है और उहे मानुषभाव का रामोपासक कहा है ।' उक्त ग्रंथ के टीकाकार वामुदेव-दास से इनका साधना के विषय में कुछ अधिक विवरण दिये हैं । उन अनुसार अनन्तानन्द से मन्त्रदीक्षा लेकर पयहारा जी तार्थयात्रा को चले गए । लौटने पर उन्हें गुरु के देहावसान का समाचार मिला । गुरुपीठ में ही ठहर कर उन्होंने एक विशाल भंडारा किया । इसके पश्चात् वे पुष्कर चल गए और वहाँ १४ वर्ष तक घोर तपस्या की । इस अनुष्ठान में छ वर्ष के भीतर ही उन्हें आराध्य युगल श्री सीताराम ने साक्षात् दर्शन देकर वृत्तार्थ किया । इस प्रकार पुष्कर में योग सिद्धि प्राप्त करके वे गलता लौट आये और वहाँ की रम्य प्राकृतिक शान्ता से आवृष्ट होकर कुछ दिन ठहर गए । इस बीच आमर नरेश पृथ्वीराज (सिंहासनारोहणकाल फाल्गुन कृष्ण १, म० १५५६) का दीवान विद्याधर उनके

कृष्णदास कलि जोति योति नाहर पल दीयो ।

अतिथि धम प्रतिपालि प्रगट जस जग मे लीयो ॥

उदासीनता (की) अवधि, कनक कामिनी नहि रातो ।

रामचरण मकरद रहत निसिदिन मवमातो ॥

श्री भक्तमाल (धृन्दावन), पृ०, ६१४

५ कृपा अनन्तानन्द रसिक पूरन पयहारी ।

कृष्णदास रसरीति उपासक सियव्रतधारी ॥

पुष्कर छाया भजनभूमि प्रगटी सिय प्यारी ।

पूव सूचिका घरी कया प्रिय लेहु सुधारी ॥

जिमि जलूक अरु काग रति, नित्य रास रस रूप गति ।

आचारज शृङ्गार पय, शिष्य अग्र से विमल मति ॥

रसिक प्रकाश भक्तमाल, पृ० १३

६ तारक जुगुल मन्त्रराज जप ठायो व्रत द्वादश जुगुल वष हय उर छाया क ॥

छठए वरस दिव्य दपति दरस पाय उठि हरपाय दडवत कीनी भाय क ॥

२० प्र० भ०, पृ० १३

दशनार्थ आया। वह इनसे बहुत प्रभावित हुआ। उमने लौटकर महाराज को एक तपोनिष्ठ महात्मा के आने का समाचार सुनाया।

उन दिना आमर क राजगुरु नाथपयी योगी तारानाथ थे। उहे भी अपने अनुयायिया से यह सूचना मिली। वे तत्काल ही कुछ योगियों को साथ लेकर पयहारी जी के पास गये और उनसे गलता छोडकर अयत्र चले जाने का अनुरोध किया। कृष्णदास जी ने केवल एक रात ठहरने की अनुमति चाही, किन्तु वे न माने। शारीरिक बल प्रयोग करके इहे हटाने की इच्छा रखते हुए भी वे साहम न कर सके। अत अपनी परम्परानुसार यत्र-मंत्र तथा कृत्या द्वारा इह विचलित करने का प्रयत्न किया। इन पर उसका कोई प्रभाव नही हुआ। उलटे विराधी ही उसके शिकार बन। योगियों ने क्रुद्ध होकर, जिस स्थान पर पयहारी जी बडे थे उसके ऊपर की एक चट्टान लुडका दी जिससे इनका अस्तित्व ही समाप्त हो जाय। किन्तु कृष्णदास जी अपने अद्भुत योगबल से उसे बीच में ही रोक दिया। अन्त में योगी तारानाथ सिंह बनकर गरजता हुआ सामने आया। पयहारी जी ने कमण्डल का जल अभिमंत्रित करके उसके ऊपर फेका जिससे वह गन्हा हो गया। इतना ही नही इनकी अलौकिक सिद्धि के प्रताप से सभी स्थानीय योगियों की कण मुद्राएँ निकल कर उनके सामने एकत्र हो गइ। प्रात काल जत्र आमर नरेश गुर का दशन करने गए ता उहे मुद्राहीन देखकर बड आश्चर्य में पड गए। कारण पूछने पर गुर से लज्जावश कुछ न बोले परन्तु दीवान ने सारा वृत्तान्त कह सुनाया। महाराज पृथ्वीराज ने पयहारी जी की सेवा में गुर सहित उपस्थित हाकर क्षमा याचना की। अय योगी भी आकर उनसे चरणा पर पडे। पयहारी जी ने उहे क्षमा कर दिया। गन्हा बने हुए नाथपयिया का अपना पूर्वरूप मिल गया। कण मुद्राए भी सबको पूर्ववत् प्राप्त हा गन्। पयहारी जी ने उसे गलता छोडकर किसी दूसरे स्थान पर अड्डा बनाने को कहा साथ ही उह दड के रूप में नित्य पाच घोस लकडी धूनी के लिये पहुँचाने का आदेश दिया। कहा जाता ह कि इसके पश्चात् योगिया की इष्टदेवी भी आई और कृष्णदास जी की शिष्या हो गई। पृथ्वीराज ने तारानाथ से नाता तोडकर पयहारी जी का शिष्यत्व ग्रहण किया।

- १ राज गुर सेवरा ने सुनि एक सिद्ध आये देखि घबराण तेज कहौ कहा कीजिए ॥  
 निनि बस पाँच गए कही ह्याते उठि जात्रो जायेंगे अवश्य आबु रनर है कीजिए ॥  
 जत्र मत्र मूठि काल कृत्या ल घसाई सब उलटि पडाई निज कियो फल लीजिए ॥  
 तब लिसियाय तिला ऊपर गिराई स्वामी अघर झुलाई कह्यो इहै न पतोजिए ॥  
 रसिक प्रकारा भक्तमाल, पृ० १३

उत्पद्यते रामस्य कीर्तिता के गाय हो माधु तथा और सकीर्तन म कान  
 दापन करत हुए तिय रामनाम जय का उत्पन्न हुआ ।' इसी समय स गनजा  
 पयहारी जी का प्रघात पीठ बन गया । दही पर कुछ 'गिना बा' उन्होंने दो  
 शरणागत चामको—कीर्तनास और अष्टनास को पचमग्यार मुक्त करके साधना  
 में प्रविष्ट किया । एक सम्बन्धी आगु भागो क परात्त गही का दासित्व बदे दिव्य  
 कीर्तनास को शीघ्र कर श्री कृष्णनास जी ने अपनी ऐहिक सीमा सवरण की ।

कीर्तनास ने गुरु द्वारा उपदिष्ट साधनापद्धति का सम्पन्न प्रचार एवं सव  
 र्द्धन किया । इतने विषय में प्रसिद्ध है कि तत्त्वज्ञान देशाधिपति ने मधुरा प्रवास  
 के समय इनकी योगसिद्धि क परीक्षार्थ गिर पर लोहे की कील ठुक्का दी थी

१ गुनो पृथ्वीराज कुरा यज्ञ में विदित जन्म,  
 पाय सीतानाथ भजो बयों न मन सायक ।  
 स्वामी हम ससति भुलाने नहि जानै कंसो,  
 कृष्णध धरम प्रभु कहौ समुगाय क ॥  
 मुनिक प्रवृत्ति को निवृत्ति को स्वरूप कहुयो,  
 नाम को महत्त्व मुनि बियो शीघ्र नाय क ।  
 द्वावरा तिलक माला छाप नाम मत्र ध्यान,  
 पायो मुल छायो भयो अभय बजायक ॥

रसिक प्रकाश भक्तमाल, पृष्ठ १४

नाभादास ने आमेर नरेश पृथ्वीसिंह की गणना तत्त्वदर्शी रामभक्ते में की  
 है । पयहारी जी के प्रसाद से प्राप्त इनकी अद्भुत आध्यात्मिक शक्ति का वर्णन  
 करते हुए वे लिखते हैं—

(श्री) कृष्णदास उपदेश परम तत्त्व परचो पायो ।  
 निरगुन सगुन निरपि तिमिर अज्ञान नसायो ॥  
 काद्य वाद्य निबलक मनी गागेय युधिष्ठिर ।  
 हरि पूजा प्रह्लाद धर्मध्वजधारी जग पर ॥  
 पृथ्वीराज परचो प्रगट, तन सल धक्र मडित कियो ।  
 आमेर अद्यत कूरम कौ, द्वारिका नाय बरसन दियो ॥

श्री भक्तमाल (बुवावन), पृ० ६१६

२ कील कील सिरदर्द नृपति तबहुँ नहि जागे ।  
 प्रबल सामाधी रसिक रामसिय छवि अनुरागे ॥

१० प्र० भ०, पृ० १४

किन्तु उस स्थिति में भी ये गमाधिस्थ रहें। ये साख्ययोग के पारगत विद्वान् थे। इनके शिष्य द्वारकावास भी अष्टांगयोग के निष्णात मायक थे। उन्होंने अपना प्राण रत्नारघ्र से त्याग किया था। इसी प्रकार कीलहदास के छाटे गुरुभाई अग्रवास और उनके लोकविश्रुत शिष्य नाभादास के विषय में भी अनेक चमत्कारिक घटनाओं का उल्लेख साम्प्रदायिक साहित्य में मिलता है।<sup>१</sup>

पयहारी जी के देहावसान के अनन्तर भी उनका अद्भुत प्रताप भक्ति क्षेत्र को आन्ध्रान्ति किए रहा और रामानदीय सम्प्रदाय के उपासक उनसे प्रेरणा प्राप्त करते रहे। दवरिया जनपद (उत्तर प्रदेश) के प्रसिद्ध महात्मा लक्ष्मीनारायण दास पयहारी के विषय में प्रसिद्ध है कि उन्हें सर्वप्रथम रामभक्ति का प्रसाद गज रूप में समागत श्रीकृष्णनाम पयहारी द्वारा ही मिला था।<sup>२</sup> इस घटना के बाद भी उन्हें समय समय पर पयहारी जी के स्वप्न में दर्शन देते रहने की कथाएँ साम्प्रदायिक साहित्य में मिलती हैं।<sup>३</sup>

एक सवे सहेज सुभाय मधुपुरी आए, यमुना सुनीर हाइ बठे शुचि तीर मे ॥  
श्यामल स्वरूप रघुनन्दन को हिए आयो, अचल समाधि लागी सतन की भीर मे ॥  
देश दुनोपति पादसाह मुनि कौतुक ज्यों, पेपन को आयो नहि जान पर पीर में ॥  
कील शिर बई कछू वेदना न भई रही, अचल समाधि जसी लागी रघुवीर मे ॥  
२० प्र० भ०, पृ० १५

१ देखिये श्रीभक्तमाल (बू दावत पृ० २७५ २७६ तथा  
'भक्ति सुधा विडु स्वाद तिलक' (रूपकला) पृ० ४४ ५०

२ जयपुर राज्य राज रजधानी। तहाँ अवतरे मुनि विग्यानी ॥  
कृष्णदास पावन ब्रतधारी। रहे कहावत श्री पयहारी ॥  
बहुत काल तप कीह कठोरा। नित्य दिवस रघुवश निहोरा ॥  
दिवस एक बन फिरत अकेला। धारयो भेष महा गज मेला ॥  
तेहि छन अधकार भइ भारी। दिल्हराया महिमा पयहारी ॥  
वेगवत होइ चला त्रिधारी। जह बटा बालक ब्रह्मचारी ॥  
सोह चड़ाइ काह पर तिनहीं। अति श्यामल गज भय नहि जिनहीं ॥  
वीक्षा द कृताप तेहि कीहा। सादर पौहारी पद बोहा ॥  
बासात पयहारिण परगुरु रामस्वरूप मुनि।  
गायत्री जप निमल गुरुवर श्री कृष्णदासाभिष ॥  
घत्वाहस्तिवपु मुदक्षिणपर पयहारिभि स्थापितम्।  
पक्षीलो नगरात्सुदूर विजने साद्रे सुरम्पे बटे ॥  
हरिपूजन मे कृष्णदास पुनि वाइ मिले हर्षाई,  
लक्ष्मीनारायण चेत करो यह मुक्ति की राह बतई।  
अवध प्रसाद होईहैं तब गुरु ऐसो गिरा सुनाई ॥

पयहारी जी और उनके शिष्य प्रशिष्या के सम्बन्ध में प्रचलित इन कथाओं से उनकी योग साधना में असाधारण आस्था एवं गति का पता चलता है। रामोपासना के अतगत यह योगप्रवृत्ति निरन्तर बढ़ती गई। आगे चलकर उसने एक पृथक् साधनाप्रणाली का रूप धारण कर लिया और तपसी शाखा के नाम से अभिहित की जाने लगी। इससे प्रवन्त यह पयहारी श्री वृष्णनाथ और साम्प्रदायिक सगठन कर्त्ता यह उनका उत्तराधिकारी गलता गद्दी के द्वाय आचार्य कीलहदास। इन सम्बन्ध में यह विचारणीय है कि स्वामी रामानन्द के नाम से प्रसिद्ध रामरक्षा, ध्यानलीला ध्यानतिलक यासचित्तमणि आदि रचनाएँ भी योगपरक ही हैं किन्तु उनमें राजयोग की अपथा हठयोग और सगुण की अपथा निगुण साधना की प्रधानता ही गई है, उनका आराध्य जानियो के ही ध्य हैं अपनी परराशक्ति सीता सहित परम धाम में नित्य लीलाखत ध्यानमग्न भक्तों को लोकोत्तर आनन्द का रसास्वादन कराने वाल अवतारी राम नहीं। इसलिए स्वामी रामानन्द की प्राप्त रचनाओं से रामोपासना की इस शाखा विषय का प्रवृत्त सैद्धांतिक सम्बन्ध स्थापित होना नहीं सिवाई देता। बहुत संभव है उनकी कुछ हिन्दी रचनाओं साकत विहारी राम बिपमक भी रही हो, जो क्रूर काल के प्रवाह के साथ अनन्त में विनीत हो गयीं हैं।

यह आज भी रामभक्तिभेद की एक मशहक साधनाधारा है। प्रयाग हरिद्वार, नासिक आदि तीर्थों में कुभ के अवसर पर कोशान, मूज की करधनी और विभूतिधारी रामोपासक नागाओं के जो अलाड बड़ी सजधज के साथ एकत्र होते हैं वे प्राय इसी शाखा से सम्बन्ध रखते हैं। इनको अती और अल्लाहों में सगठित करने का श्रेय महात्मा बालानन्द का है। जयपुर में अब तक स्थापित है। शैव नागाओं से इनकी साधना भावसाग प्रधान होती है जब कि शैव शाखा के उपजीव्य ग्रथों में श्री वृष्णनाथ प्रकाश में नहीं आई है।

प्राचीन हस्तलप्यों की गोज करत हुए मुझे  
 'राज-योग नामक ग्रथ' । यह एक  
 २८ छं हैं—२७ पाला  
 यह ग्रथ अग्रदास की शि

- १ रामभक्ति में
- २ राजयोग, पृ० ६

तब उहाँ अग्र । देखर सुधीर ।

जनु मर्यो उदधि बनि अगम नीर ॥

इसक प्रतिलिपिकार कील्हदास की परम्परा मे आविभूत, महात्मा कामद-  
राम के कोई अनातनामा शिष्य हैं । प्रथात म दी गई पुष्पिका मे अपना परिचय  
देत हुए वे लिखने हैं—

“॥इति श्री स्वामी पयोहारि कृष्णनाम कृत राजयोगम् । श्री राम ॥

‘कृष्णदास कुल कील मत, माख्य ध्यान मिय राम ।

श्री गुरु कामद राम निधि, राम बीज रट नाम ॥

इस छोट से ग्रथ मे अभिव्यक्त विचारा मे पयहारी जी की परंपराप्रसिद्ध योग-  
साधना का स्वरूप स्पष्ट हो जाता है । वे नाथपथिया की हठयोगी पद्धति के  
प्रतिबूल पातजलि का अष्टांगयोगप्रणाली के प्रचारक थे । ‘राजयोग मे उनका  
तात्पर्य इसी साधना पद्धति से है जिसका तत्त्ववात् सेश्वर साख्य है । नामानाम  
न कील्हदास क प्रसंग मे इसका उल्लेख किया है—<sup>१</sup>

रामचरण चितबनि रहत निसिदिन लो लागी,

सर्वभूत शिर नमित मूर भजनाने भागी ॥

साख्य योग मत मुहद किए अनुभव हस्तामल ।

ब्रह्मरघ करि गौन भये हरितन करनी बल ॥

कील्हदास की कोई कृति उपलब्ध न होने से हमे इस सम्बन्ध मे उनके अनु-  
यायिया और नामानाम द्वारा प्रस्तुत तथ्या पर ही निर्भर रहना पडता है । किन्तु  
पयहारी जी के दूसरे प्रसिद्ध शिष्य अप्रदास की रचना ‘ध्यान मजरी से ‘राजयोग  
मे प्रतिपादित भिदाता का सीधा सम्बन्ध स्थापित किया जा सकता है । अप्रदास  
ने उक्त ग्रथ मे अपने ‘ध्यानयोग को गुरु (श्री कृष्णदास पयहारा) का प्रसाद बता  
कर प्रकारान्तर से इसकी पुष्टि की है—

श्री गुरु सत अनुग्रहते अम गोपुर वासी ।

रसिक जनन हित करन रहसि यह ताहि प्रकाशी ॥

ध्यान मजरी नाम सुनत मन मो बढ़ावे ।

श्री रघुवर को ध्यान मुन्ति मन अग्र सा गाँ ॥

अप्रदास रामभक्ति मे रसिक भावना के प्रवक्तक आचार्य माने जाते हैं । इस  
सम्प्रदाय मे सीताराम के युगल स्वरूप की उपासना विहित है—

१ धीमत्कमाल (सूदायन), पृ० २७३

२ ध्यान मजरी (अप्रदास), पृ० ७६, ७८

३ राजयोग, पृ० १८, १९, २०, २१, २२



पोश वप किशोर राम निन सुंदर राजें ।  
गम रूप को निरखि विभाकर वोटिक लाजें ॥  
अस राजत रघुवीर धीर आसन सुखकारी ।  
रूप सन्निदानद वामनिसि जनक कुमारी ॥

‘राजयोग’ में भी ‘परमधाम’ में नित्यलीला मग्न, शक्तिसयुक्त, आराध्य का यही स्वरूप ध्येय बताया गया है<sup>१</sup>—

आगे सुपताका उडनि देखि । तहँ सेत द्यन द्याया सुपेखि ॥  
आमन सकेत तहँ अरन भूमि । चहुँ निसि प्रकाश नहि बरन घूमि ॥  
को बरनि सकत प्रभु को सरूप । रवि कोटि चन्द्र छवि ते अनूप ॥  
नभ नील मेघ इमि श्याम गात । लखि पीत बसन विद्युत लजात ॥  
इमि बसत राम गिज सहित वाम । सब सन कहत जेहि परम धाम ॥

पयहारी जी ने इष्टदेव के इस ध्यान में तल्लीन जीव-मुक्त भक्तों को शास्त्रानुमानित चार प्रकार की मुक्ति—सालोक्य, सामीप्य, साहचर्य और सायुज्य से श्रेष्ठतर पाचवी ‘ध्यानलीन’ मुक्ति का अधिकारी बताया है<sup>१</sup>—

जे चारि मुक्ति वैकुण्ठ मानि । ते भुक्ति मुक्ति फल लेहु जानि ॥  
तब पंचई मुक्ति पावो प्रवीन । जो रहत अहानिसि ध्यान लीन ॥  
उनकी सम्मति में योगमाधना रामभक्तिप्राप्ति का एक मात्र साधन है । —

तहँ गए मितत है जम मरण । तहि हत जोग जत रामशरण ॥

आमेर नरेश पृथ्वीसिंह के प्रसंग में नाभानास ने पयहारी जी को निगुण तथा सगुण दोनों तत्त्वों का पारंगत आचार्य कहा है । राजयोग में अग्रदास को उपदिष्ट निम्नान्वित साधना प्रणाली इसका समर्थन करती है<sup>२</sup>—

प्राणहि अपान दृढ गायि डोरि । कुडलनि आव मम युक्ति जोरि ॥  
तब चलत पवन जह ब्रह्मरघ्न । तह छोडि जाहि सब त्रिगुण बध ॥  
उनटै मु इना पिगला नारि । सुपुमना शुद्ध लीजे विरारि ॥  
पहुँचे मु जवै अनहद गेह । रागै मु एक हरि सो साह ॥  
इस स्थिति की प्राप्ति का एक मात्र उपाय रामनाम का अखंड जप है<sup>३</sup>—

१ यही, छ० २४, २६

२ राजयोग, छ० ५, ६, ७, ८

३ यही, छ० २५

४ यही, छ० २८

आठ पहर चौंसठि घरी ररकार घहराय ।

सकल मोह दावा मिटै तब नाना ठहराय ॥

स्वामी रामानन्द का भी मुख्य उपदेश रामनाम जप ही था<sup>१</sup> जिसे आगे चल कर गोस्वामी तुलसीदास ने निगुण एव सगुण ब्रह्म की ज्ञान प्राप्ति का सर्वश्रेष्ठ साधन और दाना के बीच 'चतुर दुभाषी' घोषित किया। पयहारी जी भी रामोपासना की इस सम्बन्धवात्मक प्रवृत्ति का पोषक थे। परवर्ती रामभक्त कविया ने भी अपनी रचनाओं में निगुण तत्त्व को महत्वपूर्ण स्थान दिया। यह उल्लेखनीय है कि हिंदी के अथ सगुणाश्रयी सम्प्रदायों में प्रायः इसके विपरीत, निगुण भावनाओं को सगुण के विरोधी रूप में ही चित्रित किया गया है। कृष्ण काव्य की भ्रमर-गीत परंपरा में इसके पर्याप्त उदाहरण विद्यमान हैं।

कृष्णदास जी के शिष्या ने रामभक्ति शाखा में इसी समय (निगुण-सगुण) प्रबोधक ध्यान योग का प्रचार किया। रामोपासना की प्रधान माप्रदायिक धारा आज भी इसी पथ पर प्रवहमान है। इस सम्बन्ध में यह उल्लेख्य है कि योग सम्बन्धित रामभक्ति की यह स्रोतस्त्रिणी गोस्वामी तुलसीदास की लोक-संग्रही उपासनापद्धति से सर्वथा पृथक एकांतिक साधना का आदेश लेकर चली है जिसमें बाह्य की अपना मानसी पूजा को प्रधानता दी जाती है। आराध्य और आराधक की तात्कालिकस्थापना के लिये इसने अन्तर्गत पंचभाव सम्बन्धों की कल्पना की गई है। रामभक्ता का यह भावयोग ही रमिक साधना का मूलतत्त्व है, जिसका मर्म न समझने वाले द्विद्विणी प्रवृत्ति के साधक सम्प्रदाय को अपनी ऐहि-

१ मूरख तन धरि कहा कर्मायो । राम भजन बिन जनम गँमायो ।

राम भगति गति जाणो नाहीं । भद्र भूलो घषा माहीं ॥

रामानन्द की हिंदी रचनाएँ, पृ० ६

२ नाभादास ने श्रीकृष्णदास के प्रत्यक्ष शिष्यों की सख्या २४ बताई है, जिनकी नामावली इस प्रकार है—

कीलह अगर केवल्ल धरन श्रत हठी नराधन ।

सूरज पुदया पृथू तिपुर हृदिभक्ति पराधन ॥

पद्यनाभ गोपाल टेक लीला गदाधारी ।

देवा हेम कल्याण गगा गगा सम नारी ॥

विष्णुदास क हर रगा धाँदन सविरो गोविंद पर ।

पहारी पस्ताद तैं निष्य सब भये पादकर ॥

श्री भक्तमाल (पदावन), पृ० २७३

बातें उनकी नवोपलब्ध रचनाओं के साथ दी जायेंगी। इनमें रसिक सम्प्रदाय के भक्तों की काव्यगीती में एक विशिष्ट तत्त्व प्रकाश में आता है और वह है धरितात्मक गीती में रामकाव्य निर्माण में इन भक्ता की अभिरुचि तथा गति। उदाहरण के लिए हर्षाचार्य तथा गुरविशोर की कृतियाँ ली जा सकती हैं। इनमें से प्रथम शृंगारी साधक थे और द्वितीय वात्सल्यनिष्ठ भक्त। इनकी जो रचनाएँ अब तक उपलब्ध थीं उनमें भावपूर्ण शैली में आराध्य की रमणीय लीलाओं का वर्णन मिलता है। किन्तु नवप्राप्त रचनाओं में उनकी लीला का इतिवृत्त बड़ी ही सयत और प्रवाहपूर्ण शैली में प्रस्तुत किया गया है। हर्षाचार्य का 'सीताराम-विवाह' वर्णन और और गुरविशोर का 'रावण-अगद-सवाद' इसके प्रमाण हैं। इनसे यह विदित होता है कि कोमलकांत पत्मावली के समान ही औजपूर्ण छन्द रचना की भी इनमें अद्भुत क्षमता थी। साथ ही ये इस तथ्य के साक्षी हैं कि रसिक राम-भक्त—चाहे वे भाधुर्मासक्त हो या वात्सल्यनिष्ठ—अपनी कृतियाँ में सामाजिक मर्यादा तथा व्यक्तिगत चारित्रिक आदर्शों की रक्षा का बराबर ध्यान रखते थे। इसी से पदमुक्तावली में संकलित इस सम्प्रदाय के सतों की सारी रचनाएँ उस घोर शृंगारिकता से अदूती हैं, जिसके आधार पर इस शाखा के कवियों पर 'ईश्वरत्व की छीछानेदर का आरोप लगाया जाता रहा है।

हमारा विश्वास है कि इन कृतियों से रामभक्ति का रसिक शाखा की साधना एवं साहित्य विषयक अनेक अज्ञात तत्त्व प्रकाश में आयेंगे जिनसे अनुसंधित्सुओं को इस क्षेत्र में अग्रसर होने के लिए नयी प्रेरणा प्राप्त होगी।

### भाईभू दाम

ये श्री कृष्णदास पयहारी के प्रशिष्य तथा हेमानंद जी के शिष्य थे। जयपुर और उसके आस पास पयहारी जी द्वारा स्थापित रामभक्ति परंपरा के प्रसारक रूप में इनकी बड़ा प्रसिद्धि है। इनका आविर्भाव जयपुर राज्य के उमाडा नामक ग्राम में एक खाडन ब्राह्मण परिवार में हुआ था। पिता का नाम पंडित चोखाराम था। बालकाल से ही इनकी प्रवृत्ति अध्यात्मामुख थी। इसलिए इनके समय का अधिकांश पूजापाठ में बीतता था। आरंभ में घर पर ही पिता ने अध्ययन की याख्या की किन्तु उसमें इनका मन नहीं लगा। देवयोग से किशोरावस्था में ही इन्हें पयहारी जी के शिष्य स्वामी हेमानंद का सात्त्विक प्राप्त हो गया और इन्होंने उनमें भगवतीसा ली। इसके बाद गृहस्थी के जजाल से मुक्त होकर

ये जयपुर की पश्चिम दिशा में स्थित जगली प्रदेश में जाकर एक सरोवर के पास आश्रम बनाकर भजन करने लगे।

कुछ ही दिनों की साधना से इनके मन में आराध्य के दशन की तीव्र अभिलाषा उत्पन्न हो गई। ये उसी समय अन्तः प्रेरणा से भगवान राम की लीलाभूमि अयोध्या की ओर चल पड़े। वहाँ पहुँचकर कुछ दिनों तक सरयू तटस्थ रामघाट पर भजन करते रहे। कहा जाता है कि एक दिन जब ये इष्टदेव के दशन के लिए अत्यन्त व्याकुल थे, तो आराध्य ने नीता तथा लक्ष्मण सहित इन्हे दशन दिया। उनका चरण स्नान करते हुए झाँझूदास ने दशन तथा नित्य सेवा का अवसर प्रदान करने की प्रार्थना की। भगवान बोले 'कलियुग में मेरा साक्षात्कार प्राप्त करना अत्यन्त कठिन है। किन्तु तुम्हें नित्य सेवा के लिए हमारा विग्रह सरयू में प्राप्त होगा। उसे ले जाकर अपने पुण्यस्थल पर स्थापित करना, उसकी पहचान यह है कि जहाँ विग्रह भार प्रतीत हो, वही उसे पधरा देना। उसके उपलक्ष्य में विजयादशमी के दिन एक महोत्सव करना। उस समय तुम्हें मेरा दशन नीलकण्ठ के रूप में होगा। झाँझूदास को उसी दिन सरयू में स्नान करते समय तीन विग्रह प्राप्त हुए। उन तीनों का लेकर उन्होंने राजस्थान के लिए प्रस्थान किया। अयोध्या जाते समय अपने आश्रम में झाँझूदास ने बरगद की एक डाल यह कहकर रोपी थी कि अगर मेरे लौटने तक यह डाल हरीभरी हो गई तो इस स्थान पर एक गाँव बसाऊँगा। इष्टप्राप्ति के पश्चात् जब अयोध्या में राजस्थान लौटते हुए वे उस स्थान पर पहुँचे तो उन्हें मूर्ति का भार बढ़ा हुआ प्रतीत हुआ। वह डाल भी हरे-भरे वृक्ष के रूप में परिणत हो गई थी। अतः उन्होंने वही मंदिर बनाकर तीनों विग्रह पधरा लिये और दशहरा आने पर 'रावणवध लीला' का विशाल उत्सव आयोजित किया।<sup>१</sup> भगवान के कथनानुसार उस अवसर पर उन्हें नीलकण्ठ के दशन हुए। यह उत्सव आज तक जयपुर से ३२ मील की दूरी

१ श्री रामानुजबास 'हृदयसरस' में 'गुरुपरपरा' नामक अपनी रचना में इस घटना का विवरण देते हुए लिखा है—

पयहारी के शिष्य लखो सुचि हेमानन्दसु।

हेमानन्द के शिष्य जानु अद्भुतसु ॥

भक्तमाल में प्रगट नाम जिनको लख लीज।

अथ सुन जिनकी कथा मोद भरि हिये धरीज ॥

धाम वरस गये अवध में स्नान करत मूर्ति मिली।

श्री सीता रघुवर लखन की कज कोस वसु दल खिली ॥१॥

पर स्थित हरसौली ग्राम में बड़े घूमघाम के साथ दशहरा को मनाया जाता है, जहाँ हजारा की सख्या में भक्तसंग नीलकंठ के दशनाथ इकट्ठे होते हैं। इनकी शिष्यघाम यात्रा सांप्रदायिक मान्यता के अनुसार स० १५४२ में हुई। इन्हीं की परंपरा में आगे चलकर रसाचार्य महात्मा सियासखी का आविर्भाव हुआ था।

श्री सरयू तट रामघाट जह वरसन थीहै ।  
 श्री सीता रघुनाथ लखन जुत निज जन थीहै ॥  
 लखत परयो शुकि घरन लकुट इव तन सुधि भूल्यो ।  
 मनमयो ह्य अपार देह तन रय कूल्यो ॥  
 कर जोरे ध्वनि निरखते नेह मयो चल धारि डर ।  
 विनय करत सिय राम सौं गद्गद ह्व रहे कठ स्वर ॥२॥  
 दिनवत पद महाराज भोहि नित जान सपते ।  
 किंकरता में करौं बिसस निसि अति उमग ते ॥  
 तव माया अति प्रबल विनासे नाही बचहै ।  
 सुमिरेहू बिसस रही नाम गुण घामोच्छ्रय है ॥  
 लखि किसोर वध भक्त बहे बया सियु आसा बिये ।  
 श्री रघुनाथ कृपायतन एयमस्तु बोलत भये ॥ ३ ॥  
 सुनु शीशू ! अति दुलभो मोर मिलन कनि माहि ।  
 तेरो दुइता बिसस किय यामे ससय नाहि ॥  
 नित सेषन हित प्राप्न होइहौं सरजू अतर ।  
 ताहि आजि एकांत मांहि सुचि भूमि सुततर ॥  
 सुद धरा किमि जानऊं ? प्रभु बोले ह्याति अटल ।  
 जहाँ भार मो में लखे तहाँ जानु अघ भ्रम बटल ॥ ४ ॥  
 तह लीला तुम रचो विजय वरामो दिन मेरो ।  
 रावण वध दुख हानि खानि सुख भक्ति मु केरो ॥  
 बस अवतार उबार देखिये जे जन आवैहै ।  
 पद श्रुतु रहिहैं तहां नित्य रति माया पावहि ॥  
 लीला मेरी इमि करहु मोर नाम ते जाय ।  
 धाम रूप गुण हिय घरहु तहां न माया घाय ॥ ५ ॥  
 तिहि उत्सव के मांहि सदा में वरसन देहै ।  
 कलिहित प्रपटू नाहि भेष इक ओट जो लेहै ॥

शांभूदास के भक्ति सम्बन्धी कुछ फुटकर छंद मिलते हैं । एक पद नीचे दिया जाता है—

मंगल रूप लाडली लाल ।

जननी जगावत कुँवर कोशल्या उठि पहिरो मुक्तामनि माल ।

अंगुरी गह अगना पाव टेको आरति अधिक उतारू चलि चाल ॥

जाय सुरताया धेनु सकल के आशा धो मेटहु तिहुँ काल ।

शांभूदास प्रभु रघुकुल मडन अवघपुरी विहरत भूपाल ॥

नील गास को बरस ताहि दिन अति सुखदाई ।

चित्र लिखावत फिरत तिनहि कुलभ कवि गाई ॥

सो तनु धरि में आयहुँ उत्सव रति प्रति हेत ।

रचक भेद न बीजियो यह तब मम सकेत ॥ ६ ॥

अस कहि अतरध्यान भये सीता रघुनायक ।

शांभू मूरति देव धारि छवि निधि निर्मायक ॥

बचन प्रभू के मनन करत गये सरजू जल मे ।

हात लखे प्रयमूर्ति फही जिमि पकज दल मे ॥

हाटक सिंहासन सुघट पजपद कर गहि लपड ।

भई हृदय दुड़ता अमित वाक्य सतगुनी सुख छयड ॥ ७ ॥

चले मूर्ति सिर धारि जथा आजा पहिले भई ।

परिचम बिसि प्रयकोस पर अचल होइ सो तहँ ठई ॥

इच्छा लखि तहँ धान कियो सुचि प्रान बसायो ।

भ्लेच्छ बौद्ध ओ हीन नरन ते रहित सुहायो ॥

स्यापित कर उत्सव कियो आयो प्रभु सोइ धारि तन ।

विविध धरित कलिकाल में हरसोली लखिये नयन ॥ ८ ॥

रवासा अरु गालवासरम बिच हरसोली ।

शांभूदास को धान तहाँ महिमा सु अतोली ॥

शांभूदास के सिस्य भए हैं गुन निधि जानू ।

रामबत्त जू बडे सु लघु नरहरि दासानू ॥

धान माहि नरहरि जये तानसेन आदिक गुनी ।

अकबर सुधता मानि भज वय किसोर इमि गति सुनी ॥

—श्री सियाशरण जी (जयपुर) के सौजन्य से प्राप्त ।

रूपसरस जी की उक्त रचना की अन्तिम पत्तियाँ में यह पता चलता है कि श्रीमद्गोदास के निज्य भरहृदिदाग उनका गुरु हेमाङ्ग जी का भाति ही गणेश शास्त्र के प्रकांड पंडित थे। उन्होंने अक्षवरी दरबार के सानगन आदि प्रसिद्ध संगीतज्ञों को गानविद्या में पराजित किया था और उक्त प्रभाव में अक्षवर के हृदय में दैन्य का उद्रेक और युगलकिशोर श्रीमती राम के चरणा में आगति का प्रादुर्भाव हुआ था। इनकी ग्यतिकाव्य का दम्य हृद्य ऐतिहासिक दृष्टि से इस प्रकार की संभावना में कोई कालयोग नहीं सिद्ध होता। अक्षवर द्वारा प्रचारित 'रामसाय भाति की मुद्राओं में अंकित सीता राम के चित्र में भी उक्त उल्लस की सार्यकता प्रमाणित होती है।

### सिया सखी

महात्मा गोपालदास 'सियासखी का राजस्थान में रचित रामभक्तों में विशिष्ट स्थान है। जयपुर से ३२ मील परिसर में स्थित हरमोभी नामक गाँव में इनका जन्म हुआ था। ये महात्मा श्रीमद्गोदास का परम्परा में ११वीं पीढ़ी में आते हैं। इनके पिता महात्मा सद्मणदास बुडाडा गोन क साइल ब्राह्मण थे। श्री रूपसरस द्वारा रचित गुरु परम्परा के अनुसार इनका सन्नेतवाम फाल्गुन वृष्ण ६, स० १८६७ में हुआ—

मुनि योगीश्वर तथा वसु शशि सबत गनिए ।

मान फाल्गुन वृष्ण पक्ष पच्छी तिथि ठनिए ॥

सीताराम समीप गये, नित सबन हित स्वामि ।

भक्ति तथा गान विद्या दोनों इन्हें अपने पिता महात्मा सद्मणदास में रिवध रूप में प्राप्त हुई थी। ये हिन्दी के अतिरिक्त सरसूत भाषा में भी काव्य रचना करते थे। रामजन्म तथा विवाहोत्सव सम्बन्धी इनके ५०० क लगभग पद प्राप्त हैं।

- 
- १ विशेष विवरण के लिए द्रष्टव्य—'रामभक्ति में रसिकसम्प्रदाय' पृ० ४१३। उक्त ग्रन्थ में इन्हें गौड़ ब्राह्मण लिखा गया है, जो बाद की खोजों से निराधार प्रमाणित हुआ। इसी प्रकार उनका जन्म स्थान बडागाँव बताया गया था, वह भी ठीक नहीं था। यहाँ इनके गुरु का नाम श्रीमद्गोदास दिया गया था, वह भी भ्रान्त था। इधर इनके जीवन सम्बन्धी अनेक महत्त्वपूर्ण तथ्य प्रकाश में आये हैं। उपयुक्त परिचय उहाँ पर आधारित है।

## चंद्र अली

श्री बलदेवदास 'चंद्रअली सियासखी जी के छोटे भाई थे। ये उनके चित्र-कूट चले जाने पर जयपुर में चादपोल वाली गद्दी के महत हुए थे। इधर इनकी एक रचना 'नवरस रहस्य प्रकाश' प्राप्त हुई है। रसिक परम्परा में ये यूयेस्वरी चंद्रकला जी के अशावतार माने जाते हैं। इन्होंने अपनी शृंगारी भावना के अनुसार ३२ कुशा का निर्माण कराया था। रूपसरस जी ने आराध्य की अष्ट-याम लीला पर इनके द्वारा रचे गये चार हजार छंदों की प्राप्ति का उल्लेख किया है—

चंद्रअली अवतार अज्ञतम नासक भानू ।

अष्टयाम लीला ललित चतुमहस्र प्रमानू ॥

'रामविवाह' विषयक इनका एक छन्द नीचे दिया जाता है—

जुगुल माधुरी रम बरसै री ।

धन घमड दूलह शृंगार पर भूषण दमक तडित दरसै री ॥

नव सुपमा झर लग्यो महल में गान गर्ज कृत बलि सरसै री ।

अद्भुत रससिंधु पूरित थिर भइ निमग्न सखि लागि चरसै री ॥

लगो लगन अनुराग भरे सब परिजन मज्जन अंग परसै री ।

'चंद्रअली' लखि छवि विवाह की रोम रोम अनि मनहरसै री ॥

अपनी रचना 'नवरस रहस्य प्रकाश' के अंत में इन्होंने 'युगल मजरी' नाम के एक रसिक सन्त का उल्लेख बड़ी श्रद्धा के साथ किया है। उससे पता चलता है कि भाव साधना में इन्होंने उनसे प्रेरणा प्राप्त की थी।'

## सूर किशोर

रसिक प्रकाश भक्तमाल में इन्हें पयहारी जी के ज्येष्ठ शिष्य श्रीह्रस्वामी का प्रशिष्य कहा गया है। ये भी जयपुर के निवासी थे। तत्कालीन जयपुर नरेश रामसिंह के व्यवहार से क्षुब्ध होकर जब मधुराचार्य गलता छोड़कर चित्रकूट चले गए तो इन्होंने भी वह स्थान त्यागकर लोहागल सीकर को अपनी साधना भूमि बना ली। जानकीजी ने प्रति इनका पिता का भाव था। ये इस वात्सल्य निष्ठा का निर्वाह अपने दैनिक जीवन में भी करते थे। पुत्री को सदैव गोपी में लिए रहते थे और उसके मनोविनोद के लिए नाना प्रकार के उपाय करते रहते थे। अयोध्या आने पर इन्हें किस प्रकार दिव्यदम्पति का दर्शन प्राप्त हुआ, इसकी



क्या लोकप्रसिद्ध है।<sup>1</sup> मामा प्रयागदास इही के शिष्य थे। इनकी सर्वविदित रचना 'मिथिला विलाम' है। इसके अतिरिक्त इनके कुछ फुटकर पद भी मिलते हैं। नीचे 'पदमुक्तावली' में प्राप्त इनकी तीन रचनाएँ दी जाती हैं। इनमें प्रथम का प्रतिपाद्य 'अगद रावण-सवाद' है। इससे विन्त होता है कि सूर किशोर जी ने भावपूर्ण पदा के अनिरिक्त कुछ चरितात्मक रचनाएँ भी की थी। इस प्रकार की इनकी कोई रचना अब तक प्रकाश में नहीं आई थी। दूसरे छन्द में जानकी धरणो में अनय निष्ठा व्यक्त की गई है और तीसरे छन्द में धनुष्यग का वणन है—

आव रघुवीर की सरन अद्भुत कहै मानि मत मूढ बर बचन भेगे ।

जाहु रे जाहु जब कोपि लकेश कह्यो भुजनि मेरी बसे काल तेरो ॥ टेक ॥

सुर असुर नाग नर बली इते जगत में इद्र ब्रह्मादि सबही नवाए ।

यह अद्भुत बड़ी बात पीछे रही रोछ कपि लक गढ लैन आए ॥२॥

धाम कर की अलप अगुरी अब भगि लक छिनकराही डहाऊ ।

कहा करौं नैक मोहि सक रघुवीर की रक तुहि मारि अब ही उडाऊ ॥३॥

होहि असौ बली मुग्ध कपि काहि नै बालि स बाप की बैर लीनो ।

तात के भ्रात की पतनि माता करी शत्रु की सरन जाय मूढ दीनो ॥४॥

हेतु भमतात मैं रावरे स लखिन धर्म की मैड जिहि फोरि डारी ।

परि है अब धूरि सुनि रावरेहु बदन राम अवतार बल डड धारी ॥५॥

सुनत ही बचन जानो फनिग की फन चप्यो सिध की पूछ सोवत मरोर्यो ।

परजरी आगि उर बीस लोचन बिकल पटक भुज उठत मित्रन निहोर्यो ॥

जोली यहै अँड अभिमान मद की भरनि धीव मैं बकि है द्रष्टि धीठी ॥

सरस रन बाँकुरी भुजा रघुवीर की जोली मति भूतें नाहि दीठी ॥६॥

चपल बनचरन की जानि चर बोरे अनि कहा राजान सौ बोनि जानै ।

छत्र की छाह इद्रादि सर धर करे बक्त नहि-धीठ जहाँ सक आनै ॥७॥

करहुँ जिय सक जो अधिक ताको गनो जो कछु अपनपी घटि बिचारो ।

भुजन सौ लपटि द्रढ-पाल सब दलमलीं धरनि नम पत्र ज्यो पारि डारो ॥८॥

अवर भटभेर समसेर अपमेर तू आपनो बल हीये नहि बिचारे ।

कहत परधान महाराज रावन बली मुग्ध कित आप सौ बाध मारे ॥९॥

पर्यो बलि द्वार प्रतिहारि बावन गना किकरो कौर दे दे जिवायो ।

तात मम पालणै आनि बाध्यो तवै रहपटन मारिके उबर ल्यायो ॥१०॥

यह मरम कै बचन सुनि पेद उर मैं भये चटपटी जीयें भृकुटी चढावे ।

है कोई सूर सावत मेरी सभा मारिल्यो मुग्ध नहि जान पावे ॥११॥

एक रहपट दीये मुकट उडि जाहिगे सभा सब चरन सो चापि डारौ ।  
 बालि को पूत यह सोचि जीय में कहै सिच होय मीढकनि कहा मारौ ॥१२॥  
 किहै अपराध उतपात छोटेन कौ बडन कौ क्षमा भूपन कहावे ।  
 जान द्यो दूत अबलों न मारे कहूँ पमुन सौ लखत जिय लाज आवै ॥१३॥  
 कहै सूरकिमोर हसि बालिनदन कहूँ यी कौन अब सीस तो सौ चपावे ।  
 नैक धरि धीर रणधीर रघुवीर भट देयि तरवारि कैसी बजावे ॥<sup>१</sup>

### राग भैरव

जानकी पद रेनि की मोहि जनमि जनमि आसा ।  
 बरख धरम काम मोछि सब वन तँऊ दामा ॥ टेक ॥  
 मदगयद अगद हनुमान सरन जासा ।  
 सिव को ध्यान निगम गान मुनिन कौ निवासा ॥१॥  
 सुरग भूतल जोग भोग ब्रह्म लोक वासा ।  
 सूर किसोर सब सुप पट विजन की निवासा ॥२॥

### राग पचम

हठये सिमु को चाप लिय सुभट सब,  
 पचि रहे तनकहूँ नाहि काहु उठायो ।  
 कहौ सिर धुनि त्रिप जनक येह,  
 जगद में नाहि बेसो वीर कोउ जननी जायो । टेक ।  
 मुनि बचन लपन अगराज मनु, ऊछल्यो  
 अगि ऊफणो चली सुभट तार्ई ।  
 कहौ कोदड कर पडि डारू असे,  
 बक अवलोकि भीहैं चढाई ॥१॥  
 अनुज कौ राषि प्रमु बाधि कटि, पीत पट,  
 नाथ गुर सीस अनुसीस पार्ई ।  
 उदित भयो भाल सोभा अपिल भवन की,  
 अमित बल तेज गभीरताई ॥२॥

१ पबमुक्तावली छंद सख्या १६, ३६ अ, ब, ४० अ

२ पबमुक्तावली, छंद सख्या ६८

मच परभात के भान स जगमगे,  
 ऊमगिद गुरज नहि रह या छात्र ।  
 जनक महाराजि मुपचद कहु दुरि गयो,  
 ओर त्रिप देपि ऊगन मिलान् ॥३॥  
 उतरि छिवि सो चले अतिहि लागत भने,  
 कुरप से दरभ ते जरे जाही ॥  
 ऐक ही वार दुप भाजि गयो सन्न का,  
 रह गयो तनक सो धनु तहाँ ही ॥४॥  
 अबनि पग धारते मदन मन मारते,  
 भाट चहुँ ओर ते बिरद बोने ।  
 जिना बानेत रघुबस के बाँकुरें  
 जनक दुपपाट ओर कौन पोलें ॥५॥  
 फत्री हैं अलक वह ललित मुप कवल परि,  
 माधुरी हँसनि मुप सवन दी है ।  
 मत गजराज भुज सुडि फेरन जटकि,  
 चरन लौं ललकि चित चोरि ली है ॥६॥  
 सावर कुँवर सिव चाप भजन चल्पो,  
 बात कह जाय पुर में पलाई ।  
 पलन क ललन छाडे ललना सफल  
 कल न परि तनकुह पल न लाई ॥७॥  
 रमती क्षमती अट अटनि में बहो,  
 घटिन में भानु छट्टा चिमवके ।  
 हूलसती बगिसती निकसती देत छवि,  
 उडत अचल अपल अंग दमके ॥८॥  
 हे सपी ! हो सपी हो ननद आवरी  
 सास किबु भ्रात भगनी बुलावे ।  
 है बडो चावरी दमकि बलि आवरी  
 साँवरे धनस केसे उठावें ॥९॥  
 मानु आनद को मेह बरस्यो नगरि  
 तरजि भामनि चली गलिन माँही ॥  
 प्रेम जल तीर तुष हो तुरत आतुर,  
 चली अगि मुपन मुकर झलमलाई ॥१०॥

अरवरति परत उरझत पद चीर लगि  
 जग सुधि भुलि भूपन बनाई ॥  
 हार वहाँ बनक भूपन कहँ कठ मनि  
 कुल वधू बदन सबही दीपाई ॥११॥  
 लोक अर वेद की लाज कुलकानि तजि  
 छुटि गई एक ही धार जैसे ।  
 जैसे ससार मुप सबनि वैराग भरि  
 फिर चले भवनि आवै न तैस ॥१२॥  
 साल के अग सो ललकि लपटी चहँ',  
 भीर गुरजनन की अरवराई ।  
 उरझि केउ अलक सुभाल के उ तीलक  
 सुपाष अनुराग निपिनाँ अघाई ॥१३॥  
 केउ उर माल केउ चाल देपि छकि रही  
 केउ मुप देपि साभा लुभानी ।  
 नैन केउ नासिका करन बुडल निरपि  
 उरयि केउ आयि मुरखी न पाई ॥१४॥  
 देपि रणवास दरबार कवतगि लम्यो  
 जन में सीये मात सीय अरन राई ।  
 अलप जल मीन ज्यो कसमसै मनहिमन  
 कठिन बोदड उठवै वै नाही ॥१५॥  
 द्रगन की कोर का वोर निपि रसमस  
 लसे कछु आपयो करि अधीनू ।  
 कलप सो पलक में जान जायो न प्रभु  
 प्रगटि कीयो प्रेम फिरि चली नवीनू ॥१६॥  
 देपि रहे चाहि नर नारि अबर सकल  
 पुर जा पुर में कहू ना समावै ।  
 भीर में चीर फटि टूटि भूपन परत  
 गिरत पग धरत कोउ नाबु नावै ॥१७॥  
 घूरि उडि भूरि परि सोर अघार भयो,  
 दरमरे जातिन रह लव लाई ।  
 मनुह वरपा समै उमगि बहो बरन को,  
 प्रेम जय बन वादर चलाई ॥१८॥

मुरवधू ठोर ही ठोर सब जानि चढि  
 प्रेम बेहबल भइ अति सुहाई ॥  
 हरपती बरपती फूल रघुवीर परि  
 निरपिती बदन लेती बलाई ॥१६॥  
 रूप की रासि सीरमोर राजान के  
 देखि सीये मान हीवरो सीराणू ।  
 ऐह कुंवर लाडिलो होय जु कुंवरि को  
 सुफल करि जनम बड भाग मायो ॥२०॥  
 सीये कैं सतति सकलप भेरे करनि  
 मात को पूत असो जनैगो ।  
 एह म्रदुल कमल सीवैह वच कठिन  
 सोहा दई बात कैसें बनेगी ॥२१॥  
 होह जनि हारि कहू नारि धीर न धरे,  
 ज्यो ज्यो प्रभु घनसक्के निकटि आवैं ।  
 आपनु आपनु पुय फल दान दे  
 लोग सब देव देवी मनावैं ॥२२॥  
 कोहु देपौ न जायो नही कब गहू यो  
 राम सिव चाप असे चढायो ।  
 अति विक्राल महासाल तिहु लोक को  
 तनक में तोरि धरनी गीरायो ॥२३॥  
 डीगमगे धरनि सिंसि तरन हूँ धरसलै,  
 कमठ सिव सेसहू कलमलाये ।  
 सुरग पाताल द्रगपाल सागर क्षलकि  
 गाजि ब्रैह्मड सब डगमगायो ॥२४॥  
 नगर नभ माहि नीसान बाजन लगे  
 बीजे की रीति कुंवरि राम लीहो ।  
 जानकी आय परि पाय करि कूवल सू  
 लाल कू माल पहराए दीन्ही ॥२५॥  
 उठि गये भूष सब बदन करि करि बुरो,  
 जनकपुर राम सीए व्याह ठान्या ।  
 व्याहि च्यारो कुंवर आय कवसल नगरि  
 मूर किसोर तिहुँ लोक जायो ॥२६॥



बहुरयी श्री गुर चरन कवल कौं बेर-बेर सिर नाऊं ।  
 चरित मनोहर श्री रघुवर कौ बाल केलि कौ गाऊं ॥  
 छगन मगन च्यारौ राजवी जू जनक सुता हित दाय ।  
 किलकि-किलकि लरपरनि सौं चलत घुटरुवन धाय ॥  
 छगन मगन च्यारौं ही भाई जनक सुतनि हित दाई ।  
 बाल विनोत् चाहि सब जननी आनन्द उर न समाई ॥  
 रतन जटित नृप मदन अजिर मधि बिहरत बाल सुभाई ।  
 बाल केनि तिन की गति निरपत 'जन हरियो बलि जाई ॥२॥  
 च्यार कुवर बडराईज जू च्यारौं अति सुकमार ।  
 राजिवनेन मुहावने जू बिहरै नृप मन मझार ॥  
 दोय मोर दोय नील बनजतन राजत रूप उदार ।  
 पीत झंगूली सीस चौतनी उर मोतिन कौ हारा ॥  
 कटि तटि किकिनि रत्न मनोहर पद नूपर झुनकार ।  
 राय आंगन में राजकुवर मिलि च्यारो करत बिहार ॥३॥  
 नृप दशरथ के लाडिले जू बिहरत अषधि मझार ।  
 सग सपा लीये जोरि के जू सबही ऐक उनिहार ॥  
 बाल केलि के ललित विभूषन फबि रही छवि असभारी ।  
 कटि तनौर पीत पट सोभिन करवर कोण्ड धारी ॥  
 सुर नर मुनि जन पुरवासिन कौ त्रिपुल सुआनकारी ।  
 नृप दशरथ के कुषरन ऊपर जन हरियो बनिहारी ॥४॥  
 रघुकुल मणि च्यारौ राजई जू बिहरत सरजू तीर ।  
 कटि तटि भाय सबनि रहै जू सारग धरे रघुवीर ॥  
 सारग धरे रघुवीर विभाकर सोहै गुण निधि गभीरा ।  
 जन मन करपत आनन्द बरपत बिहरत सरजू तीरा ॥  
 इहि विधि बिहरत निकर सपा निये निगमहुँ पार न पावै ।  
 निरपि केलि कला श्री रघुवर की पुरजन मनहि सिहावै ॥५॥  
 दशरथ सुत च्यारौ देपनै जू आण रिप अवधि निवत ।  
 राम लपन मन में बने जू बरनत श्रुति सनेत ॥  
 तिन की कीरति गुन गरवाई बरनत श्रुति सनिकेतु ।  
 दई आसिया रिपवर नृप कौ जीव जिग सिधि हेतु ॥  
 बारे सुत रिपवर कौ दनै सकुचे दशरथ राई ।  
 प्राननदू तें अधिक पियारे तातें दीये न जाई ॥६॥

तब बोले रिपराजजू जी कीये मुनि वेद उचार ।  
 मुनहु बचन बड भूपती जू करि नीहचे निरपार ॥  
 राकस कुल कौं जीति अवधिपति ये हरि हैं भू भाग ।  
 सिधि करे मम जिग कौं निहचे ऐ दोउ राजकुमार ॥  
 कल कीरनि रघुपनि की भू पर ए करिहैं बिसतार ।  
 इनमे गुण सु अपार अमन सुठि कहि कोउ लहत न पार ॥७॥  
 इह मुनि कैं वृष हरपिगी जू दीये सुत रिप कीहो लार ।  
 'जन हरीयो' तिन ऊपरें जू बार्यो बारबार ॥  
 दशरथ भूप हरपि कैं रिप कौं दीयो कुवर दोउ भाई ।  
 चले हैं चाप असन परि घरिकें सोभा बरनी न जाई ॥  
 पीत बसन गज तार हार उर भूपन अग छबि छाण ।  
 सुन्दर मुप की सीव मनोहर रिप सग लगन मुहाय ॥८॥  
 रिप कैं सग मग मैं चले जू दोउ बर बीर उतार ।  
 बला अतिबला विद्या निपुन्य जू कीये दोउ राजकुमार ॥  
 ताही अवसरि नाम ताडिका आई बन करत बिहार ।  
 श्री रघुवर अस लगी राकसी कीनीं धनुष टकार ॥  
 अँचि बान उर वेध्यो रघुवर मुप चली रुधिर की धार ।  
 निक्से प्रान छिनक मैं ताके लागे मरम सुभार ॥९॥  
 देपि पराक्रम राम को जू रिप हरये बारबार ।  
 माधुरी मूरति बड हरप सौं जू ताये उर प्रान अधार ॥  
 अतुल प्रताप देपि रघुबीर कौ हरये रिपबर राई ।  
 मम जिग्य की ये पुरन करिहै निहचे मन मैं आई ॥  
 जगत ईस तिनके सग लागे धन्य रिप भाग निकाई ।  
 कौसलेस के कुँवरन ऊपर 'जन हरीयो' बलि जाई ॥१०॥  
 चलि आश्रम रिप कैं गये जू सुन्दर बीर उतार ।  
 रिप आरम्भ जिग्य कौ कीयो जू आवे और रिप अपार ॥  
 जिग्य मधि बैठे सब रिपवर कीना वेद उचार ।  
 ताही दिन मिलि कैं दोउ राकस आए दुपहरो वार ॥  
 श्री रघुकुल मणि लेप निसाचर कीनी बौदड कर धार ।  
 दोय बान ले साधे रघुवर वेधे भरम सुभार ॥११॥  
 एव बान लग्यो मारीच के जू डारयो सिधु मझारि ।  
 दूजो लग्यो हैं सुबाहु के जू भरत न लाई बार ॥



सप्त द्यौस कीनी जग्य रछा वीरासन सज्जदारा ।  
सात बरस के दशरथ नन्दन हरे रावस भू भारा ॥  
पौहौप वृष्टि बृन्दारक कीनी बाजे दुदुभि बाजा ।  
हरपे सुर मुनिवर बनवासी सरयो रिपवर को काजा ॥१२॥

हरपे हैं रिपवरराय जू जी भए मन भावतो मोद ।  
भौ चतुरानन ना सहै जू सो रिप लीने गो ॥  
कीने गोदहि रिपवर जू नै नेह लागि दोउ भाई ।  
कौमलेस के कुवर सुन्दरवर पूजे रिपवर राई ॥  
मिथुलापुर मिथुलेसुर जिग की हिन सौ कथा सुनाई ॥१३॥

जनक सुयम्बर ठानियो जू सीताज्ञ को व्याह ।  
कुँवरि विवाहन कारने जू कीयी नृप बहुत उछाह ॥  
सुर जुरे रसातल भूतल के नर सूर बीर अधिकाए ।  
धनुष जग्न मुनि जनक राज को देपन कौ चलि आए ॥  
देस देस के भूपति मिथुला आये जग्यउमाहै ।  
भवधनु धारि अँचि केँ भजे सोई कुँवरि विवाहै ॥ १४ ॥

फिरि बोले रिपराज जू जी चली हो तो देपन जाँय ।  
मिथुलेसुर बहु भाँति तैं जू सनमुप मिलि है आय ॥  
तुम कौ लपि मिथुलेसुर भूपति पूछिहै नेह सुभाई ।  
भूपन म रघुवस राय जस बलि हैं अधिकाई ॥  
मधुर बचन सुनि मुनिवर जू के हरपे दौयो भाई ।  
मिथुलापुर के जग्य की देपन मन मे ऊपजि भाई ॥ १५ ॥

भुनि के मग मिथुला चले जू श्री अवधेस क लान ।  
पीत बरन कटि काधनी जू हाया सर चाप रसाल ॥  
करन कनक कली सीस चौतनी मृग मद तिलक रसाला ।  
नाना रग सुहावन सुन्दर उर कुसमनि की माला ॥  
मुनिवर मन के मो बढावन राजीव नैन बिमाला ।  
'जन हरियो' बलि सोभा ऊपर मानौ मग चलत मराला ॥ १६ ॥

गौनम के आश्रम गये जू श्री रघुवर पावधारि ।  
आश्रम देपि सुहावनो जू बोले बचन विचारि ॥  
आश्रम रम्यो कौन की रिप जू कहिये विधि सुबिचारी ।  
विटपनि करि अलि हरित मनोहर सोहै मुमन फलभारी ॥

अति रवनीक सुहावन आश्रम सब विधि आनद दाई ।  
 हीन रहत मृग पक्षी कुन विन हम कौं कही सुनाई ॥ १७ ॥  
 तब बोले रिप राजजू जी कुवरन के हितकारी ।  
 आश्रम रिप गौतम कौ जू थापी अहल्या नारी ॥  
 चरन रति वाङ्मन है नित प्रति चलो मु याकौं ठारी ।  
 कीरति होय तुम्हारी भूपर उघरिहै रिप की नारी ॥  
 सुनि बर नारी उधारी रघुवर पति के लोक सिघाई ।  
 जन हरीया श्री राम चरन भजि अमलस आनन्द दाई ॥ १८ ॥  
 मिथुलापुर मुनिवर गय जू बैठे रिप ब्राँटिक जाय ।  
 पूजा द्रव्य विधि सौं लिये जू आये मिथुलापुर राय ॥  
 कर्पू प्रणाम भूप रिपवर कौ पूजो ह विविध सबताई ।  
 राम लपन दाठ दीपि जनकजू पूछे रिपराज सुभाई ॥  
 कौन भूप के कुवर छबीले अतिसै आनन्द दाई ।  
 विनही नावै लगत सुहावन मुनिवर ए दोठ भाई ॥ १९ ॥  
 तब बोले रिपराज जू जी मन में अति मुचिपाई ।  
 सुत बड अवधिमुवाल के जू भूपति ए दोठ भाई ॥  
 प्रथम सिघारी नाम ताडिका रघुवर वन में आई ।  
 मम जिग्य कौ ईन पूरन कीनों हृति राक्स दुपनाई ॥  
 थाप मोचि रिपवर पतिनी कौ आए भव षोड चाई ।  
 राम लपन इन नाम जनक जू इतमे गुन गरवाई ॥ २० ॥  
 फिरि बोले रिपराज जू जी हित सौं वचन सुनाय ।  
 वेगि सरासन सम्भु कौ जू त्रिपवी इनकौ आय ॥  
 यह सुनि के हरये मिथुलेसुर दीये भट तुरत पठाई ।  
 रिपवर जू सौं नेह लागि कें बोने बचन सुनाई ॥  
 चाप चढावै रामचद्र जू जाय कोटि सौं लाई ।  
 मम आतमजा कुवरि जानकी देहु इनकौ सतमा भाई ॥ २१ ॥  
 तब हरये रिपराज जू जी कुवर सनेह सुभाई ।  
 हँमि कें परम उछाह सौं जू रिप चितये दोठ भाई ॥  
 मुनिवर हरये आनन्द बरये मन म अति मुप पायी ।  
 जो कहुँ रघुवर चाप चढावै होय मनोरथ भायी ॥  
 जनक भूप बहु भाँति त्रिनय करि पूजि पाहुन पाये ।  
 रिपवर सहित कुँवर दशरथ क जिग्य भूमि पधराये ॥ २२ ॥

रघुकुल दीपा जिय मैं जू बैठे बड मच विद्याय ।  
 रिपवर जू की गोद मैं जू लागत परम सुहाय ॥  
 कोमल तन दोउ राजबुधर वर सोभा बरती न जाई ।  
 सहस किरन कौ सग ल सोमित मानो रवि जये आई ॥  
 तिहि अवसरि दोउ कुंवरन निग्व रहे नर नारि लुभाई ।  
 हरपि हरपि दोउ कुंवरन ऊपर जन हरीयो बनि जाई ॥ २३ ॥  
 दस देस के भूपत जू होने जिय मझारि ।  
 महा सुभट सस्र धरें जू आय साजि सिगारि ॥  
 कर्तहि रोप अति देपि चाप कौ धारें भुजा पसारी ।  
 चाप चलत नहि नैक अबनि तैं पल पचि पचि हारी ॥  
 केत गये बिसारि दाप कौ भूप सजय मुझाई ।  
 महा निलज त नाज बिहूने रहे अमिमान धराइ ॥ २४ ॥  
 पच दस सहस्र भन लागि कैं जू त्याये चाप धलाय ।  
 बहु घटनि भूयित कीयो जू धर्यो है मभा म आय ॥  
 दससिर आदि सहस्र भुज से भट कोउ न सबयो उठाई ।  
 भव बड दाप ताप तैं सकित केत गये पलाई ।  
 भूप देपि ता महा चाप कौ केते भूप पलाए ॥  
 जन हरीया त पुनि पुनि सोचत जैस बित्त गभाए ॥ २५ ॥  
 सोचे हैं जनक भुवाल जी लीनें रुप भाट बुलाय ।  
 सुमति विमति दोउ गुनत ही जू आय वेग चनाय ॥  
 तिहि अवसरि दोउ भाट सभा मधि लानी भुजा उचाई ।  
 सुरगुर रसातल भूपालन सो बोले बचन मुनाई ॥  
 सुनीं सभा के सबे भूप मिलि मिथुलेमुर पन सोई ।  
 चाप बढावैं गिरजापति कौ सो कया वर होई ॥ २६ ॥  
 सुभट नही कोउ तुम मही जू सक्यौ नही चाप बढाय ।  
 काहे कौ तुम आर्येजू जेहौं लाज गमाय ॥  
 सुनत ही बचन भाट कौ लजि कै भूप गय मुरवाई ।  
 तिहि अवसर रघुकुल के महन हरये दोऊ भाई ॥  
 रिपवर महत कुवर दोउ हरये भूप सबे बिलपानैं ।  
 हस उदैतैं भीर भये मानौं सारग फीक फिकानै ॥ २७ ॥  
 भाट बचन सुनि राप क जू बोले हैं लपन रिसाय ।  
 रघुवसनि कौ सुनत ही जू अतैं कोउ कहत न काय ॥

मो कौ आग्या दीजे रघुवर लैहौं तुरत चढाई ।  
 छत्र क दड सम न जौं सरासन तो हो वीर बहाई ॥  
 तुम आग्या भगवान भुवनपति द्वयो ब्रह्ममाड उढाई ।  
 जर जर जठर मनाक सम्भु कौ कौ अम कोरड आई ॥ २८ ॥  
 श्री रघुवर तब लपन कौ जू बरजे हैं सहज सुभाई ।  
 रिपवर आज्ञा पाइ कै जू उठे हैं रघुवर राइ ॥  
 श्री रघुवर अस जानि लपन कौ बरजे हैं सैन सुभाइ ।  
 अग्या पाय राज रिप जू की उठे हैं रघुराई ॥  
 उठे हैं रघुकुल बस बिभाकर हरये हैं सत सरोजा ।  
 कुमद विमन भये अमृत अवनिपति मिटि गयो सब की बोजा ॥ २९ ॥  
 कोतुग देपन राम कौ जू आये पुर के नर नारि ।  
 चडि चटि मन्दिर मालिया जू त्रिय डारै भूपन वारि ॥  
 नैन निरपि दोउ कुवर लाडिले हरपै वारौ वारी ।  
 मिथुलापुर की नारि नेह लगि तन की दसा बिसारी ॥  
 चित्र समान भये नर नारी पल सौ पल नहिं लावै ।  
 मिथुलापुर जन भाग की महिमा ब्रह्मादिन नहिं पावै ॥ ३० ॥  
 छवीने कुवर दोउ देपि कै जू हरषी सब पुर नारि ।  
 आनन्द उर न समावई जू रघुवर रूप निहारि ॥  
 रूप निरपि आनद भयो जू सब कै ज्यूं सफरी लह वारी ।  
 भामिन दोऊ कुवरन ऊपर तन मन करे सु वारी ॥  
 रूप निहारि कुवर रघुवर कौ जुवती अैसे आनै ।  
 कुवरी कौ बर होहिं सावरी जोर विधाता वानै ॥ ३१ ॥  
 नारी मनावै देवता जू हरिहर गणपति राय ।  
 चाप चलावै राम जू जी कीज्यौ सबही सहाय ॥  
 आजि लगै पूजे नाना विधि हम जो हेत लगाई ।  
 चाप चढ़ावै श्री रघुवर जू कीज्यौ बेग सहाई ॥  
 नारि सबे मिलि देव मनावै बेर बेर सिर नावै ।  
 हौय मनोरथ पूरत हमरो रघुवर चाप चढ़ावै ॥३२॥  
 सोचत पतनी जनक की जू सपीमन सहज सुभाई ।  
 नेम कठिन भूपति लीयो जू जो कोउ बरजे जाई ॥  
 बठिन नेम लीनों बड भूपति जो कोउ बरजे जाई ।  
 सली जोग बर कुवर सावरी सब भूपन कौ राई ॥

जैसे पिछताप जनक की रानी रघुवर रूप निहारी ।  
 गीरध धनुष कुंवर अति कोमल बनी कठिन अति भारी ॥३३॥  
 घतुर सपी बोधी नेह सी जू गुनी रानी बचन सुहाय ।  
 वहाँ वारिनिधि बडो अगम अनि वहाँ अगस्त मुनिराय ।  
 वहाँ वारिनिधि अति बडी जू वहाँ अगस्त मुनिराय ।  
 सकति प्रताप सबल सरितापति अँचें गये सहज सुभाय ॥  
 मत्त दीप कित महा भेल्नी कित रवि मंडल सोई ।  
 ध्याति चराचर तेज दसों निमि अमल प्रकासक होई ॥३४॥  
 योही रघुवर धनुष कौं जू तोरि हैं लेहैं तुरत चढाई ।  
 मसय मन में जिन करो जू होयहैं जू यह सति भाई ॥  
 सपी वचन मुनि अति मुय पापी उपग्यौ आनदभारी ।  
 हरपी नारि जनक की मन में हरपी जनक कुमारी ॥  
 इहि विधि करत विचार जनक तिय रघुवर छविहि निहारें ।  
 निज कुलदेव बनावत रानी तन मन धन सब वारें ॥३५॥  
 कुंवरी झाँके गोपरे जू कर बर माला धारि ।  
 रघुवर रूप निहारि कै जू रही मन सोच विचारि ॥  
 सब सपीयन सौं कह्यौ कुंवरि यो कोमल बचन उचारी ।  
 बरिहैं कुंवर सांवरो सुंदर चाप चढावो कोउ धारी ॥  
 इहि विधि कुंवरि कह्यौ जो तिन सौं अस जो भूप दिग्वा ।  
 राजकुंवारि वर्यौ सीधरौ कोउ दुदुभी बाजें हरपे हैं जनक भुवाला ॥३६॥  
 तब मैथुलपुरराजजू जी कह्यौ रिषवर सी जाय ।  
 अवधेसुर भूपाल कौं लीजे वेगि बुलाय ॥  
 मुनिवर कह्यौ जनक सौं इहि विधि कीजे धगि उपाई ।  
 नृप रिषवर की आग्या पाई पाती लिपी है बनाई ॥  
 स्वस्ति स्वस्ति रघुकुल क मडन श्री कोसलपुर राई ।  
 दोउ कुंवरन कौं सगि ले भूपति आवी जान बनाई ॥३७॥  
 पत्नी लिपी है सनेह की जू दीयो नृप दूत पठाय ।  
 चाल्यो दूत उतावलो जू अवधि पहुँचो आय ॥  
 पत्नी आय भूप दशरथ कौं दीनी सीस नवाई ।  
 बाबी हरपि नेह लगी हित सौं श्री अवधेसुर राई ।  
 कौमल्यादि मात मुन हरपी पत्नी जनक पठाई ।  
 हरपे फिरत सकल पुरवामी राम लपन मुधि आई ॥४०॥

वाजत अवधि बघावनी जू भूपति दशरथ द्वार ।  
 हाटक मणि गण दूत की जू रागिन दीनें हार ॥  
 पुर के तरुन जठर नर-नारी मन अनमोद न भावै ।  
 मंगलचारु ब्याह की ग्रह ग्रह वाजत अवधि बघावै ॥  
 राजी बढ जान गुदावै अवधिपति सोमा बरनी न जाई ।  
 हय पय गय रय विविधि भानि के चतुरग सेन बनाई ॥४१॥  
 बढ गेंवर ग्य राजई जू राजी नृप जान मुहाई ।  
 हय दल पय दल धुमराजु सागत परम मृहाई ।  
 धुजा पताफा परहरै छवि मी परत निसाना घाई ।  
 इहि विधि रघुकुल मदन भूपति मिथुला पहुँचे आई ॥  
 हरये निरत जनकपुर वानी सजहि समगल साजा ।  
 बढ मंगल यो मिथुलापुर में बाजे मंगल बाजा ॥४२॥  
 सोहेसो अवधेश क जू आय मैथुलपुर राय ।  
 गज मिथू रय राजई जू बहु विधि साज बनाय ॥  
 पुरजन सगि मुरजन मिनि आय दरसन हत गुनाई ।  
 बाजे विविधि बजावहि गायक मग अम तृतत चाई ॥  
 सोहेने अवधेशुरजी के श्री मिथिमापुर आय ।  
 परम उदाह सन्न सोमा कुत्र तहा विधि सो पपराय ॥४३॥  
 रिषवर की अवधेश जू मिने है अजि हित माय ।  
 रिषवर दोई राजई जू मय भूत दशरथ पाय ॥  
 पदबद मुनिवर क भूपति बर मर गिर पाय ।  
 राम सपन दोउ साजिल तीनों उर सो साय ॥  
 दोउ कर जोरि मूय रिषवर की कीनी बहूत बहाई ।  
 न्ह सगाई जनकराज की तुम निरवा सो पाई ॥४४॥  
 मिथिमापुर मगल मय जू हगल सब पर नाग ।  
 सोयो बगर थोटा जू रागे है मदन गुपारी ॥  
 सोमीकर मय विर सरना थोह पूरे गुन बायो ।  
 रगरभा मुह बकि कोहिना विर है निरर गेंवारी ॥  
 भूपति मदन जन्मये अजि साभा बनी धम बायो ।  
 सोरम मन्निन अजि जनक क रागे है नातुर पारी ॥४५॥  
 सोरम बा है मन्निन जू रघुवर गजकुमार ।  
 रघुन अजि निर महरा जू हीर धोरी सुबग मार ॥

पहरे कुंवर वसरया जामा उर मोतीयन के हारा ।  
 अस्व आरोहन दसरथ नन्न जान बनी इकसारा ॥  
 मगल कलस सीस धरि भामनि नीराजने आई ।  
 तिहि औसर रघुकुल मंडन पर जाहरीयो बलि जाई ॥४६॥  
 कुंवरन को वरै आरयो जू जीती जन वारोबार ।  
 भामिनि चडि चडि भानिया जू गावै मगलाचार ॥  
 जलमुत कुंवरन उपरै जू सुदरि मनु वरपे जल धारा ।  
 घुन्दारक पे निरपि हरपके वरपत कुसम अपारा ॥  
 तोरन बांधि विपुल सोभा सो फिर जनवासै आये ।  
 जनकराय बड सोधि महरत चारयो कुंवर बुलाये ॥४७॥  
 चोरी चढ़े हसि लाडिल जू बैठे मडप तर जाय ।  
 वसिष्ठ मुनि बिस्वामिनजू जी सतानद बैठे हैं आय ।  
 अबधेसुर मिथलेसुर दोऊ सीने भूष बुलाई ।  
 कुंवरन बावै बोर वे विध लाइ कुंवरि पधराई ॥  
 अतुलत छवि धरि कुंवर लाडिले बैठे मडप आई ।  
 दूलह दुलहिन सोभा ऊपरि जनहरीयो बलि जाई ॥४८॥  
 जनकराज बड हरप जू घोये रघुवर पाय ।  
 सो जल लै निज सीस में जू धारयो नेह सुभाय ॥  
 फिर बोले मिथलेसुर भूपति कोमल बचन सुनाई ।  
 मैं तुम को मम कुंवरि जानकी दीनी है रघुवर राई ॥  
 जनकराज बड अमल हरप जुत कीना बहुत बडाई ।  
 च्यारौ कुंवरि च्यारौ कुंवरन को दीनी मधुलराई ॥४९॥  
 सीता अरपी राम को जु उरमिला अरपी सेप ।  
 श्रुतिकीरति सत्रुघन को जू माडवी भरथ बसप ॥  
 इहि विधि भूप कुंवर को करगहि कुंवरी पाणि गहायो ।  
 भव चतुरानन दुलभ दरसन सा बर चोरी आयो ॥  
 वरनो कहा सो औसर को सुख भारती बरन न जाई ।  
 के जानै तिहि समय निकट जन के दोउ भूपति राई ॥५०॥  
 वसिष्ठ कहै देपो जनक को जू धनि बड भाग विप्यात ।  
 सीता सी निज पुत्रिका जू रघुवर से जामात ॥  
 भव चतुरानन घ्यान न आवै निगमहु अगम बतायो ।  
 अकल अपार अनीह अगोचर मो बर चोरी आयो ॥

नीरस ज्ञानी लहै न मुपनै तपसी तप करि हारे ।  
 जनकराज निज कर पद धोये तोय सुसीतल घारे ॥५१॥  
 बसन गाठि रिपरजजू जी दीनी है विधि सोबनाय ।  
 पाणिग्रहण कीनै परसपरजू लागत परम सुहाय ॥  
 कनक कलम विचि राष्यी विधि सौ मुनीयन चौक पुराई ।  
 साकलिसमिध मगाय तिहूँ मुनि कीनों हौ मधु आई ॥  
 वेद रीति करि मुनिवर हित सौ पाणिग्रहण करवायो ।  
 जातवेद कीयो जुगत मत्र करि केरा कु कुवर उठाये ॥५२॥  
 दुलहिन सग लेत भावरि जू दूलह राजकुवार ।  
 बहु विप्रन को सग लीये जू करै मुनि वेद उचार ॥  
 अटनि क्षरोषा नवल मामिनी गावै मगलचारा ।  
 हास्य करै नवछावरि मणिगण मुक्ता बारीवारा ॥  
 वेद रीति करि दई भावरी फिरि आसन बैठाए ।  
 भई हयलेखी छोडन बिरिया मुनिवर जनक तुलाए ॥५३॥  
 हयलेखी बहु विधि दियो जू श्री मैथुलपुर राय ।  
 जनक कनक नग बहु दीय जू बरनि साकासौ जाय ॥  
 भूपति निरधि कुवर कुवरी कौ आनद उर न समाई ।  
 रानी हरप न मावै मन मी वर वर बलि जाई ॥  
 जनकराज गड वेदरीति करि हयलेखा सछुडाय ।  
 परनी कुवरि मिथिलेसुर जू की अमर पट्टप कर पाये ॥५४॥  
 भूपति बोले जीव नै जू श्री मैथुलपुर राय ।  
 घन मोला अति सोहना जू आसन दीये हैं विधाय ॥  
 चौकी जटित रतन मणि मुक्ता घरी सब आगै आय ।  
 क्षारी भरी है नीर सातल सौ सोबरन थाल सुहाय ॥  
 च्यारी कुवर सहत अवधेसुर सोमित जान सुहाई ।  
 मिथलसुर माढे याहि विधि जीमन बैठे आई ॥५५॥  
 निकर नृपन को सग लीय जू परोक्षे तिरोहितराय ।  
 बहू पक्वान ससालना जू गिनीय सोकापै जाय ॥  
 भक्ष भोजि अर लेह जि चोधि सुरधि बहु भाँति बनाई ।  
 वड पहुँनो तिरोहित पति की का अस बरनि सुनाई ॥  
 कनक जीराई भोगकोर कल्यो हीरजाति सुपन्नासा ।  
 क्षिनवा दौन प्रसाद कमोदा सगरो परम सुवासा ॥



दही चगरया जम्प्यो सरग अति चिवरा सकर मिलाई ॥५६॥  
 मुगोरी मन भावता जू पापर चनक पतार ।  
 दहिय वटक अरु बिन दही जू सालन अगिनत और ॥  
 नीबू आब अरु कैर अयाभो बहु विधि धरयो बनाई ।  
 अदरप रुचिर अमरकद अरइ बेसन भटा मुहाई ॥  
 किसमिस दाप बलि फल पारिक विविधि भाति धरे आई ।  
 अमृत फल सहतूत सब फल कमरप अति रुचिदाई ॥  
 जनक रतन जटि बिजना ढौरें नेह न बर्या जाई ।  
 जनक राय के नवल नेह सौ जीमत रघुकुल राई ॥५७॥  
 दूलह रामलला तोहि गारी कहा कहै दीजे हो ।  
 दूलह राम लला तुमरो रूप निरपि के जीजे हो ॥५८॥  
 दूलह राम लला तुम जबतैं इहि पुर आये हो ।  
 दूलह राम लला हम धाम काम बिसराय हो ॥५९॥  
 दूलह राम लला ये तौ धनि पितु मात तुमारे हो ।  
 दूलह राम लला सो तो समधी भये हैं हमारे हो ॥६०॥  
 दूलह राम लला तुम तपस्या करी सभारी हो ।  
 दूलह राम लला तैं चोरी चढे हमारी हो ॥६१॥  
 दूलह राम लला तुमारे मात पिता दोउ गोरे हो ।  
 दूलह राम लला तुम साबरे रुप किसोरे हो ॥६२॥  
 दूलह राम लला एक अचरिज देखत भारी हो ।  
 दूलह राम लला तुमारे वीर और उनिहारी हो ॥६३॥  
 दूलह राम लला रानी कहा पाय तुम जाये हो ।  
 दूलह राम लला भूपन के भूप कहाये हो ॥६४॥  
 दूलह राम लला कुमकुम कुल देव मायाये हो ।  
 दूलह राम लला सब देखत चाप चलाये हो ॥६५॥  
 दूलह राम लला जाको सकल भूप पचि हारे हो ।  
 दूलह राम लला तुम पड पड करि डार हो ॥६६॥  
 दूलह राम लला तुम सु तु समधानें गारी हो ।  
 दूलह राम लला सो ता सत जनन क प्यारे हो ॥६७॥  
 दूलह रामलला गारी गावैं जनक पुर नारी हो ।  
 दूलह राम लला तहाँ जनहरीयो बलिहारी हो ॥६८॥

जीमत रघुकुल राय जू जी त्रिया गावें गारि सुहाय ।  
 सारद विधि सगिरे जू जी सो मुप बरनि न जाय ॥  
 जीमत रघुकुल राय जू जी त्रिया गावें गारि सुहाय ।  
 सारद विधि सगिरे जू जी सो मुप बरनि न जाय ॥  
 समधानें जीमत रघुकुलमणि भामनि गावत गारी ।  
 भूप कृवर मुनि अति मुप पायी उपजत आनन्द भारी ॥  
 जीवत राम जनक के महहे नारि गारि दे गावें ।  
 दस सत बदन निगम चतुरानन सोउ पार न पावें ॥  
 भई सबउ ज्योनार सपूरण अचवन जनक करायो ।  
 पनवारो श्री रामलपन को जनहरीये तहाँ पायो ॥६६॥  
 दूधा भाती पेलही जू जनक मुखदन मझारि ।  
 अति मीठी मन भावता जू गावे नूतमनारि ॥  
 पेलें कृवरी कृवर सुदर बर वाटे मुप मुप वारी ।  
 निरपत भामिन मन में बर वेर बलिहारी ॥  
 जूवा पिनावें सुदरि बहु विधि भगलचार सुगावें ।  
 दूलह दुलहनि मामा निरपत जुवती हरप न मावे ॥७०॥  
 दूलह दशरथ लाजिले जू वैठ नृप भुवन मवारि ।  
 नवल नवल मिलि ता गरी जू भई अति भीर समारि ॥  
 डोर छुटावे भामनि हित सौं गावें रस भरि गारी ।  
 छोटे डोरि दुलहनी दूलह पुनि पुनि हरपे नारी ॥  
 भामिनि कहै हासि करि इहि त्रिधि लेहस डोर छुटाइ ।  
 सीय डारन चित चोरन रघुवर तुम पे छारिन जाइ ॥७१॥  
 छोडा हो रघुकुल के राय छोडो हो सी जन सुपदाय छोडा जी दूलह डोरनु ।  
 जो नही छूटे डोरनु अपनी सब मात बुलाय अपनु ।  
 लाला तात बुलाय छोडो कृवर बर डोरनु ॥७२॥  
 जो नही छुटे डोरनो अपनी सब गोत बुलाय ।  
 अपरु कुल देव मनाई छोडा कृवर बर डोरनु ॥७३॥  
 जो नही छूटे डोरना अपनी भुवा भेन बुलाय ।  
 दूलह हो लागो दूलहनि पाय छोडो रसिकब डारनु ॥७४॥  
 नारि सबे मिनि हरप मु जू गावत रस भरि गारि ।  
 उर आनद सनेह सौं जू वारि वारि पीवत वारि ॥

मिथुलापुर की नारि सवै मिलि गावत रस भरि गारो ।  
 प्रेम बचन सुनि त्रिमवन नायक ईस्वरता जु त्रिसारी ॥  
 बोले बल बल नवल भामिनी कोमल बचन उचारी ।  
 जो नही छूटै डोर लाडिले तो बोलो महतारी ॥७५॥  
 छोडो डोरमु, लाडिले जु कर कछु बल उपजाय ।  
 डोरन चित को चोरनों जू तुम पै छोडयो न जाय ॥  
 पहन होय सारग लाल जू ताहि तुम लेहु चढाई ।  
 के बोली जननी कौसल्या के बोली दशरथ राई ॥  
 इहि विधि हासि करे जुवती जन गावत गारि सुहाई ।  
 डोरो हसि केँ दुलहनि कर सौँ छोड्यो है रघुवर राई ॥७६॥  
 अरस परस छोडे डारनौ जू रघुवर जनक कुवारि ।  
 आनद उर न समाई जू हरपी जनक की नारि ॥  
 रघुवर बदन निहारै रानी भागि सुफल करि पायो ।  
 निकर नारि मिलिन बिल नेह सौँ काँकन डोर छुडायो ॥  
 राम लखन अरु भरथ सप्रुधन परने-व्यारों भाई ।  
 नृप दसरथ के कुवरन ऊपर जनहरीयो बलि जाई ॥७७॥  
 रघुबसी दूलह लाडिले जू दुलह प्यारी बलिहारि ।  
 हरपि हरपि लीय वारना हो मिथुलापुर की नारि ॥७८॥  
 रघुबसी दुलह लाडिले हो सोभा धारा धन जनहारि ॥  
 मजुल मूरति माधुरी हो धनि इन नैन निहारि ॥७९॥  
 रघुबसी दूलह लाडिले हो दूलह थोरा धनि परवार ।  
 धनि दशरथ धनि कौसल्या हो जाये तुम राजकुमार ॥८०॥  
 धनि रिपि धाँधनि जमकू जू हो आये तुम उनके हो भाय ॥८१॥  
 मिथुलापुर की नारि सवै मिलि सभरि बचन उचारै ।  
 अपनौ भाग सराहत भामनि रघुवर बदन निहारै ॥  
 नेह बिबस ह्वै उझकि क्षरोपनि प्रेम मगत भई नारी ।  
 जनहरीया दूलह रघुवर छवि पर बेरि बेरि बलहारी ॥८३॥  
 बोले है दसरथ माडहै जू थी मैथुलपुर राय ।  
 प्यारि पिलग नग मणि जरे जू दीने मधि बिझाय ॥  
 व्यारा कुवर दुलहनी प्यारों बैठे हैं छवि सौँ आई ।  
 रतन जटित सिर सेहरा सोहैं मातियन लूब सुहाई ॥

वे उक्त विधि जनक राय जू रचि बड रीति बनाई ।  
 रानी सग ले करि गठजोरो भावरि दीनी आई ॥८५॥  
 भूपति नोनो आवजो जू सोभा बरनी न जाय ।  
 कोटि एक दासी दाईजे जू दीये रघ अनेक सजाय ॥  
 अयुत अयुत सजि दीये तुरग बड गँवर अयुत सजाई ।  
 कोटि एक दाये दास जनक जू सेवा करन मुभाई ॥  
 रिप अरु जान सहन मिथुलेसुर अवधेसर पहराये ।  
 करी बहुत मनुहारि परसपर वेर वेर सिर नाये ॥८६॥  
 कँवरी गवनी सासरे जू नयन चलते हित वारि ।  
 बाल बैस की सपियन तैं जू मिलत हैं बाँह पसारि ॥  
 चेतकर्याँ के सग मिलि पेलन तात भुवन सुपकारी ।  
 बालवेलि मुधि आवत मन में सो नहि जात बिसारी ॥  
 कोटिक मुष ह वै जो सुसरारि में रहै सपत्ति लपेटी ।  
 तात भुवन की बाल वेलि कौ बिसरत नाहिन बेटी ॥८६॥  
 सीता सो मिलि नेह सी जू नैना नीर बहाय ।  
 जननी सरक सनेह की जू मो पै बरनि न जाय ॥  
 माता बचन मुनाय कुवरी को समझावत बहु भाई ।  
 समुरा सास की सेवा कुवरी सिषयो नेह सुभाई ॥  
 भयो उछाह जनकपुर अनिसै को अस बरनि मुनाई ।  
 इहि बिधि भूपति विपल मोद सौं आये अवधि चलाई ॥  
 हरप फिरत अवधिपुर वासी मन अनुमोद न भावै ।  
 नवल नारि मिलि मगल गावै मगल कनस बघावै ॥८७॥  
 निकरि नारि चढ़ि अटनि पर जू हरपे बारीवार ।  
 जल सुत कुवरन ऊपरै जू मानौं बरपे जलपार ॥  
 अटनि सरोपन चढ़ि भामिनी बरपत कुसम अपारा ।  
 विवुधप्रिया तजि मनहुँ व्योम को आई करन बिहारा ॥  
 बाधी बगर षोहटां भामनि मगलचार सु गावै ।  
 भूपन बसन साजि सज सुनरि भूप भवन कौ आये ॥८८॥  
 भीतर भवन सिधाईएशु च्यारो राजकुमार ।  
 कौगन्या करे आख्यो जू मोत्याँ भरि बचन पार ॥  
 बधुन सहित लपि माजा सवै ही हरपे वारो वारा ।  
 रानी हरप न गावै मन में बाइयो हरप अपारा ।

हरपि हरपि अतहपुर रानी दुलहनि बदन निहारे ।  
 हाटक हीरा मणिगण मोती बधू सुतन परि वारें ॥८६॥  
 रिपवर कौ अवधेस जू जी पूजे हैं विधि सब नाय ॥  
 रानी रिपवर राज कैं जू पुनि पुनि लागें पाय ॥  
 श्री कौसल्या रिपवर जू सौं कहति है वचन सुनाई ।  
 विद्यानिपुन कीये कुवर दोउ ल्याय दुलहनि व्याही ॥  
 पद बदे मुनिवर के रानी वर वेर भिर नाई ।  
 हीरा मोती कनक थाल भरि पूजेहैं रिपवर राई ॥८७॥  
 काकनडोर डुलावही जू श्री रग मंदिर जाय ।  
 च्यारौ कुवरिन रगराज जू बदे हैं सिर नाय ॥  
 छोडो डोर कुवर व्यारा ही श्री रगमंदिर जाय ।  
 मोतीयन चौक पुरावै रानी पुनि पुनि मगल गाय ॥  
 काकन डोरि छोडि रगमंदिर भीतर भवन सिधाये ।  
 हरप्यौ फिरत तहाँ जनहरीया बाजत अवधि बधाये ॥८९॥  
 बाजत अवधि बधावना जू भूपति दसरथ द्वारि ।  
 घर घर मगल बधावना जू मगल गावैं नारि ॥  
 मागध सूत भाट वदीजन बोलत करि कै बारी ।  
 दान मान दीय भूप सबन कौं दीनैं कसन भारी ॥  
 मगलवर व्याह रघुवर कौ सत जनन सुपदाई ।  
 मति अनुसार कथ्यौ जनहरीयो श्री गुर कौ सिरनाई ॥९२॥

॥ इति पौषे रामायणे महा मुक्ति मारगे सीताराम  
 विवाह सम्पूण ॥<sup>१</sup>

### (३) राग ललित

राजत अवधेस लाल कज बन्न तिलक भाल ।  
 अरुणाबुज अछि विसाल अदनुत छवि छाई ॥ टेक ॥  
 नासा नग बनि सुदेस सोमित सिरि कुटलकेम ।  
 जलज निकट निवर मधुप अवली मनु आई ॥१॥

नव धन तन दुनि विसाल मुक्ता उर लसत माल ।  
 सुत्री कटि तटि रसाल रूण झुण चलि जाई ॥२॥  
 देपत जब भूप नारि तन मन धन दत वारि ।  
 अनिसै निमु नेलि राम सुपन बरणा जाई ॥३॥<sup>१</sup>

### (४) राग सौहो

मानकुल दीपग छत्रीले रगीने रघुनन्दन ।  
 ध्यान धरि निम त्विस असो कटे भव दुप पदन ॥१॥  
 चरननप अगुरिन मिलियो दुहन की सोभा बनी ।  
 भानु प्रफुलित कवल परि लगेहैं दम रजनी घनी ॥२॥  
 पीन जानि मुचार अनुपम लसत अद्भुत घोवती ।  
 कटिमूत्र कटिपट पीत कटि किफनी मन को मोहती ॥३॥  
 वाडुनध जराय के पहाँचें रतन पौची मन्वी ।  
 अस्त दोय अंगुरिन अंगूठी यो मान की दुति दलमली ॥४॥  
 मणिहार मुक्ताहार सुदर स्याम अग परि राजई ।  
 मानु नवधन में सरस तारन की पाति सभ्राजई ॥५॥  
 कबु कंठर अरन अपर सुनासिका अपीयाँ बडी ।  
 मनमत्प मन मप वी करत माहैं कसी भ्रकुटी चन्पी ॥६॥  
 धवनन में कुडल लपि लनिठ छवि मैन की मुकची जीए ।  
 अलिकन की हलकनि ग्रीव बलनि सुपौ वारि नमरि की कीए ॥७॥  
 सिरि मुकट अग सुवाम राजत जनकी की सुन्दर लली ।  
 मानु हरीव बैय कटि वैठी कवन वी अद्भुत कन्पी ॥८॥  
 चलि सुपय तजि ने विपै भजि एस रामगुपाल को ।  
 मन कच ब्रम करि प्रीतिनिहि हरीया मन्वी प्रतपाव को ॥९॥<sup>२</sup>

### (३) चरणवास

य अग्रन्तस जी क शिष्य विनोती जी अपधा विनोद स्वामी के पौत्र शिष्य  
 थे । अब तक इनका कोई छत्र प्रकाश म नही आया था । 'पदमुक्तावली' में पहली  
 बार इनका एक पद अपने में आया है जिसमें प्राण समय की उपायन आरती का  
 बणन है—

१ यही, छंद सप्त्या ६३

२ पदमुक्तावली : छंद सप्त्या ६६ ।

### राग भैरव

जागीए श्री राम नृपति चुडामनी,  
 रिक् कीयो आगम निसि विहानी ॥टेक॥  
 सुत माग बन्दीजन ऐ करे आसिया ।  
 नीति अविचल रहौ राजध्यानी ॥टेक॥  
 केऊ सपी कर बनव क्षारी लाए सुगध,  
 कोऊ बासीद लीए सरखु पानी ।  
 केऊ सपी विवध्य के देत सोय लीए,  
 कोऊ अद्रख लीए खरी सयानी ॥१॥  
 जुग सपी छात्र लाये, कोऊ सपी चवर लीए,  
 कोउ मिलि जुगल क बसन आनी ।  
 केऊ सपी मधुर सुर राग पचम करे,  
 सपत सुखानि लीऐ सुलप बैनी ॥२॥  
 श्री जनक नदनी जी के श्रवननि धुनि परी,  
 जागि परि पिलग ते द्रग पुलानी ॥  
 मानु एह कवल मुदित भए रेनि के  
 मित्र की बात सुनि फुल पुलानी ॥३॥  
 अवधिवासी सवे दरस की तरस करे,  
 दुवारि ठाढे कहे गुन कहानी ।  
 जागीए श्री धीर रघुवीर करनमई,  
 वास दासी परे चरन आनी ॥४॥

### (४) बाल श्रली

इनका व्यावहारिक नाम बालकृष्ण नामक था—बालश्रली इनके साधन देह की सजा थी । ये अग्रदास जी की पाँचवीं पीढ़ी में आते हैं । 'ध्यान मजरी' की रचना स० १७२६ में हुई । अतः यही उनका उपस्थितिकाल माना जा सकता है । इनकी ८ रचनाओं का पता लगा है । उनमें 'नेह प्रकाश' तथा 'सिद्धान्त तत्व दापिका' विशेष महत्व की हैं । 'पद्मुक्तावली' में इनके दो पद संकलित हैं । एक में आराध्यपुंगव की प्रातःकालीन शोभा का वर्णन है और दूसरे में प्रिया प्रियतम की परस्पर आसक्ति का चित्रण है—

१ पद्मुक्तावली, छंद सख्या ६५ ।

२ वही, छंद सख्या ८६ ।

(१) प्रात समें रघुनन्दन की छवि दधि सयी अपने भरि नैन ।  
आलस भरे जो भाँति उनीद बोलत हैं कछु अटपटे बैन ॥टेक॥  
वामें अग श्री जनक नन्दना बसन भरगजे भरे छवि बैन ।  
नह भरे मुसकात परसपरि बालअली हीए अति मुप दैन ॥

(२) भौरे ही रँग भरे दोऊ जाण ।  
रग महल में श्री जनकनन्दनी रघुवर अति अनुरागे ॥ टेक॥

आलस भरे जु भाँति उनीद अरन नैन रस पागे ।  
बालअली प्रभु रम बगि कीहैं जैसे कनक गुहागे १

इन प्रसिद्ध रामभक्ता के अनिर्दिष्ट उक्त सग्रह में अथ साधका के भौ पद संकलित हैं । ये हैं—कवलानन्द (२ २५), वीठलदाम (३०, ५५), गोकुलदाम (५४), ब्रजपुरी (७४), विजेराम (७६), (७६), लघुवेसव (६८) और लाल गुलाम (६७, ६८) ।

नीचे इनका संक्षिप्त परिचय दिया जाता है—

## (१) कवलानन्द

भक्तमाल तथा अथ भक्त चरिता में इस नाम के किसी रामभक्त कवि का उल्लेख नहीं मिलता । साम्प्रदायिक परम्पराओं में स्वामी रामानन्द के शिष्य सुरमुरानन्द के एक शिष्य कवलानन्द का नाम आता है ।<sup>२</sup> ये कवलानन्द जी की गद्दी (जयपुर) के पूर्वाचार्यों में हैं । निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता कि पद-मुक्तावली में प्राप्त पद इहाँ का है या कवलानन्द नामधारी किसी अन्य सत का । ये रामभक्त थे यह निम्नांकित दोनों पदा के आधार पर निर्भ्रान्त रूप से माना जा सकता है—

( १ )

### राग आसावरी

नौमी के दिन नौबति बाजे मुत कौसल्या जायो री ।  
सात घड़ी तिन बीति गयो भव सखियन मगल गायौरी ॥टेक॥  
भवे बुलाय सोषता कीती अपै भडार लुटायो री ।  
पढोक सौचि निगम यौ भाप्यौ रामचन्द्र ग्रह आवे री ॥टेक॥

१ पदमुक्तावली छंद सप्त्या ६० ।

२ रामभक्ति में रसिक संप्रदाय पृ० ३३५ ।



कचन के बहौ कलस बधाये मोनिन चौक पुराये री ।  
 दसरथ मन आनन्द भयो कोइ रघुपत्नी ग्रह आये री ॥ २ ॥  
 घर घर की सब बधु बुलाई मगल गावति आई री ।  
 राइ आंगन विधि डारि दुलीचो आदर करि बैठाई री ॥ ३ ॥  
 कप्यौ सिंधु कागरा पडिया आगम अगम जनायी री ।  
 सोच पड्यो सप्रही लका कोई राज विग्रहै आयी री ॥ ४ ॥  
 दसरथ उठि भडार पघारे साढी सुरग भगाई री ।  
 जो जाके मन हूती कामना सो ताकी पहुराई री ॥ ५ ॥  
 पाट पटवरया साहूना त्रिय जाके मन भावै री ।  
 कवनानन्त कहाँ लौ बरनौ तीन लोक जस गावै री ॥ ६ ॥<sup>१</sup>

( २ )

### राग बिलावल

करो कलेउ प्रात ही मिलि च्यारौ भईया ॥ टेक ॥  
 दधि मेवा लाडू मोल सौं ले आई गईया ।  
 ये पीवौ प्रभु कल्याण के मधि लीनौ घईया ॥ १ ॥  
 बान धनियाँ कित धरी दे दे री मईया ।  
 तरौ सौं अगना पेलि हैं हम च्यारौ भईया ॥ टेक ॥  
 कालि दूर लाने गये सप्र सपा बुलईया ।  
 दोय बान थोए हुन सरङ्ग लटि पईया ॥ १ ॥  
 रुचिर बाग बैसक बनी चगे फल विछईया ।  
 नाना विधि के पछी बौनिहै खनोक सुहईया ॥ २ ॥  
 नीर निकट नाहिन गये दाउ की मो हो री ।  
 कवलानन भरथ बुलाय के जो हौं झूठ कहौ री ॥ ३ ॥

### (२) बीठलदास

जानि के रंगस (चमार) होते हुए भी इनकी गणना श्री सम्प्रदाय के विशिष्ट  
 रामभक्ता म की जाती है । ये बड़े ही विरक्त एव स्वाभिमानी महात्मा थे ।  
 सत्सग एव इनका सतसेवा व्रत था । उनके लिए धन की आवश्यकता पडती थी किन्तु

१ पदमुक्तावली, छब सख्या २ ।

२ वही, छब सख्या २५ ।

न की वृषा से उसमें कभी बाधा नहीं पड़े। सासारिक वैभव इहे कभी ट्ट नहीं कर सका। प्रसिद्ध है कि एक बार किसी घमडी सेठ को इन्होंने ार दिया था। पहले वह नियमित रूप से इनकी सहायता करता था किन्तु घटना के बाद होने वाले वार्षिक महोत्सव में उसने हाथ खींच लिया। कहा है कि उत्सव के निकट आने पर स्वयं भगवान ने एक वैश्य के रूप में आकर सो अर्थात्कियाँ उक्त कार्य के लिए समर्पित थीं। सेठ ने जब इस घटना की मुनी तो पानी पानी हो गया। उसने आकर क्षमायाचना की। नाभाग्यस अनुसार बीठलदास जी ने अपना शरीर-याग आराध्य की लीला विषयक पद ङ्ग किया था।<sup>1</sup> इसमें उनका कवि हाना स्वतः सिद्ध है। इस नाम के ती अय रामभक्त का अब तक पता नहीं चला है, अतः नीचे लिखे पद को की रचना मानने में कोई बाधा उपस्थित नहीं होती—

भाजन करी मीताराम ।

भावप्राही भावप्राही प्रीतिग्राही राम ॥ टेक ॥

दक्षिण गिसि आनन् करि सोहैं जनक मुता अभिराम ।

पवन सुत सनमुष विराजत रटत नित नौ नाम ॥१॥

चार विधि के मच्छ भोजन लेत रुचि मुचि स्याम ।

भेलि मिथ्री पहूप छीवरि मेर दाप विराम ॥२॥

भक्ति हत आरोगजे प्रभु सकल पूरत काम ।

दास बीठल दरस पावैं करन परमनिघाम ॥३॥<sup>२</sup>

### ३) गोकुलदास

इनके स्थितिकाल तथा जीवन के सम्बन्ध में कुछ भी ज्ञात नहीं है। राम- की परम्पराओं में भी इस नाम के किसी कवि का उल्लेख नहीं

आदि अतः निर्वाह भक्त पव रज द्रत धारो ।

रहतो जगत सो ऐंड बुच्छ जाने ससारी ॥

प्रभूता पति की पथति प्रगट कुल बीष प्रकासो ।

महत सभा में मान जगत आन रदासो ।

पव पड़त भई परलोक गति शुभ गोविन्दु जुग फल बिया ।

बीठलदास हरिभक्ति के बुद्धे हाथ लाडू लिया ।

—धीमक्तमाल, छप्पय स० १७७, प० ८६४

पद्मुक्तावली, छव सख्या ३०

मिनत्रा । प्रमुत्त हृत्तरेण म इनात्त एत एत्त मंपदोत्त है त्रिमवे रामतद प्रो न  
 म्यात्तु अचवा भोजन करने का बगन है—

॥ राग विहायहो ॥

रगुवर मुपनिर्वा करल विपारी ।

मपु मदा पकवांत मरम रग प्रेम मद्रिउ पुत्ताउ मद्रुतारी ॥ १ ॥

पूसा माहू उग्रवन देती पुरी मुगपुरी पूसा मुपारी ।

पेतर पातर एत प्रेमी मिमी मीरा मरम गवारी ॥

मूरत थाव करो ते लीवन भागे तीर अदि मबिकारी ।

भोन्दी चरयो मे आगे पीवो मरे मान जनती आय बारी ॥ २ ॥

अदि मगय मरहू एत मीउव रान जदिउ मदि ह्यार्द हाररा ।

भोजन पाप करो प्यारे अचवा मारीव तेन मैन बनिहारी ॥ ३ ॥

धीमी एत मीपाउ कर मते मिमे कपूरत मीम मुपारी ।

नाकरनाग भाग एत रासा पाई इदि रहा काव पारी ॥ ४ ॥

(४) मगपुरी

देह काँ आनि जुरा जकरी लकरी पकरी सोहू राम न जायो ।  
 बानपनी पोपो प्यान ही प्याल में जोउन जार निया रति मायो ॥  
 स्याही गई मिर आये हैं सेठ अचेत भयो गुर ग्यान न जायो ।  
 बूडत है भवसागर भाज कहै 'विजैराम' धनी न पिछायो ॥४॥<sup>१</sup>

### (६) लघुकेसव

केशव नामधारी पाँच भक्ता का भक्तमालकार ने उल्लेख किया है—केशव-भट्ट केशव, बेसो, केशव जी लटरा और केशव जी दहौनी । इनमें से प्रथम तथा अन्तिम कृष्ण भक्त थे द्वितीय, तृतीय तथा चतुर्थ रामभक्त । दूसरे केशव रामचन्द्रिका के रचयिता थे, तीसरे केशव (सभवतः) रामभक्ति शास्त्रा के स्थानधारी सत थे, और चौथे केशव रामानन्द जी के शिष्य सुरगुरानन्द की परंपरा के थे । हस्तलेख में 'लघु श' प्रसिद्ध (उठे) केशवदास से प्रस्तुत पद के रचयिता की विभिन्नता दिखाने के लिए प्रयुक्त हुआ है । मेरा अनुमान है कि हस्तलेख में उद्धृत पद इनमें से तीसरे या चौथे का हो सकता है । इसमें निरूपित तथ्य रचयिता की श्रृंगारी रामभक्ति के द्योतक हैं—

धवना न मुन्यौ रमना न गुन्यौ, नही ध्यान धरो न नच्यौ हरि आगे ।  
 अरचा न करी चरचा न करी, सुमरी नही राम हिरदै अनुरागे ॥  
 तन मन अरपि न दास भया हरि भक्ति के हेति ज्यौ नही जागे ।  
 लघु केसो कहै जम दोस कहा, नवधा मधि एक गही न अमागे ॥<sup>२</sup>

### (७) लाल गुलाम

रामभक्तों के चरितसंग्रह तथा साम्प्रदायिक परम्पराओं में यह नाम अपरिचित हैं । हस्तलेख में सकलित पद से मान इतना पता चलता है कि उसका रचयिता रामोपासना की माधुर्य धारा से सम्बद्ध है—

राग पंचम

आय राजरपि सग्यि सपी कुवर मनभावतो,

आवसे देपि हिवरो सिरानो ।

मेरे मनि आनि सपी बात असी ठनी,

य हा वर सीया क विधि ही वानी ॥ टेक ॥

१ पद मुक्तावली, छंद सख्या ७६

२ वही, छंद सख्या ६८

द्विषधि भूयन कीये मुकति माला हीये,  
 निलक की कान्ति बरनी न जाई ।  
 धाम कर धनक कटि माथ सोमो दीये,  
 दाहिने कर सर सोमा सुहाई ॥ १ ॥  
 ताडिका मारि सुबाहु बल जोति वै,  
 अमुर संघारि जग पूर कीन्हौ ।  
 धरन की रेनिका अहत्या उघारि,  
 क्षीवर बूल त्यारि पुर गवन कीन्हौ ॥ २ ॥  
 राय समझाय अब ही कहौ जाय कै,  
 धनक पन छाडि सीया बरही जाए ।  
 आगिले जनमि एह पुनि सीवर कीयो,  
 ताहि परताप अैसे कुंवर पाए ॥ ३ ॥  
 सबन के मन ही की जानि सारगधर,  
 तनक ही तानि धनु तोरि डारौ ।  
 बडे बडे भूप सावत अति महावली,  
 सिंध ललकारि भग मान मारौ ॥ ४ ॥  
 निम कुल जुवति नर नारि आनद में,  
 सुनत एह बात मगल उचारे ।  
 लाल गुलाम अब सत की सरन गहि,  
 धरन की रति लहै प्राण वारे ॥ ५ ॥

देवि री देवि कुंवर सुन्दर दोऊ,  
 रूप के जिंग में आनि ठाडे ।  
 कोति वद्रप की हीन दुति करत ही,  
 अतिहि छवि रूप गुनवत गाडे ॥ टेक ॥  
 पीत पट दामनी दमक लज्या करत,  
 जरकसी पाष सिरि अति सुहाई ।  
 अटनि चडि भामनी नैन मधुपान करि,  
 सौवरे - गवर हिरै बसाई ॥ १ ॥  
 एह कुवर लाडिलो होय जो कुवरि को,  
 सब करै गवरि स्यौ विनय भारी ।

जब ही मनि आनिहै सुफल ब्रति जानिहै,  
 होय वर एह आनदकारी ॥ २ ॥  
 नम्र को नारि मन माहि कल्पन करै,  
 एह कर सम ही धनक भारी ।  
 कुवर महाराज सब अस हरि नृपन को  
 मुनि गहै रहै अति बलाकारी ॥ ३ ॥  
 जनक नृप देपि रघुवीर कू मन ही में,  
 कहा बपरीत मन में ज कीन्हों ।  
 मनही कौं व्याहिहों मुजस जुग पायहों,  
 अवनिपति यौ कहैं पलट कीन्हों ॥ ४ ॥  
 राय सब नृप्यन मु बोनि एह बात कह  
 धनक कोऊ तोरो एह आठ दीन्हौ ।  
 मनही लग जाय कौं अवनि सिर नायवै,  
 अजुमी के वारि ज्यों गवन कीन्हौ ॥ ५ ॥  
 निमकुलवस की अवनि के नृपन की,  
 धनक सब लाज से प्रस्व धारो ।  
 साविरो कुवर सिर नाय रिपराज की,  
 गहै वरन चापि धनु तोरि डारौ ॥ ६ ॥  
 पुसप बरपन लगे देव दुदभी बजे,  
 मगला सब ही मिलि गीत गावे ।  
 लाल गुलाम अब सत की सरन गहि,  
 दास घरि अवधिपुर मुजम गावे ॥ ७ ॥<sup>१</sup>

## स्वामी अग्रदास और उनकी अप्रकाशित पदावली

रसिक रामभक्तों के आद्याचार्य अग्रदास' का आविर्भाव स्वामी रामानंद की चौथी पीढ़ी में हुआ था। ये राजस्थान में वैष्णवों के प्रथम पीठ, गलता के संस्थापक श्रीवृष्णदास पयहारी के शिष्य थे। इनके आरंभिक जीवन के विषय में कोई सूचना उपलब्ध नहीं है। सांप्रदायिक मायता के अनुसार इनका जन्म जयपुर राज्य के किसी गाँव में १६वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में हुआ था। पयहारी जी के सपके में ये बाल्यकाल में ही आ गए थे। बड़े गुरुभाई कील्हदास के साथ गलता में बहुत दिनों तक निवास करके गुरु के परलोकवास के अनंतर वे अपने प्रिय शिष्य नाभादास के साथ रैवासा चले गए और वहीं अपनी गद्दी स्थापित की।<sup>२</sup>

१ रसबोध बिपुल आनदघन अग्रस्वामि दानो विसद ।  
अक्षर पद अनुप्रास मधुरता बाल्मीकि सम ।  
आसय गूढ़ उपाय प्राप्ति रसिकन की सगम ।  
रखासे जानकीवल्लभी रहसि उपासी ।  
ललितरसाध्य रगमहल क्लकुज खवासी ।  
आचारज रसरास पथ रसिम्बज रसिकन मुखद ।  
रसबोध बिपुल आनदघन अग्रस्वामि दानो विसद ॥

—रसिकप्रकाश भक्तमाल, पृ० १५ ।

२ कोई देसकाल जानि कील जू की आता मानि  
सिष्यन समेत श्री रखासे स्वामी आए हैं ।  
तहा रसबोध जल भूमि द्रुम सता देखि,  
मदिर बनाय तली लाल पथराए हैं ।  
बिनप बिदेक सुम सोल दया नह गेह,  
नाभा जी को देखि सत सेवा में लगाए हैं ।

नाभादास ने गुरुदेवा करते हुए अपना सारा जीवन मही व्यतीत किया। इसी स्थान पर आचार्यचरणों से प्रेरणा प्राप्त कर उन्होंने अपने लोकप्रसिद्ध ग्रंथ 'भक्त-माल' की रचना की थी।

नाभादास ने अन्य सत्ता की भाँति अपने गुरु अग्रदास के भी लौकिक जीवन पर कोई प्रकाश नहीं डाला है। 'भक्तमाल' से इतना ही विदित होता है कि वे एक उच्चकोटि के आचारनिष्ठ सत थे और अर्हनिश इष्टदव सीताराम की आराधना में लीन रहते थे। वाटिका से उन्हें बड़ा प्रेम था। अपने रैवासा स्थित आश्रम से सलग्न भूमि में उन्होंने 'प्रसिद्ध बाग' नाम की एक फुलवारी लगा रखी थी, जिसका सारा काय व अपने ही हाथों से करते थे। वाटिका में काम करते समय भी उनका नामाप जखड रूप से चलता रहता था। आचार्य श्रीवृष्णदास पयहारी की कृपा से उन्हें अद्विरल रामभक्ति का बरतान मिला था। इस प्रकार अपने जीवन का एक भी क्षण अग्रदास जी ने आराध्य युगल के ध्यान तथा उपासना बिना नष्ट नहीं होने दिया।<sup>1</sup>

प्रियादास ने 'भक्तमाल' की टीका में अग्रदास के जीवन से सबद्ध कुछ नए तथ्य प्रस्तुत किए हैं। उन्होंने आमेरनरेश मानसिंह के स्वामी जी के दशनार्थ रैवासा जाने की चर्चा करते हुए लिखा है कि जिस समय महाराज उस आश्रम पर पहुंच स्वामी जी वाटिका में थे। यह समाचार पाकर मानसिंह अपने सेवकों तथा साथियों को बाहर ठहरने की आज्ञा देकर स्वयं बाग के भीतर चले गए। इसकी थोड़ी ही देर बाद स्वामी जी वाटिका में पड़े हुए सूख पत्ता को फेंकने के लिये बाहर निकल। द्वार पर अपरिचित लोगो की भीड़ देखकर वे वही एक आम के पत्र के नीचे बैठ गए। उधर वाटिका में बहुत देर तक अग्रदास जी के लौटने की प्रतीक्षा करने के बाद मानसिंह भी बाहर चले आए। द्वार पर आचार्यचरणों का साक्षात्कार कर वे कृतकृत्य हो गए।<sup>2</sup> रीवानरेश रघुराजसिंह ने अग्रदास और मानसिंह में गुरुशिष्य का संबंध बताया है और मानसिंह की गणना अग्रदास के अत्यंत प्रिय शिष्यों में की है।<sup>3</sup> संभवत यह सूचना उन्हें जयपुर दरबार से

आपु सो कियो उपाय काल मृषा न बिताय,

अष्टयाम सेवा की रहस्य मन लाए हैं ॥ —यही, पृ० १६।

१ भक्तमाल (टी० रूपरत्ना), पृ० ३२८।

२ श्री भक्तमाल सटीक (रूपकला), पृ० ३२०।

३ मानसिंह जयपुर को राजा। सो अपनी ल सकल समाजा।

अग्रदास गुरु आज्ञाकारी। रहै समीप घरनरज धारी ॥



अपने निजी श्रोत्रों द्वारा प्राप्त हुई होगी। इसके अतिरिक्त अग्रदास के सांसारिक जीवन के सबंध में कोई वृत्त उपलब्ध नहीं है।

सांप्रदायिक साहित्य में इनके द्वारा प्रवर्तित रसिकसाधना का विशद विवरण मिलता है।<sup>१</sup> 'नामादास ने अपनी श्रृंगारी रामभक्ति को इही का प्रसाद माना है' और सखीभावना में इनकी लोकोत्तर तमयता की मुक्तकठ से प्रशंसा की है।<sup>२</sup> इसी भावसिद्धि के कारण परवर्ती रसिक रामभक्तिसाहित्य में इहे चंद्रमाला सखी का अवतार होने की प्रतिष्ठा प्रदान की गई है। रसिक प्रकाश भक्तमाल के रचयिता युगलप्रिया जी ने 'मानस' के पुष्पवाटिकाप्रसंग में निर्दिष्ट सीता जी की पथप्रदर्शिका सखी से इनका तादात्म्य स्थापित किया है।<sup>३</sup> अग्रदास ने स्वयं अपनी कृतियों में 'अग्र अली' तथा 'अग्रसहचरी' छाप देकर

एक समय दस सहस्र सवारा । मानसिंह नप ल पगु धारा ।

अग्रदास बरसान के हेतू । गुह बरसान किये मोदनिकेतू ॥

दस कबली फल गुह तेहि दोही । सादर पदबदन करि लीहो ॥

नामा के पुनि अग्र के यहि विधि चरित अपार ।

मान महीपति के तथा, को कहि पाव पार ॥

—रामरसिकावली (रघुराजसिंह), पृ० ५७५ ८० ।

महाराज रघुराजसिंह ने स्वामी अग्रदास को गलता की गद्दी का आचाय बताया है। किंतु साम्प्रदायिक परंपरा के अनुसार गलतागद्दी पर धोहृष्णदासजी पहारी के बाद कौहृदास जी बंठे थे। ये अग्रदास के बड़े गुहभाई थे। अग्रदास की गद्दी जयपुर के समीप ही रवासा में स्थापित हुई थी।

१ आचारज रसरासपथ, रसिकवज रसिकन सुखद ।

रसघोष विपुल आनदधन, अग्रस्वामि धानी विसद ॥

—रसिकप्रकाश भक्तमाल, पृ० १५ ।

२ धो अग्रदेव कदना करी, सिपपद नेह बढ़ाया ।

नामा' मन आनद भो, महल टहल नित पाय ॥

—अष्टकालचरित (नामादास, पंथ ४२) ।

३ धो हृष्णदास गुहकृपा ते नित नव नेह नवीन ।

अग्र मुमति सिपसहचरी जुगल रूप रस लीन ॥

वही ।

४ अग्रस्वामि धो अग्रसहचरी जनकलनो की ।

पुष्पवाटिका मिलन हेतु प्रिय भांति भली की ॥

प्रकारांतर से इस तथ्य की पुष्टि की है कि वे सीताराम की माधुर्यलीलाओं के उपासक थे और व्यावहारिक रूप में राम के प्रति दास्यनिष्ठा रखते हुए भी उनकी अतरंग साधना शृंगारी भाव की थी। इनकी सर्वाधिक प्रसिद्ध रचना 'ध्यानमजरी' शताब्दियों से रसिकसाधकों की गीता मानी जाती है।

अग्रदास जैसे उच्चकोटि के साधक थे वैसे ही अगाधारण प्रतिभासपन्न सांप्रदायिक सगठनकर्ता भी। उत्तरी भारत में रामोपासकों की अधिकांश गहियाँ उन्हीं के शिष्य-प्रशिष्यों द्वारा स्थापित की गई हैं। अयोध्या, चित्रकूट और मिथिला के अनेक प्रमुख पीठ इन्हीं की परंपरा से संबद्ध हैं। इनके सतपरिवार के विस्तार का अनुमान इसी में लगाया जा सकता है कि वैष्णवों के ५२ द्वारों में ११ द्वारे अकेले इन्हीं के हैं। इनकी शाखा नाभादास, बाल अली, देवमुरारि, पूर्ण बैराठी, दिवाकर, हनुमान हठीले, भगवन्नारायण, प्रयागदास जगी, बिदुका-चार्य रामप्रसाद, रसिकाचार्य रामचरणदास, रसिक अली तथा रघुनाथदास जैसे सपत्नी एक लोकसंग्रही महात्माओं से विभूषित है।<sup>१</sup>

अग्रदास की महत्ता का सबसे बड़ा कारण है रामोपासना में शृंगारिता को प्रश्रय देते हुए भी आदि से अंत तक सदाचारनिष्ठा के सम्यक निर्वाह की व्यवस्था करना। त्रियाप्रधान बहिरंग पूजा की अपेक्षा ध्यानप्रधान अतरंग अथवा मानसी सेवा को अधिक महत्त्व देकर उन्होंने उसे कालांतर में दूषित प्रवृत्तियाँ का शिकार होने से बचा लिया। शृंगारी रामभक्ति के लोकप्रचार का निषेध तथा विशिष्ट भावसपन्न सात्विक साधकों को ही उसका अधिकारी घोषित करते समय उनके मन में कदाचित् यही भावना काम कर रही थी—

रस शृंगार अरूप है तुलवे को कोउ नाहि ।  
तुल्य को कोउ नाहि सोई अधिकारी जग में ।  
कचन कामिनि देखि हलाहल लागत तन में ॥  
जावत जग के भोग राग सम त्यागेउ द्वेष ।  
पिय प्यारी रससिंधु मगन नित रहत अनपेस ॥

छद्रकला प्रिय नाम स्याम सिय बस करि राखी ।

प्रगटि स्वामिपद लही ध्यान रस मन मन चाली ॥

रसिकप्रकाश भक्तमाल, पृ० १५ ।

१ विशेष विवरण के लिये देखिए 'रामभक्ति में रसिकसंप्रदाय' के अंतर्गत 'रामभक्ति में रसिकसाधना का विकास तथा 'परंपरा और तिलक' शोधक अध्याय ।

नही 'अग्र अम सत के सरि लायक जग माहि ।

रस सिगार अनूप है तुलने को कोउ नाहि ॥

अब तक खोज म इनक द्वारा विरचित केवल चार ग्रथ उपलब्ध हो सक हैं—ध्यानमजरी अथवा रामध्यानमजरी, कुडलिया अथवा हितोपदेश उपपाण-बावनी, रामाष्टयाम और रामज्योनार । इसक अतिरिक्त सांप्रदायिक ग्रथो म अप्रदास की दो अय कृतियो का भी उल्लेख मिलता है । ये हैं—अग्रसागर अथवा शृगार सागर तथा पदावली । इनम से प्रथम तो अब क्वल नामशेष रह गई है । बहुत खोज करने पर भी उसकी किसी प्रति का पता नही लग सका । किंतु दूसरी रचना का एक हस्तलेख इन पत्तिया क लेखक को प्राप्त हुआ है ।

तुलसी के पूर्ववर्ती रामभक्तिसाहित्य मे अप्रदास की इम पदावली का विशेष महत्त्व है । इसमे कुल ५१ पद सकलित हैं जिनमे एक (पं स० १०) नाभादास का है ।' इसक अनिरिक्त लेखक के निजी संग्रह म अप्रदासविरचित सात पद अन्य स्रोता से संगृहीत हैं । उन्हें लेकर अप्रदास के पदा की सम्पूर्ण सख्या ५७ हो जाती है । ये सभी अग्र' छाप स युक्त हैं । यह दूसरी बात है कि अपनी भावनानुसार उन्होंने किसी में दास्यनिष्ठापरक 'अग्रस्वामि अथवा अप्र-दास छाप रखी है और किसी म माधुपनिष्ठा-यजक अग्र अली 'अग्रसहचरी । यह उल्लेखनीय है कि अप्रदास' छाप 'अग्रअली की भांति दाम्य तथा शृगारी दोना भावा की रचनाओ म पाई जाती है । इसम अप्रदास और अग्र अली की अभिन्नता स्वत सिद्ध हो जाती है ।

शृगारी रामोपासका की परम्परागत आस्था के अनुकूल इन पदो म क्वल आराध्य युगल की वैशोर लीलाओ का ही वणन हुआ है । कवि की वृत्ति दम्पति की माधुर्यत्रोटा तथा शृगारी चेटात्रा क अवन म ही विशप रमी है । य प्रसंग हैं—धनुषभग क पूर्व सीता की उद्विग्नता, सीता का अलौकिक रूपमाधुर्य, सीता सीभान्य, मिथिला म प्रियाप्रियतम की हिंडोललीला, अयोध्या मे होलीलीला, प्रमोवनविहार, सरयू म दम्पति का जलविहार, राम का एक पत्नीवन एव प्रियापराधीनता, सुरतांत वणन, चंद्रकला, विमलाङ्गि सक्षियो द्वारा युगलविहार-दशन, सरसग एव रामभजन महिमा, अनयशरणागति का महत्त्व आदि । रचयिता

१ 'पदावली' में सकलित नाभादास के इस पद से यह विदित होता है कि अप्रदास की परम्परा के किसी सत ने उसकी वर्तमान रूप रचयिता के दिवगत होने के बाद दिया । सम्भवत आचार्यनिष्ठा से ही उसने उनके पट्टसिध्य नाभादास की रचना को भी उसमे स्थान दे दिया ।

ने दो-तीन को छोड़ कर शेष सभी पदों के साथ रागों का स्पष्ट निर्देश कर दिया है। पदावली में उल्लिखित इन रागों की संख्या १३ है मारू, काहरा, टोडी, केदारा, जैतिश्री, ललित, देवगंधार, बिलावल, धनाश्री, कल्याण, सारंग, मलार, और वसंत। इनके अनिर्दिष्ट 'सगीतरागकल्पद्रुम' में सगृहीत अग्रदास के पदा में क्याल<sup>१</sup>, विभास, विहाग<sup>२</sup>, सिंधु तथा होली — पांच अर्ध रागों का भी प्रयोग हुआ है। ये रचनाएँ पदावली में नहीं मिलती। इससे यह विदित होता है कि अग्रदास के पदों का बहुत पहले से संगीतज्ञों के बीच व्यापक प्रचार था। वृष्णा-नंद रामसागर ने संभवतः इसी लोकप्रियता के आवृष्ट होकर उन्हें 'सगीत-कल्पद्रुम' में स्थान दिया था। हो सकता है ये पञ्च संगीतज्ञों के माध्यम से ही संकलित किए गए हों।

### अथ श्री अग्रस्वामिकृत पदावली प्रारम्भ

राग मारू

अरी हो रामा रग रबी ।

तात हमारे पन कियो तारन धनुष कठोर ।  
कोमल करतल सावरो सखी मूरति मधुर किसोर ॥  
राज सभा ऐसी भई ज्यो उडगन मे चद्र ।  
बिधिना बिधि सो निर्मियो अली माहन मनको फद ॥  
लोक वेद की लाज सखी री जद्यपि दुस्तर आहि ।  
रूपनिधान देखि रघुनदन धीरज धीरज नाहि ॥  
ऐसी मो जिय ऊपजी चाप चढावो कोइ ॥  
'अग्रस्वामि के हाथ बिकानी होनी हाइ सा होइ ॥ १ ॥

मखी मोहि राम भावै ।

नरपतिनिवर निरस सब लागे कौऊ दिष्टि न आवै ॥  
उगन उदय होत ज्या आली चकोरी चैन न पावै ।  
एकै है अमृत को श्रावक चदा तपनि बुझावै ॥

१ सगीतरामकल्पद्रुम, प्रथम भाग, पृ० ६४ ।

२ वही, पृ० २३८ ।

३ वही, पृ० ५३१ ।

४ वही, द्वितीय भाग, १४४ ।

५ वही, पृ० २३६ ।

राजा बनराजी से लागत पीरूप नहिं दरसावै ।  
रघुनदन चन्दन द्रुम मानो अन्तर जरनि जुडावै ॥  
भावे नही पिताप्रन सजनी सारगधानि सोहावै ।  
'अग्रस्वामि मोहनी मत्र लिये चितवनचितहि चोरावै ॥ २ ॥

राग काहरा

सात प्रन काहे को कियो ।

कठिन पिनाक राम कर कोमल धीर न धरत हियो ॥  
मधुर मुरति आनदकद सम नाहिन और बियो ।  
बक्र चितवनी सांवरे सखी चित त्रित चोरि लियो ॥  
रघुपति तजि जे रति करै धृग धृग जिवनहि जियो ।  
'अग्रस्वामि रस बस भई मैं मन मोह लियो ॥ ३ ॥

राग टोडी

देखु री नीके रघुनन्दन ।

सीता कहति सखी अपनी सो रसिकराय सिरमौर स्याम तन ॥  
चितवत दृष्टि चलत नहिं इत उत रूपरासि मो मो मन फलन ।  
अग्रस्वामि सो मोह बढपो अति ज्यो चकोर चदहि अभिनदन ॥ ४ ॥  
दहरी धसत जब जे हरी देखि मन गहि गयो उठे उर लाई ।  
अति आदर सौ भरि अकवारी प्राननाथ पलका पधराई ॥  
आगत स्वागत वारि वारि तन बीरी सुहाय बनाइ खवाई ।  
बार बार आलिंगन चुबन मनहुँ रब निधि पारस पाई ॥  
बचनागूढ सा सीचि विविध भाँति जनककुधरि रघुनाथ लडाई ।  
जालरघ्र के निरख 'अग्र अति कामकेलि सुख बरयो न जाई ॥ ५ ॥

राग केनारा

साल भयो रोमांच प्रिय को आगम जायो ।  
अनग रौर गए दौरि अजिर म अति आतुर हूँ अग राम पहिचायो ॥  
मषागम ज्या नृत्य कपाली नूपुरघुनि मन मायो ।  
सुख समाज सो मिली 'अग्र प्रभु तन मन एकता सायो ॥ ६ ॥

सुम सज पौरुष राम सीतारथन ।

राग रग हचिर सौरभ सौज बोलिका चित्र चँटा विविध सुन्दर भवन ॥  
रूपलावय गुन कोकबिद्या कुसुम बचन रचना बिदुप पिया पारस गवन ।  
आनकीजी राजावनयनकी मैनधवि 'अग्रसहचरी सुगम और जाने कवन ॥७॥

राग जयतिथी

सुरतान प्रिया पति दोज अतिसय करि निद्रा अधीना ।  
जस्न कदम चचुकी मियाडर नाम भवर मयो यक सीना ॥  
बासलुघ को सञ्च श्रवन सुनि सभ्रम राम बिलोकत बाम ।  
रही पुष्प अवसम हून्य मो साखि कसदि मारि गयो काम ॥  
प्रेमबिक्कन परतोति न मानत वैदेही हिन पावत रो ॥  
'अग्रस्वामि' आधीन तिया के मिथ्या दुख आयो तन सेद ॥ ८ ॥

राग ललित

रजनी अल्प राम उठि बैठे सोय गई सीता आयो भोर ।  
बार बार त्रिभुवन बिलोकत मानो पीवत सुधा चकोर ॥  
हरे हरे च्चुवन चमवन उर कर सा चिबुक चारु टकटोर ।  
जागि परी जानकी तंहि छन बालसपये नयन की कार ॥  
बहुरि अक आरापि पिया को गोर स्वाम सोभित एक शोर ।  
'अग्र अली ऐसी छवि छाँडे धिग जाको आवै उर ओर ॥ ९ ॥  
रघु निरख न मुख कुवरि की

नकचेसरि अटकी लट श्रीकर आप सवारी ।

मुन्दर सुहागनिधि जस पूरि रह्यो विस्वमध्य

स्वबम किये रामचद्र नहि त्रिभुवन ऐसी नारी ॥

गोर स्वाम मनभिराम धारि पेरि काटि काम

जीवनफल दखि दखि 'नाभो' बलिहारी ॥१०॥'

राजकुवरि पूजति मजारी ।

कहा न कीजै अपने काज गूढ भाव एक वात बिचारी ॥

निसा घटत सुख हानि होत है बाल बैर कोनो तमचारी ।

याही शेष बिलारी पानी पय प्यावत राघव कै प्यारी ॥

जो चुप किये रहे वह कुक्कुट तो कत भोर होय हिय हारी ।

निद्रा भग समर रस समित 'अग्र' अद्रूपित जनकदुलारी ॥११॥

राग देवगधार

रजनी जागे भामिनी आवत सग मधुर उचरत जय गान ।

डगमगात पग घरत घरनि पर राम अघररस कीनो पान ॥

आलस परे अँडात जानकी मुत्ति भगन राखो पिय मान ।

अस अग ऊँघाहि देत सब सजसु अपि लिये रतिदान ॥

१ पदावली में सकलित यह पद अप्रदास का न होकर उनके शिष्य 'नाभादास' का है, यह 'नाभो' छाप से ही स्पष्ट है ।

मुवस क्रिये सुदर वर रघुपति त्रिभुवन ज्वती नहिन समान ।  
सहचरि सबै बिलोकि बिबस भइ 'अग्र अली' बलि वारति प्रान ॥१२॥

राग विलावल

जीति आई कामकली रागरग राती ।  
जागी निसि चारि याम वार वार जभाती ॥  
पलटे पग धरनि धरत अघर सुधा माती ।  
मडल भुज जोरि मोरि अग अग अंगराती ॥  
दूटेउ उरहार चिकुर कचुकी उलटाती ।  
अघरनि छवि कल कपोल बनी पीक पाती ॥  
नख सिख हरपात गात बानी तुतराती ।  
सीताछवि निरखि सखी 'अग्र अली' जुडानी ॥१३॥  
कीर निसा की कहति केलि ।

गुरजन सुनत सकुचित सीता भूपन चापि छून दई मेलि ॥  
हारधा व्याज बीज कह्यो भुयो ती बदि जानो ज्यो स्वाद ।  
सुक सभ्रम मे परधो विभापनि भूलि गयो पूरव अनुवाट ॥  
नागरि उक्ति यह उपजी सखी रीझि रही बदन निहारि ।  
'अग्र अली' कहे अचरज नाही कैट्टेही राजा कुमारि ॥१४॥

राग विलावल

एक नारि व्रत न्याय धरयो ।

अखिल भुवन अचुत नहि हरि को निरले यह रघुनाथ करयो ॥  
बनिता रतन गिरोमनि सीता सील मुजस सबही प्रचरयो ।  
ता तन भगन भये तन मयना पैसि राम नहि निवरयो ॥  
कहा भयो जो कोटिक पत्नी सुख स्वारय एकौ न सरयो ।  
रूप उतर गिनय सावय गुन 'अग्रस्वामि' मन रह्यो भरयो ॥१५॥  
जुवती गुन जानकी पतिव्रत भाग मुहाग सुभगता सागर ।  
मत्य सौत्र जित क्रोध दया जुन कीरनि बिसर लाज मृदु आगर ॥  
एक नारी व्रत याइ अमित गुन रिझय राम नयना वर नागर ।  
त्रिया तिलक म्दूपन भूपन 'अग्र स्वामिनी' जगत उजागर ॥१६॥

राग धनाश्री

रामरवनि गजगवनि अवनिजा चपकरनि मीरा मृग नयनी ।  
यत्न ह्दु अरविदु कृद त्रि अघर बिब बिद्रुम पिबवैनी ॥

सीता के मौदज सोल धृत उपमा सकल मकुचि भई गेनी ।  
बनिता वर त्रैलोक उजागर 'अग्रस्वामि' आनंद देनी ॥१७॥

### राग टोडी

राम सो राम सीता सो सीता ।

मिव बिरचि सारदा सेस सुक पटतर खोजत कल्प ब्रितीया ॥  
सुदर मील मुहाग जमित गुन अखिल लोक नर नारी जीता ।  
श्री 'अग्रस्वामि' स्वामिनी उजागर नेति नेति श्रुति गावत गीता ॥१८॥

### राग काहुरा

सिया अस्नान उबटि नाते आज कीही कतिक उत्तम नारी ।  
तेई मील सुदर सोभागिन बहुत गुनन के भारी ॥  
जानकी अग तीरथ मे हाई बाग भई जग उजियारी ।  
बनिता श्री रघुबीरबल्लभा 'अग्र' स्वामिनी नहि कोउ सारी ॥१९॥  
जगत जपत रघुनाथ नाम सब राम करत सीता को मुमिरन ।  
रामचंद्र को ध्यान धरत मुनि बसति जानकी रामचंद्र मन ॥  
सिव बिरचि के धनुषधरन धन रघुबर के मैथिली महाधन ।  
परमहंस कुल राम भजन भर 'अग्रस्वामि' एक पत्नी को पन ॥२०॥  
साचो मोहाग जानकी तेरो रघुपति रसबस कीन्हा री ।  
तोसी नारी नहि त्रिभुवन म पिया प्रेमरस भीनो री ॥  
'अग्रस्वामि' मन बचन कर्म तोको रोच आलिगन दीहो री ॥२१॥

मेरी स्वामिनी सुहाग भाग अद्वितीय पटरानी ।

रघुपति का जोर नारि सपने नही साहानी ॥

जाकी लावय गुन रूप मील सबही लीक तानी ।

'अग्रस्वामि' भीताराम बिनित जग कहानी ॥२२॥

मेरी रानी को अत्रिचल मुहाग ।

जाके परमि और नहि परसी रघुपति दिन दिन बाढ्यो राग ।

सीता सी सिरजी न सुपतनी केलि अकटक लग्यो न दाग ।

'अग्रस्वामि' स्वामिनी अहानिस मुख बिनसत दोउ भूरि भाग ॥२३॥

सर्वोपरि मेरी स्वामिनी राघो की प्यारी ।

जाको परमि और नहि परसी ब्रतलीना एक नारी ॥

स्ववम त्रिय दसरथ नृपनदन नाहिन काऊ सारी ।

वैदेहो के बन्धन बन्धन पर श्री 'अग्र' बली बलिहारी ॥२४॥



राग कल्याण

वदनारविंद पर बलि बलि कियो प्यारी ।

इदु कुं बिद्रुम जपा बिब मिलि मीन मृग लीन सजन छवि हारी ॥  
नासिका कीर तिल गुप्प दाडिम दसन हसनि बिगसनि कमल कहा करे सारी ।  
भाल दीपति मुकुर भौंह राजी भवर भृकुटी सरचाप मनमथ सत हारी ॥  
चिबुक त्रिभुवन चाह सुभग सुकपोल तर आनद कद विधिना संधारी ।  
राम सुखदैन मधुबैन स्वामिनी 'अग्र' जानकी नारी वर नृप दुलारी ॥२५॥

राग सारंग

बलिहारी नीतावदन की ।

उज्जल अरुन परस्पर दीपति अधर बिबफल रदन की ॥  
बेसति मुकुता चपल होत अति सोभा वीरी अन्न की ॥  
लोचन चारु चितै मधु वरसत राम काम दुख वदन की ॥  
सचीसहित सोभा त्रिभुवन की धारौ माननी मदन की ।  
अग्र स्वामिनी बिसद चद्रमुख सोभग हृद् सुखसदन की ॥२६॥

सभ की सोभा सिमिटि लई ।

बैदेही को बदन बिलोक्त अतरभूत भई ॥

सीताराम गजगति हम जघ कदली कटि केहरि दसन अनाइ ।  
कुच नारंगी कात कलघोतहि मुख बिधु जवुज चाइ ॥  
ग्रीवा कबु कपोत अधर बिद्रुम छुति नासा कीर ।  
नेनन मीन मृग बेनी अहि कोकिल गिरा गमीर ॥  
थीहत भए मकुचि सत्र जित तित पर्वत जाय लियो ।  
कोई अरुय अकास अगिन जल कोठ पाताल दियो ॥  
बनि अरु वरन बन्हि वासव मिलि वदत भये यह बात ।  
सीतागरन गहो मव तजि कै श्री 'अग्र अली बलि जात ॥२७॥

राग धनाश्री

भूपन मनिमय नाहिन भावत ।

सीता भीत पीय अग परसत ऋषिपत्नी की सुधि जब आवत ॥  
जम्बू नरु गुहि असित पाट सो नाना भाँति बनावत ।  
कुसुम बटाव कचुकी सारी कुमकुम कुचन सु दोष जनावत ॥  
पद्मपानि पद चित्र महावर पानि तबोल फज्जल छवि पावत ।  
सहज सुभग वैदेही अग अग 'अग्रस्वामि' येहि भाँति रिझावत ॥२८॥

राग कान्हरो

नमो जानकी जगतमनि रूपकमनी ।

वदन बिधु रचिर रद हास ईपद सुखदाम हृद काम की ताप समनी ।  
 नमो सुक नासिका नेन मृग मीन छवि भाल धर भाग सीभाग दरसै ॥  
 प्रेमपूरित वैन अलक इक उर जैन सहज अलरेलि पिय मनहि करसै ।  
 नमो कठ कपोतिनी उर जडठ गिनी सिंह मधि देस श्रौनि सोहै ॥  
 जघ कन्ली कर्म गर्व गति हरति इमु सुदुनि नख चद्र उपमान को है ॥  
 नमो क्षिपद सत कुम्भ सम भाति आभा बपुष मनि खचित त्रिभिध  
 भूपनिधारी ।

व्यालि बेनीदह अग दीपति चड सुभगता सनि रही रामप्यारी ॥  
 नमो भरत सगीत गध्रवन्ना कोवनिधि सुधरवरनारि सब सीस नावै ।  
 रुद्र ब्रह्मानि कबि और केते कहीं स्वामिनी 'अग्र' नहि पार पावै ॥२६॥

नरवर राम त्रियावर सीता ।

या जोरी की उपमा नाही घाता निरखि रह्यो भयभीता ॥  
 सोच सदेह करत चतुरानन दूजे काहू सृष्टि चलाइ ।  
 उभय लोक परयत फिरयो पै येहि मूरति गति कहूँ न पाई ॥  
 वेद विचार कियो जब ब्रह्मा नेति नेति इनही को गावत ।  
 राम इष्ट जगतपति नियता सोई 'अग्र अली' जिय भावत ॥३०॥

राग मलार (झूलन के पद)

तहन तमाल बरन रघुबीर जानकी कचन की लता ।  
 सोलमिनि नव सग मानहु पुलकि प्रेमलता ॥  
 निरखि रेखि जबूनद जैमे दोऊ सग रता ।  
 श्री 'अग्र अली' सीतापति सोभा को करि सकै अता ॥३१॥

राग कान्हरो

जनकपुर लागती छु मुहाई

रंगौली अतिहि छशीली मव मिनि झूलन आई ॥  
 सावन मनभावन पियप्यारी अवनी सहज मुहाई ।  
 पावन कुज पुज सुख बरसत करयत मन धरपाई ॥  
 कचन खंभ जटित डोंडी नग बिदिधि बिचित्र बनाई ।  
 रेसम डोरि कोरि बनि आई चहूँ दिसि जनज जराई ॥  
 लाली बाल साल रंग श्रीमी लालन लाल सहाई ।  
 झाका दंत लेठ मुख पिय को मद मद मुसुक्पाई ॥

उमगेठ रग अनग परस्पर मेन मल्हार जमाई ।  
 गावाँह समर रग भरि भामिनि कोकिल कठ लजाई ॥  
 ठाकुर हमरे राम मनमोहन अगन रूप सोनाई ।  
 ठकुराइनि मिथिलेस सांखिली सील सनेह भलाई ॥  
 होडाहोडी मच्यो है हिंडोरा सोभा कहि न सिराई ।  
 श्री 'अग्र अली प्रिय दपति झूलत जनकलली रघुराई ॥३२॥

राग बसत

मूंदत नैन राम सीता क चदा तन चितवन नहि दत ।  
 भाँगो जो बल्लभा मृगन को सारगधर सकुचान यहि हेत ॥  
 प्रिया बचन उलघन सक नाही उत्पति हने प्रलय हूँ जाई ।  
 दोऊ कठिन जानि रघुनदन हाँगी मिस यहि रच्यो उपाई ॥  
 जाँचे जानकी कदाचि इद्र कुरग बेगि देउ आनी ।  
 अति आधीन जनावत निय के 'अग्र स्वामि' एते यह मानी ॥३३॥  
 रघुकुलबधू झरोखे झारै राघी खेलेँ होरी ।  
 भरत परस्पर सुधि नहि पैयत को प्रीतम को गोरी ॥  
 जहँ तहँ राम जानकी सनमुख लाषव कहि न जाई हो ।  
 केसर कुमकुम कौच मची है बरसत घन पिचकाई हो ॥  
 नभ विमान गन थकिन रहे हैं सुरबनिता सब गावै हो ।  
 पुण्य वृष्टि करि जय जय उचरैँ प्रमुञ्चित दद मचाई हो ॥  
 केलि कुलाहल कौनुक देखैँ पुरबासी बड भागी हो ।  
 सीताराम स्वरूप हृदय धरि 'अग्र अली अनुरागी हो ॥३४॥

राग जैतश्री

अबके बसत अधिक बनि आयो ।

खेलत हूते सदैव अवधपुर यहि सुख कबहुँ न पाई हो ॥  
 और बेर ये सब हुन सखि मिनि मारति भरि पिचकारी हो ।  
 अबके खेल सरोतर सनमुख कहि न जाइ छवि यारीहो ॥  
 चोदा चदन अगर अरगजा नाना रग अबीर हो ।  
 केसर कुमकुम कौच मची मनो बरमत भादा नीर हो ॥  
 चग मुदग उपग झजरी मधुरे स्वर सहनाई हो ।  
 जीतत जबहि नायका नायक सहचरि उठति बजाई हो ॥  
 कोऊ सभी स्लाधि राम के कोऊ सीता गुन गावै हो ।  
 श्री दसरथ जनक दुहु पीती दासी गारी देखि त्वावै हो ॥

मह छवि निरखि सुमन सुर वरसत उचरत जै रघुराई हो ।  
सीताराम फागुरगरात श्री 'अग्र अली' बलिहारी हो ॥३५॥

मेलत राम रघुपुरी गचि सौं बहु भातिन सुखलाई हो ।  
इत जानकी जुवतिमडल मे उत सोभित सग भाई हो ॥  
चमर छत्र लिये ध्वजा पताका रचना रुचिर बनाई हो ।  
सबै छल का मौज सजी है जैम निघटन जाई हो ॥  
बाजे बजन लगे दुहुँ निसि ते गावति गारि सुहाई हो ।  
मनहुँ दुरि दुरि छुटे मदमाते भिरत परस्पर घाई हो ॥  
केसरि बारि कुमकुमा भरि भरि छुटत छिछि पिचकाई हो ।  
प्रेरित पवन मनहुँ पावस रितु द्विन वरसत इकवाई हो ॥  
चोवा चंदन छलवल करि कै प्रीनम मुख लपटाई हो ।  
राजिवौन लेत जब बन्लो तब प्रिय दत दुहाई हो ।  
हा हा किये तबहि भलि छुटिहो कै सीता सिरनाई हो ।  
मृगमद मलय अबीर सुख सुखी अजिरन कीच मचाई हो ॥  
उमरि चलयो अरगजा पनारनि बीषिनि नदी बहाई हो ।  
वृत्नागर सो भरे चहववा धूम धूप नम छाई हो ॥  
सोधी लहरि महोन्धि मानो पुरजन प्रीति कराई हो ।  
भरति भरावत कुवरि कुवर रस होरी कहि किलकाई हो ॥  
मनो मधवाधुनि व्यापि रही सब उठत महल मे छाई हो ।  
पलरोटा बीरिनि मे पछी मिसु कै हाथ दिवाई हो ॥  
खान लगे उडि गई चिरौंजी हमि करताल बजाई हो ।  
खम खम प्रतिबिंब स्याम के जह तह देत देखाई हो ॥  
कुसम्बज कुवरि भरति ध्रम सो जब तव हँसि करत खेलाई हो ।  
पलटे पकरे जाइ सनुधन वज्जल आँखि अचाई हो ॥  
करत सबै भामिनि मन भायो बंदो तो लेहु छुडाई हो ।  
रग रंगे खेतत अंग अगन जनकमुठा रघुराई हो ॥  
रोझ सुमन वरसत सुर सघट देव दुन्दुभी बजाई हो ।  
जालरध निरखत सुख जननी आनदसिधु बढाइ हो ॥  
तन धन प्राण करत योछावरि बाजत बहुत बघाई हो ।  
बीच कियो कौसल्या रानी फगुवा गोद भराई हा ॥  
सीताराम बिनो फाग पर 'अग्र अली' बलि जाई हो ॥३६॥

राग मारु

सीताराम की बनिहारी ।

अगमूपा निरदूपा जोरी राजत अवषविहारी ॥  
सुंदर बर रघुबीर पीर अजि सोभानिधि गुरुमारी ।  
श्री 'अग्र अली उरयसो अहनिष सीन सरागनपारी ॥३७॥

हिंडोरो झूलत जावदुमारी ।

सखि ह्व जोर निहार रूपनिधि विनिष भक्ति तन सारी ॥  
कचन मभ पाटि पटुली डोढो बिद्रुमद्युति यारी ।  
पधराग मरजा बला पन्ना आउ इंदमनि भारी ॥  
घाम निकट आराम हरित द्रुम श्रोष्ठ तहें गुरुमारी ।  
गावति है मिनि हरपि हिंडोरा मन्कठिन उनहारी ॥  
बरत अंदोल सोन बचल बल अनु दामिनि छवि हारी ।  
साट लिये सजनी करपावत नाम लेउ पिय प्यारी ॥  
नाम लियो स्वरूप सुचि बर देगी हंपु धनुपारी ।  
श्रम स्वेदविदु निरखि बरन पर श्री 'अग्र अली बलिहारी ॥३८॥

देसो झूलत राघो डोल ।

जनवमुता लीने सग सोमित गौर स्याम तन सोल ॥  
हीरा पन्ना लाल पिरोजा रतनखचित बेमाल ।  
श्रीहत राम जानकी दोऊ बजे दुदुभी डोल ॥  
हसत परसपर प्रीतम प्यारी आनद बढ़यो सचोल ।  
श्री 'अग्र अली' मुनि मुनि गुण पावनि बोलहि मीठे बोल ॥३९॥

झूलत सिमा राजिवनैन ।

रतनजडित हिंडोलना सखि राम सुख के अेन ॥  
स्याम अग पर गौर झलकत दामिनी धन गेन ।  
मैथिली रघुबीर सोभा निरखि लज्जित मेन ॥  
नाम पिय को लेहु नागरि जो सखिन मन धेन ।  
जानकी नहि लेत मुख सो देत लोचन सैन ॥  
परसपर झूलत पुलावत बदत मधुरे बैन ।  
अवषपुर नित कलि दपति 'अग्र' आनंद दिन ॥४०॥

राग जैतथी

झूलत राम राजिवनैन ।

जनवजा सनमुख विराजति तडित ज्या धन गेन ॥

अतिहि झूलत मनहि फूलत रसहि तोषन मेन ।

साल के उर लागि सोभा सुख की रेखे अैन ॥

परस्पर अनुराग दोऊ बन्त मधुर बेन ।

जालरघ्न सो निरखि बनिता 'अग्र' उर सुख देन ॥४१॥

जलबिहार बिहरत सीता सग सुदर बर रघुराई हो ।

प्रीयम काल मुसार सरद सुख सरजू सुमग सुहाई हो ॥

न्यारी न्यारी नाव सबनि की सीतल सौंज भराई हो ।

लेहज चोहज बिबिध भाँति फल सुगध बरयो नहि जाई हो ॥

एके कोट कुबरि रचो भई राम लक्ष्मन भरत भाई ।

भरत परस्पर कर अबुली जल मनो सीकर बरखाई हो ॥

बिमला कमला ककटिका मेलता लाधव लेत बचाई हो ।

लोचन लाल भए पयपूरित बसन अग लपटाई हो ॥

निरखत नीरकेलि नर नारी, 'अग्र अली' मनभाई हो ॥४२॥

उठे दोठ अलसान परभात ।

दसरयसुत श्री जनकनदनी सौंधे भीने गात ॥

बिमलादिक सखि चवर दुरावहि हरपि निरखि मृदु गात ।

श्री 'अग्र कली' को श्रीरज दीजे सकल भुवन के तात ॥४३॥

चहियत कृपा लली सीता की ।

नवधा भक्ति जान वा करनो मिटि गई सक वेद गीता की ॥

पटमल वेद पुरान पुकारत करत बाद नर षषु बीता की ।

झगरी करे अरुझै सुरक्षे ना मिटी न एक द्वैत भीता की ॥

जाकी ओर तनक हसि हेरति करत सहाय राम जू ताकी ।

श्री 'अग्र अली' भजु जनकनदनी पापभडार ताप रीता की ॥४४॥

जे जै श्री बगप्रमोद रसिकन सुखदाई ।

सरजू तीर दिव्य भूमि बेलि लता रही झूमि

फूलन प्रति भँवरा अति गुंजत मनमाई ॥

कृज कृज प्रति अनूप बिलसत तहाँ जुगलरूप

जनकलती रघुनदन मधुर मधुरताई ।

षड्रकला बिमलादिक नागरि नवीनी अति

मधुर जत्र लीन्हे कोइ सप्त स्वर जमाई ॥

गार्वाहि सब दिव्य तान सुनहि लाल अति सुजान

रामरस भीजि मद मद सुसनमाई ।

श्री 'अग्र अली' विपिन राज यहि सुख तहँ नित समाज  
 जानत कोउ रसिक भेद जिन यह रस पाई ॥४५॥  
 आगे सखि पाछे सखि सखिन के मध्य आवें  
 अचरानि ओट राजें राजदुलारी ।  
 अकनि अकनि पग धरत धरनि पर होत ललित नूपुर झनकारी ॥  
 करत प्रवेश महल म सजनी अरसपरस सुख उपजत भारी ।  
 दपनि छवि मोपे कहि न परतु है श्री 'अग्र अली' तापर बलिहारी ॥४६॥  
 अथ भोजन पद

छबीले दोऊ आवत भोजनसाल ।  
 झूमत झुकत चलत मतवारे रसिक रगीले लाल ॥  
 करत कटाक्ष परस्पर लपटत दीहे गलभुज माल ।  
 हसत हसावत रस उपजावत सग सहचरी जाल ॥  
 प्रानप्रिया कछु कहत नवेली हरषित होत निहाल ।  
 श्री अग्र अली बैठे दोउ प्यारे निरखत भोग बिसाल ॥४७॥  
 जेंवत श्री रघुबीर बने सखि सग लिय मिथिलेस लली ।  
 भुज अस दिये बहियाँ जु लसैं बिहसैं मृदु मज्जु अनग रली ॥  
 करि कीर सिया मुख देत पिया कहि स्वाद सराहत भाति भली ।  
 रस के निधि दपति रग भरे निरखैं चहुँ ओर बिसार अली ॥  
 मनिमदिर म झलकैं प्रतिबिम्ब मनोज के मानो बिहारयली ।  
 अवधपुर नित्य बिहार करें लखि 'अग्र अली' जी की आस फली ॥४८॥  
 भले हठो जी राम गोसाई ।

पायो राज पाट दसरथ के गहि लीन्हा ठकुराई ॥  
 जाय कहीं मिथिलेस लली से निसरि जाइ गुमराई ।  
 श्री 'अग्र अली' के सिर पर चहिये सीरध्वज को बाई ॥४९॥  
 यह मोहि दीजै राघव राम ।

दासनिदास दास के अनुचर कथा श्रवण मुख नाम ॥  
 मोप आनि दे चारि पदारथ मेरो कछु नहि काम ।  
 धरनरनु साधुन की सिर पर कृपा करो सुखधाम ॥  
 सतन सो अनुराग निरतर यहि बिधि बीते जाम ।  
 श्री 'अग्रदास' चाहत हरि चरचा सुधासिधु विश्राम ॥५०॥  
 हम चाकर रघुनाथ कुमार के ।  
 डादस गिनक मनोहर बाना कठा कठ दखि जग टरके ॥

तुमहि जाँचि जाँची नहि औरहि नहि भरासो कह नारी नर के ।  
 दालीबद सदा प्रभु तेरो भयो गुलाम रावरे घर के ।  
 'अग्रदास' यह पटा लिखायो दसखत दसरतसुत निज करके ॥५१॥

इनके अतिरिक्त अग्रदास जी के कुछ और पद मुझे इधर खोज मे प्राप्त हुए हैं । उनमे से १४ पद राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर मे सुरक्षित 'पद मुक्तावली' नामक काव्यसंग्रह ( प्रयाक १८८२ ) के हैं । मापाशैली तथा वर्ण्य-विषय के विचार से इनके अग्रदास विरचित होने मे कोई सदेह नही है । शेष पद रसिक रामभक्तो द्वारा संकलित पूर्वाचार्यों के पदसंग्रहो में मिले हैं । भापा तथा बणनपद्धति दोना दृष्टिया से इनमे से अनेक की प्रामाणिकता सदिग्ध प्रतीत होती है । विभिन्न स्रोतो से संकलित इन पदोम यत्र तत्र सामाय पाठ भेद के साथ कुछ एक दूसरे से बिल्कुल मिल जाते हैं—

( ५२ )

॥ राग आसावरी ॥

रामजनम आनद बधाई ।

सुरतर कामधेन चितामनि अवधिपुरी मानीं ग्रह ग्रह आई ॥टेक॥

अतरीछ जन फिरत अबनि पर मिलन परसपर हूब बधाई ॥१॥

प्रफुलित ह्लिदौ नगरवासिन को बाल वृद्ध सब बात सुहाई ।

भई भीर नाचत नर नारी बहौ विधि गिने न जाई ॥२॥

मगल कलस चौक मोतिन के द्वारन बदनवारि बधाई ॥३॥

सुत को बन्ध निहारि नारि सब वारत भूपन लेत बलाई ।

नारी नर कौसल्या रानी धनि भाग की करत बडाई ॥४॥

दसरथ राय न्हाय भए ठाढे कनक बसन अन धेन मगाई ।

परम पुनीत बिप्रपद बद्धि दान मान ज्यौ धन बरपाई ॥५॥

मागध सूत भाट बदीजन अष्टसिद्ध मन बाद्धि पाई ।

दसरथ सुत हौं नित प्रति देषीं अग्रदास के यहै मन भाई ॥६॥

( ५३ )

॥ राग गौरी ॥

आजि बधावौ दसरथ राय जाए ह राजीव नैन

आए हें सुप के अैन ॥टेक॥

चैत मास नौमी उजियारी सब मजोग अनूप ।

लगन महरत नगत्र उच्चग्रह चरतचिह्न बन् भूप ॥१॥



बसिष्ट आदि तपोधन धारी कीनौ यह निरधार ।  
 दुष्ट दलन सुपद सतन कौ भूमि उतारन भार ॥२॥  
 घर घर तोरन धुजा पताका मुकता बन्नवारि ।  
 दूध पूत भरी नारि सुहागनि सधिया रचत दुवारि ॥३॥  
 चदन चौक रचत आगन में दधि अह दौब बघावें ।  
 कनक धार सीपज भरि आच्छित मिलि सब मगल गावें ॥४॥  
 निरत गीत बाजित्र वेद घुनि ठौर ठौर यौ भनियै ।  
 लेहु लेहु प्रापति भई बानी बोल श्रवन नहि सुनियै ॥५॥  
 पढ़ें निसान मृदग सप घुनि जै जै सबद उचारैं ।  
 करत कौतूहल कौसलवासी आनद बन्थी अपारैं ॥६॥  
 मामघ सूत भाट बदीजन दान मान बहु पावैं ।  
 वरणाश्रम जतन अति धारी फूले अग न मावैं ॥७॥  
 भू देवन कौ भूमि बाज गज धेनु रतन अन दैहै ।  
 पाय लागत सतोप सुवासिनि मुदित आसिगा लैहैं ॥८॥  
 सुरतह कामधेन चिंतामनि कौशल्या सुत जायो ।  
 अग्रदास रघुपति के आगम मन बद्धि फल पायो ॥९॥

( ५८ )

॥ राग कनडो ॥

जाहि भयो परसाद राम पदरज को ।  
 त्रिलोकी लागत ताहि फीकी आसन इन्द्र बैठिबो गज को ॥  
 अष्टसिद्धि नवनिधि तीन पदारथ अद्भ पतिता अज को ।  
 मुक्त बतूर घाम निहिन मानत घटयो सुभाव नामना कज को ॥  
 दीयो हूँ नहि लेत हरी कौ उपज्यौ राग सहज को ।  
 चरन धूरि फल मूलि अगर प्रभु अकुस कुनिस कवल जब धुज को ॥

( ५९ )

॥ राग मलार ॥

तीज हिंडोरें झूलत रानी ।  
 सुरजिबीरति उरमना माडवी रूप सील गुन पानी ॥टेक॥  
 मच्यो हिंडोरो नाम लिवावत चतुर सपी मुमकानी ।  
 सीयाजू सपुचि रही नहि बोलति अग्र अली मन मानी ॥१॥

( ५६ )

॥ राग मलार ॥

सावन आयी हे रग हली ॥  
 सावन तीज सबै सजि पेलैं आवी मिली सहली ॥टेक॥  
 सजल घटा उमगी चिहूँ दिस तैं प्रफुलिन है द्रुमबेली ।  
 हरी हरी भूमि बूद अति बरपैं रतिपति गति सब पेली ॥१॥  
 बरन बरन भूखन पट पहरैं उत्तम नारि नवेली ।  
 सुरनि कीरति उरमला भाडवी च्यारों लाड गहेली ॥२॥  
 अपनैं अपनैं ग्रह तैं निक्सी आनि जुरी इक सेली ।  
 अग्र स्वामिनी की छवि निरपत तन मन बारदि बली ॥३॥

( ५७ )

॥ राग मलार ॥

हिंडोरे झूलत जनक दुलारी ।  
 सपी इक जार किसोर रूपनिधि बिबिध भाति तन सारी ॥टेक॥  
 कचन पम पाट पाटली डाडी विद्रुम दुति यारी ।  
 पदम राग मरवा बेलनि पुनि आढ इद्रमनि भारी ॥१॥  
 घाम निकट आराम हरित द्रुम ब्रीडत तहा सुकुमारी ।  
 गावत हैं मिलि हरपि हिनारैं कल कोकिल उनहारी ॥२॥  
 करत अडोल लोल चचल चल घन दामिनि छबिहारी ।  
 साटली पैं सजनी डरपावति नाम लेहु पिय प्यारी ॥३॥  
 नाम लीयो स्वरूप सोचि करि इप दए घनुधारी ।  
 ध्रम सेत बूद निरपि धदन पर अग्र अली बलिहारी ॥४॥

( ५८ )

॥ राग मारु ॥

रघुपति वेग बिलव कीजे ।  
 सीना सोभ भये पीये तै इहा न पानी पीजे ॥टेक॥  
 आनन्दादि योग तिथिउत्तम लगन बिचार ।  
 सूरज सोम नशिन्न ग्रह नीके रिपगण कीयो निरधार ॥१॥  
 दिसामूल योगिनी पीठ पुनि त्रिय पूठि के गानी ।  
 सम सूचिक सम सुगुण होत हैं सब सुख के अभिरामी ॥२॥  
 अनुज सेव अनुचर प्रतवानर राम सहायक राजा ।  
 बहा सापर बहा लकलसानन केतो एक है मह काजा ॥३॥

अग्रस्वामि सुधीव विनति प्रभु चलिये एही काल ।  
सीता लाभ सुणे वदि छूटे सत्रु जाय पयमाल ॥४॥

( ५६ )

॥ राग भेरी ॥

आजि रामजानकी रूपाल सुद सोह ।  
निरपत सुर नर मुनिजन शिव बिरचि मोहे ॥टेक॥  
श्री रामजी केँ क्रीट मुकट रतन जटित धारें ।  
सीयाजू के सीस फूल कोटि चद्र वारे ॥२॥  
श्री राम जी के कुडल छबि कोटि भान मोभा ।  
सीयाजू केँ करनफूल श्री राम कौ मन लोभा ॥३॥  
श्री रामजी कौ सोहत उर मोतिन की माला ।  
चार हार हचिर पहरेँ जनक कुवरि वाला ॥४॥  
श्री रामजी कटि किकनी रु ण झुण रु ण झुण बाजे ।  
सीयाजू केँ छुद्र घटि काटि मदन लाजे ॥५॥  
श्री रामजी कर धनुषवान पीतावर राजे ।  
सीयाजू कर कमल सुरग चूनरी बिराजे ॥६॥  
श्री रामजी धनस्याम अग छबि केँ अभिरामा ।  
सीयाजू कचन गौर अग लजित सपत कामा ॥७॥  
यह ही ध्यान हिरदै सौ टरत नही टारै ।  
अग्र स्वामि चरन उपर कोटि काम वारे ॥८॥

( ६० )

॥ आरती ॥

आरती बारन रघुपति राया । सुरनर मुनि जन कैतिक आया ॥टेक॥  
घटा निसान धन बालरि बाजे । जगमग जोति अवधपुर राजे ॥१॥  
वदोजन जस द्वारे गावें । मूरज बस प्रताप बन्गवें ॥२॥  
मात कौसल्या श्री रामहि देपै । जीवनि जनम सुफल करि लेपै ।  
क्रीट मुकट कर धनुष बिराजे । तीन लोक जाकी शोभा राजे ।  
मोतीयल बाल भरि मईया वारे । अग्रलस जन आरती उचारें ॥३॥

( ६१ )

॥ राग वनडी ॥

येही मुभाव परी मरी वानी ।  
अहौ निशा गाऊ गुन पावन रावौराय जानकी रानी ॥टेक॥

जागत सोवत सीतापति पद आन कथा हिरदै नहि आनी ।  
 जहो तही रट परी रसन जस मानों मनि काहू की कानी ॥१॥  
 असुद अलाप पाप करि जानौ रमा रवनि उचरू सुपत्नी ।  
 वैदेहीवल्लभ की कीरति अग्र मोज पावै मन मानी ॥२॥

( ६२ )

॥ राग कनडी ॥

रामचंद्र पद भजिवे लायक ।  
 अभै करन भव तिरन पोन दिड जुग जुग सापि वेद के वायक ॥टेक॥  
 चितत घरन सकल सुख करतल यापत नही मूल कौ मायक ।  
 सतन की रक्षा के कारण निस दिन लीयें रहत कर सायक ॥१॥  
 गौतम घरनि गिरा जूल तारे सरन भभीपन कपि ज्यौं सहायक ।  
 सेवा अतप मेर सम मानत करनासिधु अजोष्या नायक ॥२॥  
 सिव बिरच सनकादि वेणुधर सारद सेस विमल जस गायक ।  
 जानकी रवन अग्र सिर सेहरो अग्रदास उर आनद दायक ॥३॥

( ६३ )

॥ राग कनडी ॥

निबही नेह जानकीवर सी ।  
 येही मनोरथ मन बच मेरे सनमुप रहैं निति सारगधर सौं ॥टेक॥  
 उझकौ नही द्वारि काहें कैं नेम परी हृद दसरथ घर सौं ।  
 अष्टसिद्धि नवनिध सीतापति पद वाम नही मोहि च्यारों फल सौं ॥१॥  
 प्रीत न बैर असुर मुर नर सौं निधरक रहों डरौं नहि डर सौं ।  
 रावन अनुज बालि कौ बधू दुसह आपन टारी पर सौं ॥२॥  
 मोह घटी ससार सकल सौं अनुराग बढो निति कवनाकर सौं ।  
 अग्रदास की यही बीनती राम राय छाडो जिन कर सौं ॥३॥

( ६४ )

॥ राग सोरठ ॥

मेरे राखवै कठिन धनुष कैसें तोरयो ।  
 बडे बडे भूप सपत दीपन के तिनहूँ नैक न चहोरयो ॥टेक॥  
 पिता पुय पय पीयो तुम्हारी विस्वामित्र सहाई ।  
 यह ही सजोग बनो मरी जननी तालें लीयो उठाई ॥१॥  
 चांपत चूवनि गोद वैठारि कैं बाटत बहुत बधाई ।  
 अग्रदास कौसल्या सुत पर धारि फेरि बलि जाई ॥२॥

( ६५ )

॥ राग सोरठ ॥

लेत बलेया रांनी रीप के सेन बलेया रानी ।  
 जाकी ब्रपा सदै पल पायो अमृत दुसही आनी ॥१॥  
 गूरजवश हुती बहो बनिता असी मुनी न देखी ।  
 रूपसील सागर गुन सीवा सबही बधू बसेयी ॥१॥  
 जाकी ब्रपा जनक से समधी अलभ लाभ में पायी ।  
 कर पद जोरि कहै कवसल्या कीयो मनोरथ भायो ॥२॥  
 विद्वान पुत्रि कीये सूत मेरे मौपै बरनी न जाई ।  
 गाधिसुवन परि तन मन कर सोई अपदास निधि पाई ॥३॥

( ६६ )

॥ राग ललित ॥

गावति श्रीप्रसाद सिध प्यारी छवि छकि मतवारी ।  
 शीघ्र बजावति मधुरे स्वर सो मधुर ताल सुठिकारी ॥  
 मुनि जागे पिय प्यारी प्रीतम आलस मरे चुमारी ।  
 बिनदुल्ल वैठे पलगा पर काहू सुधि न सम्हारी ।  
 प्यारी लट छुटि सोह उरज पर जनु नागिन दुठिकारी ॥  
 अप्रअली निरखति यह छवि को तन मन धन बलिहारी ॥

( ६७ )

॥ राग ललित ॥

भरि अनुराग परस्पर दोऊ अपरामृत रस पिघत विलारी ।  
 दत नखोद्यत दोउ अग झलकत मनु गुग द्विरद वैठि लडि भारी ॥  
 कबहुँ प्रेम भरि लपटि क्षपटि दोउ करि विपरीत श्रिया रसकारी ।  
 प्रीतम प्यारी को कह प्यारे प्यारी प्रीतम को कहि प्यारी ॥  
 चारुशिला रत्न पाय अप्रअलि यह सुख क्षाकति क्षाक्षरि द्वारी ॥  
 जाहि न यह सुख निरख्यो नैनन जप तप योग व्यर्थ श्रमकारी ॥

( ६८ )

॥ राग ललित ॥

भोर भये नव रग महल मे राजत जनक लहेती लाल ॥  
 स्वाम गौर अशन भुज दी हे कछु आलसयुत नयन विशाल ॥  
 प्रेम मगन दोउ उरजि रहे हैं कनकलता जनु डार तमाल ॥  
 अप्रसहचरी तन मन वारत उझकि क्षरोखे क्षाकति बाल ॥

( ६६ )

उठे दोउ अलसाने परमात ।

दसरथ सुत श्रीजनकनन्दिनी सोधे भीने गात ।

बिमलादिक ससि चँवर दुरावति हरपि निरपि मृदुगात ।

अग्रअली को श्रीरज दीजे मकल भुवन के तात ॥

( ७० )

॥ राग देवगंधार ॥

जीति आइ कामकेलि रामरग राती ।

जागी निसि चारियाम बार-बार जम्हाती ॥

पल दे पद धरति धरनि अघर सुधा माती ।

महल भुज जोरि मोरि अग अग अगुडाती ॥

दूटे उर हार चिकुर कचुकि उलटाती ।

अघरनि छत कल कपोल बनी पीक पाती ॥

नख सिख हरखात गात बानी तुतराती ।

सीता छवि निरखि-निरखि अग्रअलि जुडाती ॥

( ७१ )

दगुवन करत सिया रघुराई ।

सुंदर सुखद रसीली दगुवन रदन धरत छवि छाई ॥

जीभी कर जल परसत ऋऊ मुख प्रछाल अगुछाई ॥

अग्रअली उरक्षी चितवनि मे मन्द मन्द मुसुकाई ॥

( ७२ )

॥ मगल ॥

मगल करि शृगार सुतन मगल मई ।

मगल धार सजाई द्रव्य मगल मई ॥

मगल कर लिये सौज चली मगल मई ।

पहुँची हेमिनिवास जहा मगल मई ॥

निज-निज सखि लिये वाद्य बजावत रस मई ।

गावन लागि बहु नारि राग मगल मई ॥

आलस युत सिय प्यार जगे मगल मई ।

सखि सब झाँझरि भाह विलोकति सुख मई ॥

देखत युग विपरीत रहस मगल मई ।

बिन दुकूल शलकात गात सब रस मई ॥

लखि लखि सब सुखसिधु भगन मगल मई ।  
 वैठे दिय गलबाहि रूप मंगल मई ॥  
 सखि सब रूप निहारि वारि तन मन दई ।  
 पुनि दोउ को वैठाइ चौकि रतनन मई ॥  
 मगल द्रव्य दिखाई प्यारी प्रीतम नई ।  
 पुनि दोउ बे शृगार करी मगल मई ।  
 मगल भोग लगाइ शेष सखियन लई ॥  
 आरति करि पट वारि वारि मगल मई ।  
 अग अग छत्रि अवलोकि सखिन बलि बलि गट ॥  
 मगलमय यह ध्यान अप्र जे गावई ।  
 पिय प्यारी रस महल टहल सुख पावई ॥

( ७३ )

॥ सुगंधा छन्द ॥

मगल आरति करि लखि राम रिझाइ वे ।  
 भूषण कछुक उतारहि प्रभु मन पाइ वे ॥  
 कोइ लखि पट पहिरावाहि दूसर छोरि वे ।  
 अष्ट कमल दल मणि चौकी दुइ जोरिके ॥  
 द्वौ चौकी बसु बसु सखी टहल चतुरि बडी ।  
 अष्ट कोण दल दल पर आमसु लखी खडी ॥  
 बागीशर, माधवी, प्रियाहरि, मनजीवा ।  
 नित्या, विद्या, सविद्या, वृटरूपा—सखी ॥  
 आठौ मुख्य दिगन द्वौ खडी सोरह सखी ।  
 अवरनि ते ले देहि आठ कहें मन लखी ॥  
 सिय चौकी पर मुख्य आठ सोरह सखी ।  
 जस रघुवर सेवा मई तस मिय के लखी ॥  
 विमला उतकर्पणी, क्रिया, योगा, प्रवी ।  
 ईशाना ज्ञाना सत्या, सेवा कवी ॥  
 आठ आठ जे मुख करहि मन की लखी ।  
 समय समय सब निहे अपर कोटिन सखी ।  
 परम मुख्य सखि पाच सुशीला, लछमना ।  
 हेमा, अतिशीला सुधाश्रीला भना ॥

पाँचहूँ की आज्ञा सुसर्व सेवा सुधी ।  
अर्घ्य देति सखि अग्र राग मिय की रुची ॥

( ७४ )

॥ वदित्त ॥

श्री प्रमाद प्यारी औ प्यारे और चान्शीला

अगन सुगन्धमय उबटनो लगावती ।

दोउन के सुलेगात अगन छवि झलमलात

मानो शशिकोटि सुधा निरण को सजावती ॥

निरखि निरखि सुभग गात आनन् उर मे समात

कोटिन रति काम आली दोउन पै वारती ।

कोमल कर मे सुधार उबटनो ले बार-बार

दोउन सखि हाथ अग्र देनि रस भावती ॥

( ७५ )

॥ उबटन ॥

सिय प्यारे को (सखिया) लगावति उबटन ।

पद्मराग मणि की चौकी पर दुग्ध पेन सम बिछे बिछावन ॥

तापर स्पामा स्पाम निराजे कोटि मदन रति चुतिन सजावन ।

अति सुगन्धमय तैल नरायन तामे और मिलाय सुगन्धन ॥

सिरप कुसुम हूँ त अति कोमल अग अग सुकुमार निरखि तन ।

ले उबटन कर चहुत लगावन करन कठोर समुझि हिय धरकन ॥

अति भयभीत सहमि सखि लगवनि लखि अद्भुत छवि धारति तन धन ।

कोइ सखि प्रीतम अग लगावति अग्र लगावति प्यारि सुभगतन ॥

( ७६ )

उबटन करत रगीली अलियाँ ।

युगल अली दोउ चरन लगावति अग त्रिलोकति छलियाँ ॥

युगल युगल सखि दोउ भुज भीडत उर पीठन युग अलियाँ ॥

अग्रअली दोउ रसिक परस्पर मुख मीजत छलि बलियाँ ॥

( ७७ )

उबटन करत सिया रघुराई ।

सरस सुगन्धन बयो उबटनो लेकर उर सरसाई ॥

जोई जोई अग लगावत प्यारो सोइ प्यारी मन भाई ॥

अग्रअली के जीवन दोऊ निरखत हृग न अघाई ॥



( ७८ )

॥ कवित्त ॥

सिया अम्नान उवटचाते आज कीन्ही केत्रिय उत्तम नारी ।  
तेई सील सुन्दर सौभागिनि बहुत गुनन के भारो भारी ॥  
जानकि अंग तीरथ म हाय वाम भई जग म उजियारी ।  
घनिता श्री रघुबीर बल्लभा अप्रस्वामिनी नहीं कोउ सारी ॥

( ७९ )

मज्जन करत रसिक मनहारी ।  
सुभग सरोवर तामें दोऊ करिणी सग करि रिब पिय प्यारी ।  
सखिन सहित विहरत जलमाही बहुविधि करत बेलि रसकारी ॥  
अजलि भरि जल सेत परस्पर अस्त्रियन में मारत पिचकारी ।  
बख्र क्षीन अंगन सन झलकत सखि लखि दोऊ रम मतवारी ।  
करि मज्जन दोउ तट पर आये अग्र समय सम बसन सुधारी ॥

( ८० )

यज्ञ (सु) करत रसिक सिय प्यारो ।  
सुरतस छर मनमय केरी दाहिन सिय पिय वाम निहारो ।  
दाहिन इक अलि धार लिये कर पायस ले सिय पिय करधारो ।  
द्वादश आहुति युगल मन्त्रसो जात्रवद तिपित किय भारो ।  
हवन कुड परिकरमा कीहें अग्र अली के प्रान अधारो ॥

( ८१ )

॥ कवित्त ॥

दिव्य मडप महा यज्ञ किय साजयुत तानदिय श्रुति सखी रूप आई ॥  
बिभ्र तनया कही सीय रघुवर लही हरदि दधि अक्षत लें छिट्ठाई ॥  
धेनु भूपनवसन रत्न वासन असन अन दाहन अमित दीन जाई ॥  
पानिछै अग शृगार दूसर किये पूजि पियप्यारी सब सखि गृहाई ॥

( ८२ )

॥ शृगार कवित्त ॥

प्यारी कटि सारी जरवारी सुधारी क्षीनी प्यारे कटि घोती सुपीली झलकारी है ॥  
प्यारी बशोज पर कबुकी सुधारी क्षीनी प्यारे उर कबुक सुमोतिन की धारी है ॥  
प्यारी गले चन्द्रहार प्यारे गले मुक्तमाल अगद ओ पहुँची समुद्री नग जाती है ॥  
चन्द्रिका सिपैच पाग कानन मे कनकूल कुडल अलि अग्र हाथ आपने सुधारी है ॥

( ८१ )

करत कनेऊ मिनि दोउ प्यारे जनकनन्दनी अवध दुलारे ॥  
 वरफी मोदक तपत जलेबी खाझा पेवर अति रुचीकारे ॥  
 बीज पाक रसगुल्ला छुरमा मोहनभोग पूष रसदारे ॥  
 पूरी कचौरी मठरी पापरि गुनिया गोझा मिगरी डारे ॥  
 और अनेक भाति के व्यजन कनक कटोरन अग्र मुघारे ॥

( ८४ )

॥ राग मगल ॥

अग-अग करि शृगार सखिय सब साथ मे ।  
 पूजन चलि सिय सामु प्रेम रस राग मे ॥  
 पूजन के सब सौंज साजि लिये याल मे ।  
 गावति नृत्यत चली सखिय उमगात मे ॥  
 पहुँची सामु निवास अग छवि को कहै ।  
 कोटिन रमा प्रकाश सिया द्युति अग लहै ॥  
 देखि मासु अति प्रेम बातसल रस भरे ।  
 भरि अक्वार उठाय लइ निज हिय धरे ॥  
 मस्तक को करिघान बलैया लइ के ।  
 इक एक मुख छवि निरखि अपनपो मूलिवे ॥  
 सामु गोद ते उतरि सीय पूजन करी ।  
 पोड्य भाति विधान प्रेमरस मे भरी ॥  
 सामुन दई असीस बधू अनुदिन बढे ।  
 प्रीतमसग अनुराग कबहुँ छिन ना घटे ॥  
 गग जमुन नहि रहै अगत या ना रहै ।  
 अबल रहै अहिवात सिया पिया साथ है ॥  
 पूजन करि सिय सामु आइ निज महल में ।  
 प्रीतम करि आनिंग अग्र सिय टहल में ॥

( ८५ )

रघुवर मातु महल को जात ।  
 भरत लखन रिपुदवन साथ लिये और लखन के ब्रात ॥  
 कठ मुमग गजमुक्ता माला शिर पगिया झलकात ॥  
 नखशिख साज शृगार मनोहर सखन सग बतरात ॥

धनुष बान धर में सुठि सोहन अग लखि मदन सजान ।  
 मानु महल के पीरी पहुँचे तुरग उतरि चहुँ भ्रात ॥  
 मातु समीप बैठि अनुजन युत करि प्रनाम नमि गात ।  
 गोद बिठाइ सद् कौशिल्या मुख चूमत हरपात ॥  
 बालक वत करि करि के चेष्टा मातु गो हलरात ।  
 जननी देखि देखि मुख फूलें आनंद उर न अमात ॥  
 बहुत भौनि पक्वान मिठाई निज कर कमल खिलात ।  
 करि कनेउ अम्ना प्रनाम करि सग सखन सब भ्रात ॥  
 अप्रस्वामि निज महल पधारे प्यारि लपति भरि गात ।

( ८६ )

॥ राग ललित ॥

मुकुट उद्योत होत, दिन निशिनै, ब्रह्म काल नाहि पावत ब्रह्म बित ।  
 आतुर अमर अगमनै धावत, रामचरन बन्त निद्रागत ॥  
 उठि आवत जो जही तहीं से भोर भये हेलें परसन कौ ।  
 भ्रामक भोर भुली ऋषि सध्या त्वि वासी आये दशन कौ ॥  
 निबसत निकर असुर सुर नर मुनि कोट घोष जय घोष अपार ।  
 अग्रदास बलि पादपीठ पर बदी वेद करत कै बार ॥

( ८७ )

चञ्चल भारि तुम्हारी कीरति दशोनिशा को धावत ।  
 सुर नर असुर लोक लोकन मे रघुपति तुव यश गावत ॥  
 घर घर बार फिरति कुलटा ज्यो निकट नाहि सुचि पावत ॥  
 बिसर बिसाल जसहि विस्तारत यह अचरज मोहि आवत ।  
 पतिव्रत प्रण छोडे है जद्यपि सबही माहि मुहावत ॥  
 सतन जीवन मूरि मन्गही अग्रनाम जिय भावत ॥

( ८८ )

अकरन याय कियो यहि घाता ।  
 अति ही चतुर सृष्टि रचना को अस गोच समुझन अति घाता ॥  
 कणिपति रघुपति को जस सुनि के जोपै मूढ हुनावत ।  
 फूट जाय त्रह्माण्ड खण्ड सत्र बहुरि करत दुख पावत ॥  
 याने उरग श्रवण त्रिन गिरजे जगन भग डर आवै ॥  
 बिसर धुन थी अप्र स्वामि क कौन न ग्रीव हुनावै ॥

( ८६ )

चौसर खेलत रसिया लाला, प्यारी सग मुख आल ।  
 सारी फल जरिदार मन्वमली स्याम पीत सित लाल ॥  
 पासा हीरा के अनि मुदर युग दल सखि कर चाल ।  
 श्री प्रसाद प्यारी दिसि चातुरि चारुशिला उत बाल ॥  
 दम्पति टोल हूँ गहि गोटी कौतुक कर सिय लाल ।  
 चतुराई चित्त चोरत खेलत दोरु नैन बिसाल ॥  
 प्यारी हूँसि प्रीतम को हेरत कर से न पासा चाल ।  
 देखि लाल ठगवम से रहि गये कुच विच इन्द्र सुजाल ॥  
 भूलि गये चतुराई आपनि जीत लई सिय बाल ।  
 हारि लाल सिय अघर चूमि लई अग्र घूत बडे लाल ॥

( ९० )

कोर निशा की कहत केलि ।  
 गुरु जन मुनत सकुच सीता के भूषण चापि चून दइ मेलि ॥  
 डार्यो ब्याज बीज कल्यो भुजो तो बन्हीं जायो जा स्वाद ।  
 मुक सम्भ्रम म पर्यो विभापनि भूलि गयो पूरब अनुवाद ॥  
 नागरि नारि उक्ति यह उपजी वैदेही वर राज कुमारि ।  
 अग्रजली कह अचरज नाही सखी रीझि रहि बदन निहारि ॥

( ९१ )

जगत जपत रघुनाथ नाम सब राम जपत सीता को सुमिरन ।  
 रामचन्द्र को ध्यान घरत मुनि बसत जानकी रामचन्द्र मन ॥  
 शिव विरचि व धनुषधरन धन रघुवर के मैथिली महा धन ।  
 परमहंस कुल राम भजन भर अग्रस्वामि इक पत्नी को पन ॥

( ९२ )

॥ राग ललित ॥

यन्नाग्विन् पर बलि-बलि कियो प्यारी ।  
 कुं इदु विद्रुम जु विम्बमिलि मीन मृगलीन खजन धरि हारी ॥  
 नासिका कीर तिल पुहप दाडिम दसन हसन बिगसन कमल बहा करे सारी ।  
 भान दीपत मुकुट भौंह राजाव वर भृकुटि सर चाप मनमथ सत हारी ॥  
 चिरुक निभुवन चाफ मुमग मुकपोल तर, आनद क विधिना सँवारी ॥  
 राम मुमनै मधुबैन स्वामिनि अग्र जानकी नारि वर नृप दुलारी ।

( ६३ )

॥ राग छेटक ॥

देखु सखी मृगया खेलन को राम लला चले जात ।  
 भरत लखन रिपुमूढन सग मे सखन सोह बहु घात ॥  
 चतुरगिनी मेना सग लीहे दुदुभि ध्वनि घहरात ॥  
 नखशिख मुदर गात मनोहर लखि दुति काम लजात ॥  
 धनुष बान करम मुठि मुदर कटिभाया चमकात ॥  
 चपल तुरग नचावत हसि हसि सोभा बरनि न जात ॥  
 अग्र नयन सर नारिन बेघन लिये जात मन मात ॥

( ६४ )

रघुवर लागत है मोहि प्यारो ।  
 अबघपुरी सरसू तट बिहरें सरथ प्राण पियारो ॥  
 क्रीट मुकुट मकराकृत कुडल पीताम्बर पट वारो ॥  
 नयन विशाल माल मातिन की सखि तुम नेक निहारो ।  
 अग अग रूप अनूप बयो है चित्त मे टरत न टारो ॥  
 माधुरि मूरति निरखो सजनी वाटि भानु उजियारो ॥  
 जानकि नायक सब सुखदायक गुण गण रूप अपारो ॥  
 अग्रअली प्रभु की छवि निरखी जीवन प्राण हमारो ॥

( ६५ )

श्री राघो जी को आज सखी असवारी ।  
 दसरथ राजकुमार लाडिले सोभा यारी यारी ॥  
 सजे तुरग रग राजन क भीर गजेद्रन भारी ॥  
 जगमग झून जरी की सोहैं रतन जडाव अवारी ॥  
 घूम गरज सो भरत जी आय श्री रघुनाथ निहारी ।  
 होत कुलाहल लखन लाल क रिपु सूदन छवि यारी ॥  
 हरये देव सुमन बहु बरये जय जयकार उचारी ।  
 ब्रह्मादिक दशन को आये मोहत बन्न निहारी ॥  
 रवि ससि कोटि बन्न की सोभा चद्रकला उजियारी ।  
 अग्रअली प्रभु की छवि निरखे चरन कमल बलिहारी ॥

( ६६ )

अब देखो राम जी ध्वजा पहरानी ।  
 झलकत डाल फरकते नेजा गरन उड़ी असमानी ॥

लक्ष्मण वीर बालि सुत अगद हनुमान अगवानी ।  
 कहत मन्दोऽरि सुनु पिय रावण त्रिभुवनपति सै ठानी ॥  
 जा सागर को गभ करत है तापर सिला तराई ।  
 तिरिया जानि बुद्धि की ओछीं उनकी करत बडाई ॥  
 भुव मण्डल से पकरि मगैहौं ओ तपसी दोर भाई ।  
 हनुमान से पायक उनक लक्ष्मण से बलि भाई ॥  
 जरत अग्नि म बूदि परत हैं कोट गने नहिं खाई ।  
 मधनाद से पुत्र हमारे कुम्भकरण बलि भाई ।  
 एक बार सभुख होइ लरिहैं युग-युग होत बडाई ॥  
 कहति मन्दोऽरि सुनु पिय रावण तोहि मम एक न भाई ।  
 राति की सपना ऐसो भयो है सोने कि लक लुटाई ॥  
 बन्तर एक लक त्रिच आयो घर घर धूम मचाई ।  
 बाग उखारि समुद्र म डारे लका आगि लगाई ॥  
 गरवी रावण गरव न कोजे गर्वहिं लक लुटाई ।  
 बाय मिलो रघुनाथ कुवर से लक अचल हो जाई ॥  
 इक लख पूत सवा लख नाती भीत आपनी ठानी ।  
 अग्रस्वामि गढ लका घेरे अजहूँ न चेत्यो मानी ॥

( ६७ )

जब कर राघो जी बान धरेंगे ।  
 सग रघुनाथ भीर बनवर के कपिदल बोपि चढेंगे ॥  
 स्वाम घटा घन झुकि अधियारी सूरज गगन छिपेंगे ।  
 पचरग बाण राम लक्ष्मण के सागर तीर रूपेंगे ॥  
 जा सागर को गभ करत है तापर सतु बघेंगे ।  
 जामबन्त हनुमान नील नल महाधुनि गर्ज करेंगे ॥  
 रात भयानक सपना दखी लका कोट लुटेंगे ।  
 नाम विभीषण बधु तुम्हारे रघुपति जाय मिलेंगे ॥  
 मधनाद स पुत्र तुम्हारे वे नहिं धीर धरेंगे ।  
 कुम्भकरण बल बधु तुम्हारे रण म जूझ मरेंगे ॥  
 महिरावण से जोधा मरिहैं लका नास करेंगे ।  
 सहस योगिनी मगत गावें सप्पर बारि भरेंगे ॥  
 दशशिर और बीस भुज तुम्हारे एकहिं बाण हुरेंगे ।  
 जो नारद मुनि मुखत मापी भारत राम करेंगे ॥

कहत मन्त्रोरि मुनु पिय रावण रघुवर नाहि फिरेंगे ॥  
अग्र स्वामि को ले मिलो जानकि किहु विधि बिध टरेंगे ॥

( ६८ )

हे ! मान चहें रघुनन्दन भाये हनुमत चवर डुरापारी ।  
जामधन्त सुप्रोव विभीषण अरु अंगन मन भायोरी ॥  
करत पुनीत देव सग हरपे दण्डक बन प्रभु आयोरी ।  
देखि सिया दण्डक बन शोभा ऋषि विचरें भय त्यागोरी ॥  
चरित पुनीत किये रघुनन्दन अवध निवट हरि आयोरी ।  
उतरे पुण्यक निकट सरयू क रघुपति आज्ञा पायोरी ॥  
चलत तृपित अति गये सकुच मानो मरुत जनन जल लायोरी ।  
व्याकुल अथ अवध जेहि कारण उन्ति अरुण होइ आयोरी ॥  
होन अवध आनन्द बघाई सखियन मगल गायोरी ।  
सुख अवलोकि कोक जिहि लाजे रघुपति पुरी सुहायोरी ॥  
चर अरु अचर हर्षवत जह तह रघुपति कीरति गायोरी ।  
द्विजन सहित आय नृप द्वारे अग्रदास गुण गायोरी ॥

( ६९ )

सीताराम अवधपुर बासी नित दरसन उठि पावें जी ।  
रघुवर लक्ष्मण भरत सत्रुहन शोभा वरणि न जावें जी ॥  
सग सखा सरयू तट बिहरें राम लखन दोउ भाई जी ।  
सुन्दर बदन कमल दल लोचन उर बनमाल सुहाई जी ॥  
अवधपुरी नर नारी निहार निरखि परम सुख पाई जी ।  
मातु कौसिन्हा करत आरती अग्रदास बलिजाई जी ॥

( १०० )

(आवत) रघुनाथ अनुज सग लीहे, खेल किय चौगाने ।  
अस्व सुगज रथपागे, बने विचित्रै वागे,  
अरुण पीत सित चवर छत्र वर बाने ॥ खेल० ॥  
राज कुमारी अति सुकुमारी क्षरोत्तन क्षाकति विविध—  
मनोरथ ठानति, करत नयन मधु पाने ॥ खेल० ॥  
कोउ वारत तन, कोउ वारत मन, कोउ वारत धन  
निरखि नयन छवि, पुष्पाजलि बरपाने ॥ खेल० ॥  
मगल भाजन लै नीराजन, सब सुखसाजन प्राण  
मिले जनु, जननि निरखि मन माने ॥ खेल० ॥

कियो प्रवेश सदन सीता के कलपवेलि तह रग  
मीता के, अनग केलि रस रहस अग्र गुण गावै ॥ खेल० ॥

( १०१ )

करि शिकार आये रघुनन्दन संग सखन सब भ्रात ।  
पितु समीप मे जाय जुहारे सुत लखि अति हुलसात ॥  
निज कर कमल उठाय गोठ धरि चूमत लखि भय गात ।  
अति दुलार से पूछत पुनि पुनि खेटक के कुसलात ॥  
कहि सुनाय खेटक की बातें सुनि सुनि पितु पुलकात ।  
पितु प्रणाम करि निज बैठक मे आय गये रसरात ॥  
रतन जडे चौकी पर बैठे बैठक मे सब साथ ।  
अम सीकर मुख पर राजत जनु कमल कोप हिम पात ॥  
चहु निसि सगवासोज सब लीहैं सब सुन्दर सुठि गात ।  
कोठ मुख ऊपर मधुर पवन करि निरखि-निरति बलि जात ॥  
बहु मवा पकवान मिठाई सुरभी जल सितलात ।  
भरि भरि धारन मे सजि सजि के अन्न भोजि बहुभाति ॥  
भ्रात सखन युत पावन लागे हसि हसि बहु बतरात ।  
एक एक सखन से बूझत प्यारे घर घर क सब बात ॥  
करि भोजन अचवन को करि के पानखात म्रसुकात ।  
गान वाद्य होवन लागे पुनि आनद काहि नहि जात ॥  
पुनि प्यारी सुमरन हो आई मिलन हिये उमडात ।  
गान वाद्य वा करि समाप्त पिय शीघ्र चले अनुलात ॥  
अग्र स्वामिनी स मिल के हिय अति फीही सितलात ॥

( १०२ )

रघुनन्दन प्रभु आवैं ।  
उपवन बाग शिकार खेलि के बडे तुरग नचावैं ॥  
ब्राट मुकुट मकराहत कुडल उर मणिमाल सुहावै ।  
कटि पर लट पट पीत धिराजै कर गहि बाजि उडावै ॥  
चतुरगी सेना संग सोहति पधरगधुज पहरावै ।  
बजत निसान भेरि सहनाई गदरा गगन महुँ जावै ॥  
बन्दीजन गधर्व गुण गावत भावत प्रभुहि रिझावै ।  
सुरनर मुनि ब्रह्मादि देवता इन्द्र पुहुप क्षरि लावै ॥



अवधपुरी कि बधूटी अटा चडि निरखि परम सुख पावै ।  
मातु कौसिला करत जारती अग्र अली बलि जावै ॥

( १०३ )

॥ राग—टोडी ॥

देष्टुरी नौके रघुनन्दन ।

सीता कहति सखी अपनी सो रसिक राय सिर मोर स्याम तन ॥

दृष्टि चलत नहि इत उत सजना रूप रासि सो मोमन फन्दन ।

अग्र स्वामि मो मोह बढयो अति ज्यों चकोर चन्दहि अभिनन्दन ॥

( १०४ )

प्रीतम मग जोहनि मिय प्यारी ।

कनक महल क खिरकी पर हूवै सखियन युत निरखति सुकुमारी ॥

रहि न जात प्रीतम बिनु देखे गुणन सुमिरि मिय बिरह निवारी ।

झिन छिन बिरह के उठत सुमारी विकल प्राण मनु मोन विचारी ॥

कोइ सखि कहि मिय आवत हैं यह आतुर हूवै तिहि ओर निहारी ।

तेहि छिन प्रीतम आय अग्रअलि भरि अक्बार मिली मिय प्यारी ॥

( १०५ )

जेंवत कुबर रसिक रघुनन्दन रस आगरि नागरि मिय प्यारी ।

छपन चार छऊ रस उपरस भोग सौंज सुखकारी ॥

चितामणि चौकिन पर कोमल दुग्ध फेन सम सारी ।

निन ऊनर रुचि जानि युगल की रचना यारी न्यारी ॥

पल्लव फल (रसमय) अकुर कदावलि मेवा मधुर सुषारी ।

चटनी निकर अचार मुरब्बा अमित भाँति तरकारी ॥

परमति परम किसोर नागरी जानि युगन रिखवारी ॥

सुरभिवन्त सीतल सरयू जल मन्त्रित मगन क्षारी ।

रस भीनी बतियन निरमावति प्यावनि निजकर बारी ॥

अचल विजय कमल कर सारति अति मृदु मनु बयारी ।

दम्पति एक थार निज मंदिर जेंवत मोर क मृदुभाय ॥

अग्रअली क जीवन दाऊ वृण सोरति बनिहारी ॥

( १०६ )

रसिक दाउ रायन मृदु का खात ।

भोजन करि मुधि पान मुचिचि मद मद मुमुकाउ ॥

आग पास सब महधरि राजें सुभग मनोहर गाउ ।

पहुँचे सयन महल के भीतर सोभा बरनि न जान ।  
 अति सुगन्ध चहुँनिमि मह महकत भवर झुड मडरात ।  
 बैठे पलका पर दोउ प्यारे करत व्याग रम बात ।  
 कोइ सखि मधुरे बीन बजावत गान करत स्वरसात ।  
 पुनि दोउ मिलि अलसान लगे सखि परदा करि चहुँ कात ॥  
 पौढि गये जब दोउ पलका पर अग्र चरण सुहरात ॥

( १०७ )

देहरी धसत जब जेहरी देखि मन डगि गयो उठी उरलाई ।  
 अति आदर सो भरि अकवारी प्राणनाथ पलका पधराई ॥  
 आगत स्वागत बारि बारि तन बीरि सुहाय बनाइ खवाई ।  
 बार बार आलिंगन चुम्बन मनहु रक निधि पारस पाई ॥  
 वचनामृत सो सीचि विविध विधि जनक कुवरि रघुराइ लडाई ।  
 जालरध्र या निरखि अग्र अति कामनेलि सुख बरनि न जाई ॥

( १०८ )

दिवस मधि सोइ उठे सिय प्यारे ।  
 उपापन के समय समुक्षि सखि चहुँ दिसि ते छुरि सारे ॥  
 मधुर स्वरन गावत सुरसावत मधुर यत्र करधारे ।  
 अलसाने उठि बैठि लटपटे असमुजा दोउ धारे ॥  
 अग बसन सजि सेज तरे पग पाँवडि मखमल धारे ।  
 मुखमञ्जति पटपौछि शृंगारति अलक मुद्यति घुघवारे ॥  
 असन बसन भूपन मनिवारे आरति पलग सुधार ।  
 न्यौछावरि तृण तारि आरती करत सुगान उचारे ॥  
 करि आरती प्रणाम अग्र दोउ दम्पति जैति उचार ।  
 उतरि पलग ते बाहर बैठे निव्य सिंहासन प्यारे ॥

( १०९ )

दिवस उठि सेज रहू अलसाय ।  
 आरति करि पुनि उतरि पलंगन निव्य सिंहासन आय ॥  
 मनिझारी अँचवाय सखी सब निज अचल अगुदाय ।  
 रतन कटोरन मेवा मादक निज कर प्रियन पवाय ॥  
 मिश्रित कण अधावट पय सुरभित सखिझारि पिवाय ।  
 अचवावति हमि हेरि कटापन मुद्यवि निरखि वनि जाय ॥  
 अतर पान माला उर अरुझनि अग्र सुकर मुरझाय ॥

( ११० )

बाग बिहार

बाग बिहार करन चले प्यारे ।

श्री नृपनन्दन जनकन दना रूप गुणन म दोउ उजियारे ॥  
 सखियन करि शृंगार अग-अग पुनि पिय प्यारा के शृंगारे ॥  
 यूथ यूथ सखि चला सग मे ह्वै गज रथ ऊर असवारे ।  
 कोउसखि मिरपरछत्र किये है सभ्रचँवर कोउ लिये करधारे ॥  
 अपर सखी लिये बहुत सौंज कर पहुँचे जाय बाग के द्वारे ।  
 सखियन युत गज रथते उतरे बागेश्वरि मुनि दौरि सिधारे ॥  
 यूथ अनेक सग सखियन लिये पूजन के सामा करधारे ॥  
 पट पाँवडे दे भीतर ले गई रतन वेणिका पै बैठारे ।  
 घूप दीप आणिक विधि करिके सखियन युत पूजे दोउ प्यार ।  
 पुनि दोउ चले बाग बिहारन कौं रोसन पर दोउ किरत खिलारे ।  
 कहूँ दोउ पुष्प उतारि कमल कर धाक धाक धरि न्यारे प्यार ॥  
 रचि रचि भूषण विविध रग के निज निज चतुराई बिस्तारे ।  
 प्यारी पहिरावनि प्यारे को प्यारे प्यारी के अणधारे ॥  
 मोर हंस मुक सारि पदावत मृगी क्षुण्ड रस चरित अपारे ।  
 कुजन मधि कहूँ छूट पुहारे प्रीपम पावस सम सुखसारे ॥  
 कुजेश्वरि फल डेर दिखाई पावन प्रेम अपार ।  
 फल रूपक हसि अग बखानत लपटी थपटि कहूँ कुजनिहारे ॥  
 कहूँ पूजन के गँद उछारत कहूँ जलकलि करै मतवारे ।  
 विविध बिहार बाग बन कुजन करि पुनि अग्र महल पग धार ॥

( १११ )

हम महल क सुभग कुज में प्रिया प्रेम लम्पट सुकुमारे ।  
 कबहूँ इकटक मुखछवि निरखत भ्रमसीकर लखि करत बयारे ॥  
 कबहूँ निजकर अलख सवारत अधर चूमि अतिहोग सुखारे ।  
 कबहूँ निजकर चरण कमल सेइ मुख निरखत तामै ह सि प्यारे ॥  
 निज करतल पर राखि प्यारि पद जावक चित्रको करत बिचारे ।  
 निजकर कमल कठोर समुधि जिय घर घर धरवत हिय भयमार ॥  
 अस न होय प्यारी के पद तल दरकि जाय लगि हाथ हमारे ।  
 चूमि चूमि निज नयन लगावत डरि डरि चित्रमहावर धारे ॥  
 रूप दसि निज दृष्टि लगन डर बारि बारि जल पियत दुवारे ।

दृष्टिदोष अपने पर लेके बारम्बार होत बलि हारे ॥  
 कबहूँ पुष्पबिभूषन रचि-रचि पिय प्यारी अग करत शृंगारे ।  
 प्रिया रूप मे अति असक्त हूँ हान चहत नहि पलकहु यारे ॥  
 समय जानि गुरु नारिन आवन अति क्लेश युत दुरत दुखारे ।  
 प्रिया प्रेम परतत्र स्वामिलखि अग्र अली तन मन धन बारे ॥

( ११२ )

जय जय रघुनन्दन चन्द्र रसिव राज प्यारे ।  
 अग अग छवि अनग कोटि बारि डारे ॥  
 बिहरत नित सरयु तीर सग सोहैं सखिन भोर,  
 सिया अस भुजा मेलि अवध के दुलारे ।  
 कोई सखि छत्र लिये व्यजन लिये कोई,  
 युगल सखी चवर लिये करत प्राण वारे ॥  
 सुन्दर सुकुमार गात पुष्पमाल सकुच जात,  
 परसत भयभीत हात रूप के उज्यारे ॥  
 नख सिख भूषण अनूप यथा योग यथा रूप,  
 कोटि चन्द्र कोटि भानु निरखन दुति हारे ।  
 मन्द मन्द मुसुकुरात प्यारी सग करत बात,  
 देख देखि अग्र अली तन मन धन वार ॥

( ११३ )

सखिन बिच नृत्यत युगल किशोर ।  
 बिपिन प्रमोद सरोजा तट पर दिव्य भूमि चमकत चहुँ आर ॥  
 चक्राकार राम मण्डल रचि राग रागिणी के कलसोर ।  
 निमला चन्द्रकलादि रंगीली बीण मृदग लिय करघोर ॥  
 चारुशिला, सुभगा हेमा लिये मुरलि मुचग फितरी जोर ।  
 चन्द्रा चन्द्रवती मिलि गावति क्षेमा स्वरहि भरत रसबोर ॥  
 मन्म कला करताल बजावति सारंगी नदा टकोर ।  
 पियसिर सुभग सुन्नोट बिराजै चन्द्रिका सोता के सिर रोर ॥  
 चन्द्रहार प्यारी उर चमकत पिय उर मोतिन माल उजोर ।  
 कोटि कोटि रति काम बिमोहन नटवर यष श्याम जरु गोर ॥  
 रूप माधुरी कहि न परत हैं अग अग छवि के उठन हिलोर ।  
 कर से कर दाऊ मिलि घारे नयनन सैन चलत दुहैं ओर ॥  
 कबहूँ अघर रस पियत परसपर रस मतवारे दोउ चितबोर ॥

प्यारी हाव पियामन करपत पिय के भाव प्यारी निज ओर ।  
दोउ रमसिधु मगन रम लम्पट अग्रअली नहिं चाहत भार ॥

( ११४ )

प्यारी तेरे नयना मदनसर वारी ।

रतनारी कारी कजरारी चंद्र बदन पर अनि छवि धारी ॥  
चितवनि बाकी तिरछी प्यारी ममहिय को घायल करि डारी ।  
मीन बभल खजनदुनि हारी सब विधि प्राण अधार हमारी ॥  
हसनि नटनि अरु अग मरोरनि देखि देखि म जाउ बलिहारी ।  
रूप उजागरि अग्र नियन मैं ही तुम श्री मिथिलेस दुलारी ॥

( ११५ )

प्यारे मुखचन्द विलोकहु सजनी ।

क्रीट मुकुट मकराटुत कुडल नयन कमल दल अनि छवि छवनी ॥  
नासामणि सु अधर पर राजत मनहुँ कमल दल शुक्र उदधनी ।  
कल कपोल पर अलखेँ दूटें चन् उपर मनु बसि बहु अहिनी ॥  
कटि कछ्छनी काठे बने आछे पग मे नूपुर अति मन हरनी ।  
मुरनि दुरनि अरु हसनि नटनि मे कोटिन काम करो निबछवनी ॥  
रूप उजागर अग्र स्वामि मेरे मम हिय के है प्राण सुजिवनी ॥

( ११६ )

आकरप्यो जह तह नर नारी ।

सब सखियन मन पिय अग धारी करो मनोरथ रुचि अनुमारी ॥  
सबक रुचि लखि कं सिय श्रीतम धारयो बहुत रूप मनहारी ।  
जस जस जाहि मनोरथ रहेऊ तस तस करि सब कियो सुखारी ॥  
अस्थावर जगम जो जह लौं आनन्द मुरछा म नर नारी ।  
अद्भुत रास रच्यो पिय प्यारी सग सखिन लिय अग्र दुलारी ॥

( ११७ )

रसिक दोऊ सरयू कूल चल ।

रास श्रमित हूँ सग सखिन लै दम्पति दियभुजगल ॥  
करन लगे जल कनि विविध विधि दोउ रमरग रले ।  
प्रीतम हूवि प्रिया पद गहिके ऐचि लेत जल तले ॥  
प्यारी कर कमलन ताडन करि जल पिय आवि मले ।  
प्रीतम के गति भूलि गये सब दोउ कर आखि मले ॥  
वाटू के कटि बसन छोडि पिय तट पर आय चल ।

बहु सखि ने अति लाज अमित हूँ जल से नहीं निकले ।  
 पुनि सिय जू पिय मे पट लैके दइ सखि हाथ तले ।  
 करि जलकेलि प्रिया प्रीतम दौड जल मे आय घने ।  
 करि शृगार अग्र सखियन युत आय गये महले ॥

( ११८ )

श्री सरयू तट बन असोक मधि राम रच्यो श्री अवधि त्रिहारी ।  
 चहुँ निंसि मणिमय कोट विराजे मध्य कुज बहु यारी न्यारी ॥  
 ताके चहुँनिंसि पाल्प राजें श्री मम्पनि युत अति रचिकारी ।  
 ता आगे बहु ताता कुज हैं जाति-जाति के यारी यारी ॥  
 ताके चहुँ निंसि वृत्रिम पाल्प जाति जाति मणि के छबिकारी ।  
 ताके चहुँ निंसि मोतिन शालर मय मे रचना बहुत प्रनारी ॥  
 मध्यभूमि बहु रग मणिन के वेली बूटी विविधि प्रकारी ।  
 तापर जाजिम भ्वेन त्रिद हैं चन्द्रकिरनि के अनि छबिहारी ॥  
 तामधि सिंहासन अतिमुदर स्वैत मणिनमय अनि सुठिकारी ।  
 तापर बैठे युगलविहारी श्री नृपनन्दन जनक दुचारी ॥  
 गौरम्याम छत्रि को कवि वरणै कोटिकाम रतिदुति लखिहारी ।  
 प्यारी के तन सुभ्र सुसारी प्यार अग जामा शलकारी ॥  
 प्यारे उर मोतिन की माना चद्र हार सोहर उर प्यारी ।  
 कठ पोन प्यारी गल राजत पिय गल गोल गोप विचित्र सवारी ॥  
 वाहुन म अगद सुठि सोहैं कर मे पहुँची अति दुति कारी ।  
 कणपूत्र प्यारी श्रुति शोभित पिय श्रुति कुण्डल मकराकारी ॥  
 प्यारी के शिर मणिन चन्द्रिका पिय सिर क्रीन भानुमदहारी ।  
 विमलाश्रि मखि चहुँ निंसि सोहैं मध्य नटन लागे पिय प्यारी ॥  
 कोइ सखि वीण भुचग काहुँ लिये जनज तूमेरा कोइ कोइ धारी ।  
 बहुत सखी लिये उहुत यत्र है धेइ धेइ कर नाचत बहु नारी ॥  
 पम धम नूपुर चरनन बाजै मनुमोहनी मय ध्वनि कारी ।  
 गावति स्रव रागन रागिनि मे म्भर सुनि इद्र वधू मनहारी ॥  
 जय प्यारी प्रीतम मिलि गानत तायेइ तायेइ औरन प्यारी ।  
 स्वगमात पाताल व्यापि गयो परमानन् बहुो पीनारी ॥  
 मन्ाराम सब निंसि म छायो आकरप्यो जहू तहू नर नारी ।  
 मय सखियन मन गिय अगधारी करा मनोरथ रुचि अगुमारी ॥  
 सब के रुचि लखि के प्रिया प्रीतम धारयो बहुत रूप मनहारी ।

जस जस जाहि मनोरथ रहेउ तस तस करि सब किये सुखारी ॥  
अस्थावर जगम जो जहलो आनद मुरछा में नरनारी ।  
अद्भुत रास रच्यो पिय प्यारी सग सखिन लिये अग्र दुलारी ॥

( ११६ )

रठो जी राम गुशाइ भले भले ।  
पायो राजपाट दसरथ फो गहि लीनी ठकुराई ॥  
जाय कहूँ मिथिलेस ललोजु से निकस जाय गुमराई ॥  
अग्रअली के सिर पर चहिये श्री सिरध्वज की दाई ॥

( १२० )

प्रभु जी हमको आज्ञा दीजे ।  
यन पूर भयो पुण्य तुम्हारो नृप को दशन कीजे ॥  
सुनहु आज मिथिला पुर तें इक आयो है परचारी ।  
सीय स्वयंबर अखिलनरेश्वर कौतुक ह्वै है भारी ॥  
पगति रथ ऐहैं पुनि बहु तह ह व है बडो समाज ।  
अग्र स्वामि दोउ हसत कुँवर घर सग चले ऋषि राज ॥

( १२१ )

सखि में सपनो सुन्दर पाया ।  
इन्दु बदन राजिव दल लोचन गाधि सुवन सग आयो ॥  
स्याम करन तन कोटि भानु दुति मोभा सब जग छायो ।  
मोच भयो मिथिलापुर वासी मो मन अधिक मिरायो ॥  
रघुकुल कुवर अयोध्या नायक भुजबल धनुष चढायो ।  
नृप सब सभा ठगो सी ठगो गबिन गम नसायो ॥  
पूरन भयो पिता प्रणमय सखि सब सदेह नसायो ।  
अग्र स्वामि अरविद धधु उरै मिलिहैं पति मन भायो ।

( १२२ )

येरो मैं हूँगी अनुरागि चरण की ।  
अकुश कुलिश कमल ध्वज चिह्नित, अग्न वरण अध निमिर हरण की ॥  
जो पद परमि सरस दुरलभ गति होत भई ऋषिराज धरणि की ।  
नूपुर नन्दन मदन मुनि लज्जित राजत जीवन रसिक जनन की ॥  
अग्र अली मोइ गुभग सरोरुह नखत कान्ति मणि माणिक वरन की ॥

( १२३ )

सौमित्री कहे सुनहु श्यामघन हैं जानत वैदेही को पन ।  
 राजन की यह नीति बाम बहु दासन लिखि नहि आवै ॥  
 यह डर निडर जानकी रघुपति रामहि हृद बसावै ।  
 राजिव नेन अनुज के बैन मुनि ताको यश सब जायो ॥  
 यक पतनीव्रत लियो रीति के अग्र भूमि परिपायो ॥

( १२५ )

॥ राग सारंग ॥

जब रघुपति कर घनुप उठायो ।  
 पुलकत तन रोमाच गाधिमुत्त पुरति प्रेम भरि आयो ॥  
 वो बड नमित न मुग भूपति कर जानकि मन तरगायो ।  
 तोरयो चाप सभा म निहि भिणि संशय सबै नसायो ॥  
 भगन शब्द मुनि जामन्नि मन अहकार सुवहायो ।  
 तोपे अमर अवनि जनु फनिपति अग्रदास मन भायो ॥

( १२५ )

मगल आज जनकपुर माही ।  
 पाणिग्रहण सीता रघुपति को नरनारी सब फिरत उछाही ॥  
 मण्डित द्वार चौहटा वीथिन दिव्य दुकूलनि घाम उद्वारैं ।  
 अति आतुर पग लागत न अवनो कहैं गज कहैरय अरव शृंगारैं ॥  
 सीस सेहरो रामचन्द्र के अगवानी करि तोरन लाये ।  
 सम पुहुप मुक्ता ले गोखनि नवल बधू अजनि बरपाये ॥  
 मण्डप तर बैठाप पटा दोउ वेद विहित सब कम कराये ।  
 साबोच्चार दुहैं कुलगुरु करि कुवरि कुँवर को हाथ गहाये ॥  
 उत्तरासन की प्रथि परस्पर हृढ वचननि वार्में अग लीही ।  
 आगे प्यारी पीछे प्रीतम जातवे कल भाँवरि दीन्ही ॥  
 भूरि दान द तोपि सकल सुर दुलहिनि सग भीतर बैठाने ।  
 परदा ओट समागम पहिलो अग्रदास दासी सुख जाने ॥

( १२६ )

हिम श्रुनु हम गम मनि को है ।  
 चौमखाप मखमल गिलमह पर सिय पिय परिकर सोहै ॥  
 ले कोउ बीण प्रवीण सहचरी राग तरंग उमगो है ।  
 अग्र स्वामि सुखनिधि सीता पति रमि रमाय मन मोहै ॥



( १२७ )

आज बसत पचमी पूजा श्रीरघुवर की वधाई ।  
 कनक कलस सजि भरि घरि सिर पर आम मोर जब ल्याई ॥  
 चोवा चन्न ओर अरगजा मोनिपन चौक पुराई ।  
 रतन जन्ति पिचकारो कर गहि बेसरि रग भराई ॥  
 तकि तकि भारत श्री रघुवर को अत्रि गुमाल उडाई ।  
 श्री रघुवर सिंहासन बैठे निरखि निरखि सुखपाई ॥  
 छोडव छिरकव भरव परस्पर ऐसी खेल मचाई ।  
 नवल बसन्त नरल मोरन बन नवल नवल मन भाई ॥  
 अप्रत्यास गावाहि श्रीरघुवर फगुआ परम्पद पाई ।

( १२८ )

डफ बाजी जनक दुनारी की ।  
 चहुँ निसि सखी जडाउ छनी निये त्रिपचकारी कर अवघ बिहारी की ॥  
 मारामार मचो कुजन मे, छाडि जत्रि अधियारी की ।  
 यह छवि देखि मगत मुर मुनि भये अप्रअली बलिहारी की ॥

( १२९ )

जानकी खेलन हारी पिय सग चली ।  
 अपने अपने भवन मे निकली उर सौहे चम्पाकली ॥  
 श्रुति कीरति उर्मिला माण्डवी चारा जनक लली ।  
 राम लखन रिपुवन भरन की जोरो बनि हैं भली ॥  
 सिय ब्रु बे छूटि गुलाल मूठि भरि राघो के पिचका चली ।  
 रमकि झमकि पिय के समुल होइ मुख भरि रोरि मली ॥  
 दुहुँ दिसि ते रग बर्पन लागे कुम्कुम छाडि गली ।  
 राजा दसरथ कीसल्या शरोवन ह्य सुख लेत मली ॥  
 सीताराम विनोद फाग म बलि बलि अप्रअली ॥

( १३० )

सीताराम विनोद फाग की निरखि सखी बलिहारी ।  
 जग भूषण निदूषण जोडी राजन अवघ बिहारी ॥  
 मुन्दर वर रघुवीर धीर अति शोभानिधि सुकुमारी ।  
 चाकशिला त्रिमलादि अली गन मध्य सीय छवि धारी ॥  
 श्रुति कीरति उर्मिला माण्डवी यूथ यूथ लिय प्यारी ।  
 अपनी अपनी टोल खडा सब रगन साज मन्हारी ॥

प्रीतम स्याम सृजान सग लिय सखा समाज सुघारी ॥  
 खेलत रग उमग अग अग हार जीत चित घारी ॥  
 चचल चपल चहूँ तिसि सखिगन मखा स्याम दिय गारी ।  
 घूम मची खेलन मे सो छवि कहि बहि सारन हारी ।  
 अग्रजली उर बसो अहोनिमि सील सरामन घारी ॥

( १३१ )

मोपे पिचकारी न धालो छयल  
 जो हमपर चिकारी घाबिही तो तुम्हें लै भिजाउगी पहल ।  
 श्री जनकलली जु कि आपसु लैके आउ इतै रहौ ठाढे गयल ।  
 अग्र जली रघुन दन प्यार खूँ मैं आज तुम्हारो फयल ॥

( १३२ )

चले दोउ झूलन को हुलसान ।  
 पिय प्यारी के नित्य झुलन है नहि कछु काल प्रमान ॥  
 पाय प्रदोष काल सखियन सग गान तान क्षमकान ।  
 पहुँचे झूलन कुज सुहावन पूली विविध लतान ॥  
 मोरन के यूँ बहु विचरें नाचत पख फुनान ।  
 जानि जाति के पत्नी बोलैं भरि रह शन तिसान ॥  
 चहुँतिसि मनिमय महल बिराजैं मध्य विचित्र वितान ।  
 तामधि गुन्दर परधो हिडोला भोतिन के लहरान ॥  
 तापर बैठे दियगल बाही प्यारी पिय रस दान ।  
 नाना यत्र लिये सगि गावति लेत सुरीली तान ॥  
 गेउ तिसिते सखि झुलवन लागी छवि लखि हिय उमडान ॥  
 दोउ मिलि झूलत हैं रसमात अग्र निरखि बलि जान ॥  
 करि झूलन रससिधु मगन दोउ चले ब्यारि अस्थान ॥

( १३३ )

हिचोले झूलत सिय महरानी ।  
 श्रुति कौरति उमिला माण्डवी चारसिला गुणखानी ।  
 ख्यो हिडोरा नाम निवावति चनुर मखी मुमुकानी ॥  
 सिधा जू सकुचि रहौ नहि बोलति अग्रजली मनभानी ॥

( १३४ )

झूलत सीनाराम हिडोरे ।  
 स्याम गौर अभिराम मनोहर रतिपति के चितचोरे ॥

नील पीत वर बसन लभत तन उठत सुगंध शकोरे ।  
 सहचरि हरपि झुलावनि गावति छत्रि निरखत तृण तोरे ।  
 मन्द मन् मुसुकात छबीलो रमकत घोरे घोरे ।  
 अति सुकुमारि अग्र की स्वामिनि डरपि गहति पट छोरे ।

( १३५ )

झूलत राम राजिव नैन ।  
 जनकजा सनमुख तिराजति तडित ज्यों घन गैन ॥  
 अतिहि झूलत मनहि फूलत रहसि तोपत मैन ।  
 लाल के उर लागि शोभा निरखि करपत ऐन ॥  
 परसपर अनुराग दोऊ बढत मधुरे बैन ।  
 जाल रघनि निरखि बनिता अग्र उर सुपनैन ॥

( १३६ )

झूलत सिया राजिव नैन ।  
 रतन जडित हिंरोलना सखि राम मुख के ऐन ॥  
 स्याम जग पर गौर झलकत दागिनी घन गैन ।  
 मैथिली रघुबीर शोभा निरखि लाजत मैन ॥  
 नाम पिय को लेहु नागरि सब सखिन मन चैन ।  
 जानकी नाहि लेत मुख सो देति लोचन सैन ॥  
 परसपर झूलत झुलावत बढत मधुरे बैन ।  
 अवधपुर नित कलि दम्पति अग्र आनद देन ॥

( १३७ )

हिंरोलना मे काई झूलो राम सिया प्यारी सुकुमारी ।  
 अगर चान्त को बनो हिंडोरा मलयागिरि को पटा ।  
 रेसम डोरि पवन पुरवइया वह सावन को घटा ॥  
 प्यारी झूलै लाल झुलावै भनी बनी सजनी ।  
 उडि उडि अचरा परत भुजनि पर डरपत शशिवदनी ।  
 विपिन प्रमोद लता कुजन म श्री सरयु के तटा ।  
 सिय प्यारी क झूलना बे निरखति अग्र छटा ॥

( १३८ )

दमरप सुत अरु जनकनदनी चितवनि मे चित चोरे री ।  
 नाहि नाहि बुद पवन पुरवैया बरपत घोरे घोरे री ।

हरि हरि भूमि घटा झुकि आई मूय लेत हिलोरे री ।  
 उपवन बाग विहगम वोलैं दादुर मोर चकोरे री ।  
 ह्यल पयदल गजदल रयदल कोटि बने चहुँओरे री ।  
 वाजत ताल मृग्य झाँझ ड्य सखन की धनघोरे री ॥  
 नागरि नाम लिखावे पिय को सियजू हँसि मुख मोरे री ।  
 अग्रदाम हरि रूप निहारे चरण कमल बलिहारै री ॥

( १३६ )

चले दोउ ब्यारू कुज अली ।  
 करि बिहार झूला क दम्पति रघुवर जनकनानी ॥  
 रतन जडित सिबिका अति सुन्दर तापर लाल लली ॥  
 चहुँ निमि सखियन सौंज निचे हैं नाना रग रली ॥  
 पहुँचे ध्यारी कुज सुभग जहा मध्य सुरतन थली ॥  
 करि ममान मन्वी कुजेस्वरी आनन्द भरि उछली ॥  
 वैठाई रतनन चौकी पर पूजन करि मुभली ।  
 नाना विजन कनकधारन मे अग्र धरी रसली ॥

( १४० )

सभी सब मैन भोग ले आई ।  
 मेवा मिथी दूध मलाई और अनेक मिठाई ॥  
 मुरभीयुत विजन बहुतेरे धारन भरी सुहाई ॥  
 पान पत्तारथ मुचि मुगधमय बहु औषधन मिलाई ॥  
 पावत तुष्ट पुष्ट होइ जावे रास जनित अमहाई ॥  
 चपकन में भरि धरि आगे में दम्पति के मन भाई ॥  
 पावन लगे रसिक दोउ प्यारे करि-करि विजन बढाई ॥  
 हसत हँसावत मखिन पदावति वातन मे विरमाई ॥  
 करि भोजन अचवन पुनि करि के पान पाइ मुमुकाई ।  
 मैन आरती अग्र करी जय पौढे पलग मुहाई ॥

( १४१ )

ध्यारू करत मुगल रम भीने ।  
 रचि रचि विजन सखिया परोसे बहुत प्रकार नाम को गीने ॥  
 हमि हगि पावत हैं पिय प्यारी रूप भाधुरी सखि चित दीने ।  
 प्यार नित्र कर कमल कबल सँ प्यारी मुख म देत प्रवीन ॥



( १४६ )

मोये सेज प्रिया प्रीतम दोउ अतिसय करि निद्रा आधीन ।  
 पणकमद कचुकी सिया उर तामे भँवर भयो इकलीन ॥  
 वास लुब्ध को शब्द श्रवण सुनि सभ्रम राम विलोकत वाम ।  
 रही पुष्प अवशेष हृदै म सायक सपत्नि मारि गया काम ॥  
 प्रेम विकल परतीत न मानत बैन्हेही हित पावत खेद ।  
 अग्रम्बामि आधीन प्रिया के मिथ्या दु ख आयो तन स्वेद ॥

( १४७ )

चलो सखि सो गये राज किशोर ।  
 मणिन जडित का पलग मनोहर ताक छुवि अति जोर ।  
 मिलि सखियन सब चरन पलोटत रस बस पिय धनधोर ॥  
 चौकीवाली सजग होइ रहियो लागे न कहूँ दग चोर ।  
 नूपुर दावि चलो मोरि सजनी होय न जेहि पग सोर ॥  
 सुभग सेज सियराम सयन लखि ललचत है मनमोर ।  
 अग्रअली दम्पति दरसन हित आवहिगी बडि मोर ॥

( १४८ )

महल त्रिच सोर करै जनि कोइ ।  
 कछुक रहस बस कछु आलस बस अग्रहि मैथिली मोइ ॥  
 नूपुर दावि चलो मोरि सजनी तनक मनक नहि होइ ॥  
 पहरेणार गजग हाइ रहियो आवागमन न होइ ।  
 अग्रअली के जीवन धन दोउ जगै न पलका साइ ॥

( १४९ )

चली सब युग छवि हिय म धरी ।  
 गोय गय सखि पिय प्यारी अग्र आनन्द रस म भरी ॥  
 लाल लली गुण कहत परस्पर आनन्द सिन्धु परी ॥  
 निज निज कूज क आर गई सखि यूयेश्वरि सवरा ॥  
 गवस मिनि सग चाइशिलाधल अग्र गई म्वधरी ॥

( १५० )

आत्र राम जानकी वृपालु सुन्दर सोहै ।  
 निरखन सुर नर कर मुनि निव विरचि मोहै ॥  
 राम श्री क श्रीश श्रीर रत्न जन्ति धारो ।  
 सिया श्री क सास पून काटि चन्द्र बारी ॥

रामजी के पीताम्बर धनुषबाण राजे ।  
 मिया जी के कर कमल मुद्रिका बिराजे ।  
 रामजी के कुण्डल की काम कोटि शामा ।  
 सियाजी के कणपूल राम को मन लोभा ॥  
 रामजी के उर सोहै भोतियन की माला ।  
 चाह हार रुचिर पहिरि जनक कुवरि बाला ॥  
 रामजिक कटि किंकिणि झनुव झनुक बाजे ।  
 सियाजी के छुद्र घटि मदन मत्र लाजे ॥  
 रामजि घनस्याम वण छवि के अभिरामा ।  
 सिया गौर कनक वण लाजत सत कामा ॥  
 सियाजी कि मखशिख छवि कहत नही आवै ।  
 कोटि शेष सारद श्रुति पारहू न पावै ॥  
 यही ध्यान हिय मे रहत टरत नहि टारयो ।  
 अग्र युगल चरण ऊपर बारि फरि डारयो ॥

( १५१ )

देखो माई नवल कुवर दशरथ को ॥  
 मणिमय जटित क्रीट अति सुन्दर गोरौचन को टीका ।  
 अम्बुज नयन नासिका सुन्दर कुण्डल झलकत नीको ॥  
 मणिमय जडित हार अति सुन्दर हीरा माणिक नीका ।  
 कलित ललित जरकसि को जामा आभूषण पुष्पन को ।  
 उर सोहै भोतियन की माला भृगु लच्छन छवि नीका ॥  
 कर ककन बाजूबध सोहै धनुष गिराजत नीको ॥  
 कटि तूणीर बाण बर राजे कमल फिरावत नीका ॥  
 अग्रदास भजु दसरथ नदन मोहत मन सबही को

( १५२ )

॥ राग जैति थो ॥

यह मोहि दीजे राघव राम ।  
 दासनदास दास को अनुचर कथा श्रवण मुखनाम ॥  
 मोय आदि है चार पदारथ मरो नाहित काम ।  
 चरण रेणु साधुन की सिर पर कृपा करा सुख धाम ॥  
 मननसो अनुराग निरन्तर इहि विधि बीती याम ।  
 अग्रदास चाहत हरि चरचा सुधासिधु विश्राम ॥

( १५३ )

॥ राग विलावल ॥

सरसू सरिता राज सबन ते पुरी सिंगेमणि रामपुरी ।  
 वेत्त हू बहू भदन गाई महिमा जाकी अघट धरी ॥  
 सिव विरचि सनकादिक नारद जपत व्यास जेहि धरी धरी ॥  
 नाम उचार होत अघ यारे जीवन दुरमति दूर टरा ॥  
 जो कोउ बसत अयाध्या माही समसर ताहि न जात करी ।  
 सूकर कूकर सबै विष्णु पद आवत जात न अटक धरी ॥  
 जम भूमि राघो को प्यारी भुक्ति-भुक्ति जहू गरी गरी ।  
 अग्र अहै को जो नहि वाछत बसत जहाँ सर्वदा हरी ॥

( १५४ )

बसो मेरे नयनन मे सिथाराम ।  
 कल्पवेलि श्री जनकनदनी रघुनदन धनस्याम ॥  
 राजत रतन जडित सिंहासन जुगल जाडि अभिराम ।  
 अग्रबली निरखत यह सोभा वारत कोटिन काम ॥

( १५५ )

॥ आसावरो ॥

आहु बघावा दशरथ राय के जायो राजिव नैन ।  
 आय सुख के ऐन ॥  
 चैतमास नौमी उजियारा यह सयोग अनूप ।  
 लगन महुँरत बार ग्रह चरन चिह्न बड भूप ॥  
 बसिष्ठ आदि तपोधन धारी कीन्हो यह निरधार ।  
 दुष्टनि दलन सुखद सन्तन का भूमि उतारण भार ॥  
 घर घर तोरण धुजा पताका मुत्ता बन्दनबार ।  
 दूध पून भरि मारि सुहागिनि छाविये लिखती द्वार ॥  
 चन्दन चौक रचित आँगन म दधि अरु दूब बघावै ।  
 बनक धार सीपज, भरि अगत मिलि सग मगन गावै ॥  
 भू देवन कहै भूमि जाजि गज धेनु रतन रथ देखि ।  
 पाइ साग समदान नरेस्वर मुक्ति आसिपा लेहि ॥  
 पणव निशान मृग्य सस धुनि जै जै शब्द उचार ।  
 कौतूहन कौसनपुर बासी आनन्द बद्धा अपार ॥



मागध सुत भाट प्रदीजन दान मान बढ पावै ।  
 वषात्रम अन्त्यज जे तन घरि फूले जग न भावै ॥  
 नृत्य गान वा जत्र वेद घुनि ठौर ठौर यह मनिय ।  
 लेहु-लेहु यह कहत नगर म और धवन नहि सुनिये ।  
 सुरतघ काम धेनु चितामणि कौसल्या सुत जायो ।  
 अप्रदास रघुपति के आनद में बाधित फल पायो ॥

( १५६ )

॥ राग आसावरी ॥

देवि द्वारा भूप दसरथ क सोभा कहत न आवैरी ॥  
 मूरतिवत मुक्ति सिधि ठाढी भीतर जात लजावैरी ॥  
 मनियन अजिर अनूप देखि छबि झाक लेउं सुत छावैरी ॥  
 कोटि काम ससि कोटि भाउ दुति जमित तेज तन धारेरी ।  
 घुघरबारे केस बदन पर चचल अधिक सुहावैरी ॥  
 मनहु कल्पतरु तेज तनक अलि मधुर सुधामद मातेरा ।  
 उज्ज्वल भाल सुचक्षण ऊपर श्याम सुभग तन सोहेरी ॥  
 वरणो कहा विसाल नैन अति ता उपमा कहू नाहीरी ।  
 इ दु बदन पर उडुप रहै दोउ लोल मीन की नाईरी ॥  
 बगना कठ बिराजत मानहु ऊपर सुभग निकाईरी ।  
 दुतिया चद अनद जानि कै धन मे दत दिखाईरी ॥  
 अरुण पीत सित हारत कु धनुई स्याम सुभग कटि सोहेरी ।  
 जलद घटा पर मनहुँ प्रगट भये इद्र धनुष मन मोहेरी ॥  
 कौसल्या की कूख कल्प तरु रामचंद्र फन लागेरी ।  
 पुण्य प्रभावते अगम अगोचर कौन सुकृत यह जागेरी ॥  
 सकर शप विरचि सारदा जिहि स्वरूप नहि जानरी ।  
 ताके गुण अलि अप्रदास कछु मति अनुमान बखानरी ॥

( १५७ )

॥ आसावरी ॥

प्रगट भय दशरथ क रघुवर, महामहोत्सव मगल घर घर ॥  
 दखो आजु अवधपुर साभा, नरनारी आनद उरगोभा ।  
 सुनत सबै आतुर होइ धावै, हरित दूख दधि नृपति बधावै ।

भोतियन चौक बघाओ गावें नव तरुनी साथिया बनावें ।  
 ध्वजा पताका मडित घर-घर, दिव्य दुकूल सुगम सिचिघर ॥  
 घर अम्बर बाजें बहु बाजें, मनहु महोदधि लहरो गाजे ।  
 विप्र वेद धुनि व्योमनि परसत, सुर सघट कुसुम्हनि अनि वपत ।  
 भीर भूप घर अनिसै राजे, कोउ लेवै कोउ दवै बाजे ।  
 भूमि बाजि गज विप्रन पाये, धेनु रतन अन वसन अघाये ।  
 याचक जन ता क्षण जो आय, दान मान वाद्धि फल पाये ॥  
 कहत सर्वे धन वचन हमारे, चिरजीवो य पुत्र तुम्हारे ।  
 अग्र बघाई यह नित पावै, ज म कर्म लीला गुन गावै ।

( १५८ )

॥ राग टोडी ॥

राम जम आनद बघाई ।  
 सुरतरुमुधाधेनुचितामणि मिलत परम्पर दूब बघाई ।  
 प्रभुलित हृदय नगर वासिन के बाल वृद्ध सब पात सुहाई ॥  
 भई भीर नाचे नर नारी बाजे बहुत गन नहि जाई ।  
 मगल बलस चौक भोतियन के द्वारन वनधार बघाई ॥  
 मिथु को बदन निहारि नारि सब वारति भूषण लन बलाई ।  
 रतन गभ कौशल्या रानी धय भाग की करत बलाई ।  
 दशरथ राय हाथ भये ठाढे कनक वसन अन्न धेनु मगाई ।  
 परम पुनीत विप्र पद बदित दान मान जनु धन वपाई ॥  
 मागथ मूत माट बँदी जन अष्टसिधि नवनिधि पाई ।  
 दशरथ सुत नित प्रतिहो देखा अग्रदास ते यहै जिय भाई ॥

( १५९ )

॥ ढाणी पद, राग परज ॥

तिहारा ढाणी आयो हा रघुवशी यजमान ॥  
 जम जम दाही या घर का मान सहित द दान ॥  
 रवि अनरण्य इक्ष्वाकु अग रघु धुधुमार मुग्नाश ।  
 काकुय सगर दिलीप भगीरथ गगा अरुनि प्रनाश ॥  
 हरिवीरतिसम यश विश्व अति मामति जाय न जान  
 इभा सुत शारदा शेष मुर वेत् पुरान बखान ॥  
 मुत्त जायो सुनि पगतिरथ के मोमन एगरला ।  
 उरजी ॥ अज भूप द्वार का धारी सुफन पत्नी ॥

लखि मन भरत सनुहन सुन्दर नाम सकल गुन सार ।  
 धीर गभीर अभेकरि मति सो अतिही शील उगार ॥  
 मैं पाई सतति मुख प्रथनि सुनहु टुपति दे कान ।  
 जन्म न देख्यो रामचन्द्र का भूत भविष्य वतमान ॥  
 बन् उधार कमठ करुणा कर धरणी धर प्रथ नैन ।  
 हरप करपधर, अमुर त्रिमाहन त्रिग वचन सुनि जैन ॥  
 ऋषि मय सन्न धम रखवारी कौसल्या सुत करिहैं ।  
 दुष्ट दमन करि बांधि धारि निधि त्रिपति दब सब हरिहैं ॥  
 भू बन रेणु बुन्द वर्षा की उडुगण है निरधार ।  
 गदित वचन सुनत ढापी को रघुपति गुणनि अपार ॥  
 धम सार श्रुतिसार सिरोमनि वान्ति अधिक तन तेज ।  
 चरण चिह्न सरवेस्वर क सय त्रिधि मनु रच्यो बंधेज ॥  
 ढापी अग्रदास दसरथ गृह याचत वारम्बार ।  
 साधु सगति कीरनि तब सुत की रचो रहो दरवार ॥

( १६० )

॥ राग टोढी भूर फागता ॥

आज दसा अमरथ नृप की अति रानी रतन खानि कुपि खूली ।  
 सुनत सुधा बरप्यो त्रिभुवन मे मत कमल श्रेणी हृद फूली ॥  
 लखिमन भरत सनुहन सुन्दर प्रगटे राम सजीवन भूली ।  
 सिव धिरचि सुर सेप धीपधर गुण गण गान शारदा भूली ॥  
 अष्ट सिद्ध नव निद्ध मुक्ति चतुर्धा अवध के द्वार द्वार अनुकूली ।  
 अग्रदास रघुनाथ जनमते मगल अवर नही कोइ तूली ॥

( १६१ )

॥ राग गौरी ॥

नृप दशरथ वं पुत्र भय सुर पुर म वजत बधाई रा ।  
 धर धर मगल चार अवधपुर बन् बार वधाइ री ॥  
 चनुर सखी मिलि माधियाँ दीह बिधि सो मोत्व भराई री ।  
 चन्दन चौक रचित आगन म रतन जडिन अगनाई री ॥  
 वृत्त कौतुक कौसलपुर बासी याचक अभर मराये रा ॥  
 अवधपुरी आनन्द भयो भर बाँटत बहुत बधाई री ।  
 अग्रदास रघुवर के जनमन मन बाँडित फल पाई री ॥

( १६२ )

॥ राग आसावरी ॥

फूले फिरत अयोध्या बासी ।  
 सुन्दर सुत जायो कौसल्या रामचन्द्र सुख रासी ।  
 घर घर बदन माल साधिया मोतिन चौक पुराये ।  
 नाचत गावत देत बघाई मनु घर घर मुत जाये ॥  
 गली गली गज वाजि जहा तह हलका दिये तपेले ।  
 दीन बहुत याचक जन घोरे कापे जान सकेले ॥  
 दसरथ भूप भटार मुकर किये वदी अमर भरे ।  
 सकट सालि ताही सा हमला डोय डेर घरे ॥  
 सत कमल सुख देन काज रवि राघव उदै कर्यो ।  
 मुदित देव दुःदुभी बजावत निश्वर निमिर हर्यो ।  
 देत असास नगर नारी नर चिरजीवो रघुवीर ।  
 अग्रदास आनन्द अखिलपुर मिटी ताप तन पीर ॥

( १६३ )

लान इन बोलन के बलि जेहों ॥  
 छोटे छाटे चरण धरत अति सुन्दर ठुमकि ठुमकि हलरेहो ॥  
 कटि किकिनि पग नूपुर बाजे मधुरे शब्द सुनेहों ।  
 सब बालक रघुवर छवि निरखत प्रेम प्राति लपटेहों ॥  
 धुंधर वारे अलक बदन पर मन्द हसन सुख पैहों ।  
 जाको ध्यान धरत ब्रह्मादिक सारद गान करेहों ॥  
 गादराखि पय पान करावत दसरथ लत बुलेहो ।  
 यह छवि दखि मगन सुर मुनि भय रवि समि कोट लजेहो ।  
 सिव सनकाणि आनि ब्रह्माणिक निगम नति अस गहों ।  
 अप्रदास भजु दसरथ नन्दन तिन प्रति दिन अधिक्हों ॥

( १६४ )

अखिन लाक श्री उष्य भई हैं जनक रामपुर जाई ।  
 निरळम कापा निमि कुल के सीता एसी नाई ॥  
 बरनत विदुष पार नहि पावन बाँही रही लजाई ।  
 जाक धरन कमल भव नौका नाहिन आन उपाई ॥  
 निगम गार रामान सुजस जेहि बहत तपाधन आइ ।  
 ब्रह्म रुद अर्द्ध पद आश्रित अप्रदास बलि जाई ॥

( १६५ )

ठुमुक ठुमुक चलत चाल जनक न नी ।  
 मधुर बचन तोतरे त्रयताप मोचनी ॥  
 सोहत नव नील वसन भद्र हास रुचिर दसन,  
 झलकत उर माल सरल देव बदनी ।  
 बाजत पग नूपुर मनो साम वेण करत गान,  
 क्षुद्र घटि रुचिर नाद उर अनन्दनी ॥  
 जगत मात सुखिन सग विहरत बहु करत रग,  
 अग्र अली निरस्त छवि भवतिकन्दिनी ॥

( १६६ )

॥ स्याल ॥

दशरथ सत देखि देखि जाक सुता मोही ।  
 धनुष बान कोइ चलावै मेरो पति सोही ।  
 सीता जू कहे पिताजी सो धनुष प्रनत जो ।  
 ऐसो घर राम गाज तिलक को सजो ॥  
 सीता जू के बचन सुनत सबही मुख मोरघो ।  
 तबही तत्काल राम कठिन धनुष तोरघो ॥  
 घर घर आनन्द होत अचरज यह कियो बाल ।  
 तबही सीय पाय लाग डारी है गरे जयमाल ॥  
 जय जय जयकार होत बाजै बहु बाजा ।  
 'जग्र' के स्वामी जीति आय अयोध्या के राजा ॥

( १६७ )

॥ कीतन ॥

प्रात समय जागी अनुरागी सोवत उठी री स्याम जू की सगिया ।  
 बार सँवारति उठी री दक्षिण कर बाम भुजा व कुटी भरि अगिया ॥  
 भाल मे सुहाग भारी कचुकी की छवि यारी ।  
 पहरे कसूँभी शारी साहा रगबगिया ।  
 'अग्र स्वामीजी लडाई बहुत की ही बडाई  
 फूली फूली फिरे सब रैन रग रगिया ॥

( १६८ )

॥ होनी गान ॥

होली के खलार भावत तोहि जान न देही ।

रग भीन बागे बनि आए जाग भाग्य हमारे नयन म भरि राखूँ फगुवा लही ॥

बोवा चन्द और बरगजा केसर कलस नहैहों ।

'अग्र स्वामि सो कहत स्वामिनी मिलि तन ताप नसैहों ॥

( १६६ )

बहानी बाला बोन बिरद की लाज ।

जे तुम सहो कसोरी हिन की निरणो निकसे आज ॥ टेर ॥

मैं अति दुखित दीन गुह द्विजवर असरन सरन तुम्हारो ।

तुमसे एक भक्ति को नातो घोरो घणो विचारो ॥१॥

साची कहैं सुणो दुरबामा मोरी सुरत सुतय नाही ।

मोहि भवता ऐसे बस कीनो पीर पीजरा माही ॥२॥

मय के हित की खबर पडी जब भागो मन को भोर ।

अग्रदास साचा हरिजन की सार भज्या कछु है ओर ॥३॥

## अकबर की रामनिष्ठा

राजपूताने में रसिकसाधको की बढ़ती हुई प्रनिष्ठा और अवध में तुलसी साहित्य के व्यापक प्रचार का प्रभाव उत्तरमेंना अकबर पर भी पड़ा। उसके द्वारा प्रचारित 'रामसोय' भाँति की स्वर्ण एव रजत मुद्राओं से यह स्पष्ट हो जाता है। अब तक इस भाँति के तीन सिक्को का पता चला है—दो सोने की अधमोहरे और एक चाँदी की अठनी। इनमें एक सोने की अधमोहर, कैब्रिनेट डे फ्रांस में है दूसरी ब्रिटिश म्यूजियम में और तीसरी चाँदी की अठनी भारत कलाभवन, काशी में संग्रहित है। यह (तीसरी मुद्रा) डा० वामुदेवशरण अग्रवाल को लखनऊ के किमी व्यापारी से प्राप्त हुई थी। दोनों साँचों में एक ओर राम सीता की आकृति अंकित है और दूसरी ओर उनका प्रचलन काम किया हुआ है जिसमें पता चलता है कि उपर्युक्त दोनों भाँति की मुद्रायें भिन्न काल में और दो भिन्न साँचों में ढाली गयी थी—

राय आनन्ददृष्णजी के लेख के आधार पर नीचे इसका विवरण दिया जाता है—

( १ ) सोने की दो अधमुहरें ( ब्रिटिश म्यूजियम और कैब्रिनेट डे फ्रांस ) इनमें राम प्राचीन वेश में उत्तरीय तथा घोड़ी धारण किये हुए और सीता लहंगा, ओल्नी और चोली पहने, अवगुठन को सम्हालती हुई दिखाई गई हैं।

इसका प्रचलनकाल ५० इलाही, परवरदीन उत्कीर्ण है। ब्रिटिश म्यूजियम में सुरक्षित अधमोहर में अंकित और 'रामसोय' नागरी अभिलेख मिट गया है किंतु 'कैब्रिनेट डे फ्रांस' की अधमुहर में वह ज्या का ल्यो बना हुआ है।

( २ ) चाँदी की अठनी ( भारत कलाभवन काशी )।

इसमें सीताराम अकबरकालीन वेश में लिखाये गये हैं। राम सिर पर तीन कपूरे वाला मुकुट, (जैसा अकबर के समय के ब्राह्मण देवताओं के चित्रों में प्राप्त होता है) घुटने तक जामा दुपट्टा, जिसके दोनों छोर इधर-उधर लटक रहे हैं बाये हाथ में धनुष की कमानों की मध्य, जिसकी प्रत्यक्षा भीतर की ओर है, पीठ पर तूणीर और दाहिने हाथ में धनुष पर चढ़ा हुआ बाण धारण किये हैं।

उनकी अनुगामिनी सीता चुस्त चोनी, लहंगा, ओढ़नी और हाथो में चूड़ियाँ पहने हैं। उनका धार्या हाथ सामने उठा हुआ है और दाहिना पीछे लटकता है। उनके दोनों हाथो में फूल का गुच्छा है। रामसीता के ऊपर बीच में नागरी अगरो में 'रामनीय' अंकित है इसके पट की ओर ५० इलाही अमरनाद लिखा हुआ है।

इसमें यह विन्ति होता है, कि ये दोनों मुद्रायें, अकबर की मृत्यु के पहले एक वर्ष के भीतर, उनके द्वारा प्रचलित इलाही सम्बन्ध के ५० वें वर्ष के दो भिन्न महीनों में प्रचलित की गई थी।

अब यह प्रश्न उठता है कि 'रामनीय' भाँति की ये दो भिन्न भिन्न प्रकार की मुद्रायें उनके जीवन की किस स्थिति की परिचायक हैं। मोटे तौर से सीताराम का दांपत्य जीवन तीन भागों में विभक्त किया जा सकता है—विवाह के पश्चात् और वनगमन के पूर्व अयोध्या में व्यतीत होने वाला उनका गृहस्थ जीवन चौदहवर्षीय वनवास में सीताहरण के पूर्व का जीवन और लकाविजय के पश्चात् उनके पुनर्मिलन के समय में लेकर सीता के द्वितीय वनवास के पहले तक उनका अयोध्या का राजेश्वर्यपूर्ण जीवन। इन तीनों के अंतर्गत ही किसी अवस्था में उनकी स्थिति का अकबर उपयुक्त तानों प्रकार की मुद्रा बना में हुआ है। यह स्पष्ट ही है कि इन तीनों में प्रथम तथा तृतीय स्थिति का ब्रीडाभूमि अयाध्या रही है और मध्यवर्ती अवस्था 'वनलीला' की है।

सोने की मुद्रा में दंपति की त्रिस मुद्रा का चित्रण हुआ है वह उनके गृहस्थ जीवन के अधिक मेल में है। पति के पीछे चलनी हुई सीता का दाहिना हाथ कमर पर रखना और वार्यें हाथ स धूषट सभालना, उनके दांपत्य जीवन के आरम्भिक काल की मुद्रा प्रतीत होनी है। लज्जत का जो भाव इससे व्यक्त होता है, उसकी व्याप्ति इसी अवस्था में अधिक सगत जान पडती है। यह भी असंभव नहीं कि यह उनके चित्रकूट के वन विहार की किसी स्थिति का द्योतक हो। अतः इस प्रथम तथा द्वितीय अवस्था के अंतर्गत मानना उचित हागा।

भारत कलाभवन काशी की अठथ्री में अंकित सीताराम की मुद्रा के विषय में मेरा यह विचार है कि इसमें उनके चित्रकूट अथवा पञ्चवटीवास के समय किये आशेट एव वन विहार का दृश्य अंकित है। यह स्मरणीय है कि पञ्चवटीवास के समय यह उस स्थिति का द्योतक नहीं माना जा सकता, जब सीता ने राम को सुवर्णमृग दिखाया था और उनकी प्रेरणा में वे उसके आशेट में प्रवृत्त हुए थे। यदि उम स्थिति से इसका सम्बन्ध होना तो सीता मृग को इंगित करती हुई दिखाई जार्नीं किंतु प्रस्तुत चित्र में ऐसा कुछ लक्षण नहीं होता। सीता का, निःसंकोच भाव से दोनों हाथों में फूल के गुच्छे लिये हुए पति का अनुगमन करना



वन विहार का चोटक हो सकता है। मेरा अनुमान है कि इस सीता का दोष माने जाने की संभावना पंचवटी से चित्रकूट की अधिक है। कारण यह है कि राम-भक्ति साहित्य में 'अहेरी' राम की मुख्य श्रीश-भूमि तथा सीताराम की विहार स्थली के रूप में इसी स्थल की सर्वाधिक प्रतिष्ठा है। रचित साहित्य में चित्रकूट-वासी राम तापम नहीं, राजेश्वर्यपूर्ण और नित्यरामतीव्रत चित्रित किये गये हैं। तुलसी ने भी रामचरितमानस गीतावली और वनपर्वणिका में चित्रकूट का स्मरण दम्पति की विहार भूमि के रूप में किया है।

उनके परवर्ती रामरसिकों ने भी उस इसी रूप में दया है।

इस प्रकार दोना भक्ति का मुग़लों में सीताराम की शृंगारी भावना प्रकट होती है। उन्ना अकबर को इन माधुर्यव्यजन दृश्या के सिक्कों पर उत्कीर्ण करने की प्रेरणा रामभक्ति में बढ़ती हुई रगिकभावना में प्राप्त हुई हो ता कोई आश्चर्य नहीं।

राय आनन्दकृष्ण जी ने इन सिक्का के प्रचलित करने का कारण, जीवन के अंतिम क्षणों में उद्बुद्ध, अकबर की रामभक्ति बताया है। इनका प्रचलन उमने जिम किसी भाव में भी प्रेरित होकर कराया हो, इतना तो स्पष्ट ही है कि उसकी 'रामसीय' में निष्ठा थी और उनके 'स्वरूप प्रचार' में वह प्रजा और राजा दोना का हित देखता था। शताब्दिया पहले से भारतीय शासका द्वारा शिलालेखों और मूर्तियों में प्रतिष्ठित विष्णु और कृष्ण को छोड़कर यवनशासक अकबर का 'रामसीय' के नाम पर सिक्का चलाना इस देश के इतिहास में एक अभूतपूर्व घटना थी। जहाँ तक इन पत्तियों के लेखक को ज्ञात है किसी हिन्दू सम्राट ने भी शासन कार्यों में सीताराम का इतना महत्त्व नहीं दिया था। इससे तत्कालीन समाज पर रामभक्ति के बन्ते हुए प्रभाव का अनुमान लगाया जा सकता है।

## तुलसीदास का गुरुधाम

गोस्वामी तुलसीदास की जीवनी एवं साहित्य के अध्येताओं के लिये इधर कुछ वर्षों में तुलसी के गुह्यद्वारा 'सूकरखेत' की स्थिति एक पहेली बन गई है। आचार्य प० रामचन्द्र गुप्त उस अयोध्या के निकट मोहा जिले में स्थित मानते हैं तो विद्वानों का एक विशिष्ट तल उसे उटा जिले के सारो से अभिन्न बताता है। इस दूसरे मत के समर्थकों में गुरु-आश्रम के साथ सोरो को तुलसी की जन्मभूमि और उसी व आश्रम पास उनकी समुदाय भी सिद्ध करने के लिये प्रचुर प्रमाण एकत्रित किये हैं। किन्तु जितने सुव्यवस्थित ढंग से और जैसी योजनाबद्ध पद्धति से यह मोरा-सामग्री प्रकाश में लाई जा रही है उसी अनुपात से पारस्त्रियों की दृष्टि में उसकी माधुना उत्तरोत्तर सन्निध्य होती जा रही है।

शुक्लजी ने बिन प्रमाणा के आधार पर तुलसी के 'सूकरखेत' को गाडा जिले में स्थित माना था 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' में इसकी विस्तृत विवेचना नहीं की गई है। फिर भी इस सम्बन्ध में वहाँ जो कुछ मिलता है उससे विदित होता है कि ऐसी धारणा बनाने में अपनी जन्मभूमि वस्ती के निकटवर्ती इस स्थान में उनका व्यक्तिगत परिचय ही विशेष प्रेरक रहा है। यह दूसरी बात है कि उसकी पुष्टि के लिये उन्होंने तुलसी की भाषा-शैली तथा अन्य साहित्यिक विशेषताओं की भी ध्यान-दीन की है जो अवश्य के उस भू-भाग में विरचित काव्यग्रन्थों में सामान्यतया पाई जाती हैं।

तुलसी के जीवनी साहित्य का अनुशीलन करते हुए इन पत्तियों के लेखक को अनेक ऐसे तथ्य उपलब्ध हुए हैं जिनसे इस विवादग्रस्त प्रश्न के समाधान में सहायता मिल सकती है। अध्ययन की सुविधा के लिये काल-क्रम से इनका विवेचन नीचे किया जाता है।

इनमें प्रथम हैं 'दासायदाम' द्वारा विरचित 'तुलसी चरित अथवा 'गोसाड

१ दिल्ली विश्वविद्यालय द्वारा आयोजित 'तुलसी विचार परिषद्' में ३१ मई १९६० को पढ़े गये निबंध का परिवर्द्धित रूप।

चरित' की 'सूकरधेन विषयक गाम्भी । भाषा-काव्य-सग्रह क रचयिता प० महेशदत्त शुक्ल ने उक्त 'दासायदास की अभिप्राय परम्परा से प्रसिद्ध तुलसी क जीवनी-लेखक वाया वेणीमाधवदास से रचायित की है ।' समागवण 'भाषा-काव्य सग्रह' तथा 'शिवसिंह सराज' में गोसाइ चरित से जो पत्तियाँ उद्धृत की गई हैं वे 'गोसाइ चरित की इस नवोपनाय प्रति म' का की त्या मिल जाती

१ यह शब्द 'दासानुदास' का अपभ्रंश है जिसका अर्थ होता है 'दासों का वाम' । भक्त सौग विनम्रता प्रकट करने के लिए परम्परा से अपने को इस श्रेणी में रखते आए हैं । गोस्वामी तुलसीदास के समकालीन रामभक्ति साहित्य में आघात अप्रदास क निम्नांकित पद में इसका प्रयोग उक्त अर्थ में ही हुआ है—

यह मोहिं बीज राघव राम ।

दासनिदास दास के अनुचर कृपा धवन मुप नाम ।

घरनरेतु साधुन के सिर पर दृषा करो मुपयाम ॥

सतन की अनुराग निरतर चेहि बिधि धोते जाम ।

'अप्रदास' चाहत हरि घरचा मुया सिधु विद्याम ॥

—अप्रदास की अप्रकाशित 'पदावली' से ।

'भाषा काव्य सग्रह' में महेशदत्त शुक्ल ने वेणीमाधवदास का परिचय देते हुए दास वा दासानिदास' का उल्लेख उपनाम के रूप में किया है । इससे यह विदित होता है कि उन्होंने गोसाइ चरित की जो प्रति देखी थी उसमें उक्त तीनों नाम दिए हुए थे । शिवसिंह को जो इस ग्रन्थ का जो हस्तलेख मिला था उसमें रचयिता के रूप में वेणीमाधवदास का नाम अंकित था । उसके छंदों में 'दास' धाप देकर सेंगर जो ने स्वयं उनका परिचय 'सरोज' में 'दास कवि' के नाम से दिया । किंतु प्रस्तुत हस्तलेख के लिपि कार मोहन शुक्ल को उक्त ग्रन्थ की जो प्रति मिली थी उससे वेणीमाधव दास का नाम निश्चल गया था केवल उनका उपनाम 'दासानिदास' रह गया था । इसका कारण सम्भवत भवानीदास द्वारा मूल प्रति में किया गया परिवर्द्धन एव परिष्कार था । किंतु इन तीनों प्रतिपा में गोसाइ चरित के मृतक प्रसंग' से जो पत्तियाँ उद्धृत की गई हैं उनका पाठ साम्य यह सिद्ध करता है कि रचयिता से नाम में साधारण भ्रंति होते हुए भी उन सब का मूल स्रोत वेणीमाधवदास द्वारा विरचित परम्परया प्रसिद्ध गोसाइ चरित ही था ।

हैं। यह तथ्य प्राचीन 'गोसाइ चरित' से इसकी निस्सन्देह एकता सिद्ध करता है। उक्त प्रति मुझे सीतापुर जिले में दिक्कौलिया के तालुकेदार, ठा० महेश्वरबख्श सिंह से प्राप्त हुई है। प्रतिलिपिकार हैं गोधनी गाँव के निवासी मोहन शुक्ल। वैशाख शुक्ल ७, सं० १९२६ को एक प्राचीन पोथी से किसी राजा के आदेश से उन्होंने इसकी प्रतिलिपि की थी।'

इस ग्रंथ में तुलसी की अयोध्या से नीमपार ( नैमिपारण्य ) यात्रा का वर्णन करने हुए लिखा गया है—

अवधवाम गृहजाल करि लाहु जन्म को लीन ।  
सहस्रमाज निज गवन तब नीमपार को कीन ॥  
प्रथम धारा रोहाई लपि अनादि धल कीहो ।  
श्री रविकुल अबरीक नृपति सुकृती जिय चीन्हो ॥  
दुतिय बास अध नास किय पावन सूकरखेत ।  
अ योजन जो अवध ते 'दास' दरस सुप हेत ॥  
जह श्री गुरु नरसिंघ सन सुनो कथा लहि जान ।  
सो अनादि तीरथ बित्ति श्री गुरुद्व अस्थान ॥

यहाँ 'सूकरखेत' को गोधामी जी के गुरु 'रामिह' अथवा 'नरहरि' का नेवासम्भान घोषित करने के साथ ही गुरु-मुख से उनके रामकथा सुनने का भी पट्ट उल्लेख किया गया है, जिसके सम्बन्ध में स्वयं तुलसी की उक्ति है—

सो मैं निज गुरु सन सुनी, कथा सो सूकरखेत ।  
समुझी नहि तस बालपन, तब अनि रहेउँ अचेत ॥

इस स्थान को 'सूकरखेत' की सन्ना किम प्रकार प्राप्त हुई, प्रथमवार ने इसका नेवरण दत्त हुए लिखा है—

श्री नारायण जगतपति, जगहित जगत उधार ।  
धारमो गुरु वाराह जब, आदि पुरुष अवतार ॥

- १ पद्मनहार सज्जन मुमति, कथा राममनि गोइ ।  
प्रति पावा सो मैं लिखा, दोस न बीजो सोइ ॥  
अग्या मानि नरेस की, सकल चरित लिखि सोइ ।  
तुलसी चरित कथा सुभ, जो सुनिहे मन बोइ ॥  
गुरवार तिय सत्तमी सुवल पक्ष बसाय ।  
सबत बनइस स यइस को धाता सबत भाय ॥

सत् पुरपुरा त भयो, पापर सरित प्रवाह ।  
 दध जच्छ गधर्व सब, अस्ति प्रबोधत हाहि ॥  
 भई विमानन भीर तब, सत जोजन बे पेर ।  
 तब अजा भइ सबन कह, करो पुण्यल हेर ॥  
 चली रिमाना भीर तब, श्री धाराह समेत ।  
 सरजू सगम घुघरा, तह बनो सूकरपेत ॥  
 प्रयोजन है अथध त, पसका सो परमान ।  
 यास कछुक तिन करि तहाँ, चरचा बंद पुरान ॥<sup>१</sup>

अयोध्या में नौमपार की इस यात्रा में सूकरखेत के पश्चात् सियाबाद, लखनपुर (लखनऊ), बनहट, मलीहाबाद, कोटरा, बाल्मीकि आश्रम (बिठूर), सत्याना आदि स्थानों में तुलसी के ठहरने का वृत्तांत रिया गया है। ये सभी स्थान किसी न किसी रामभक्त अथवा रामकथा से सम्बद्ध पात्र के निवास-स्थल बताए गये हैं और वहाँ तुलसी के आगमन के अवसर पर कुछ विशेष चमत्कारी घटनाओं के घटित होने की चर्चा की गई है। 'गोस्वामी तुलसीदास चरितामृत' में इस तुलसी की पाँचवी यात्रा (अयोध्या से नौमपार जाने और लौटने की) कहा गया है, और मार्ग में पढ़ने वाले चौन्ह तीर्थों का उल्लेख रिया गया है।<sup>२</sup> उनके साथ जिस 'सूकरखेत का नाम आया है वह गोवा जिले का ही 'सूकरखेत है, इसकी पुष्टि गोसाइ चरित एवं 'गोस्वामी तुलसीदास चरितामृत के पूर्वोक्त विवरणों से होती है। तुलसीदास से इनका घनिष्ठ सम्बन्ध प्रतिपादित करने वाली अनेक कथाएँ अवध प्रदेश में आज तक प्रचलित हैं।<sup>३</sup>

१ यही, पत्र २१५-१६।

२ अयोध्या से रवनाही, सूकरखेत ( पसका ), सियाबाद लखनऊ, मडियाहै, मलीहाबाद, बिठूर कोटरा, सबोला, नौमपार, मिसरिय, रामपुर मथुरा, खराबाद, सूकरपेत और अयोध्या।

—गोस्वामी तुलसीदास चरितामृत, पृ. २८ (रामचरितमानस हरि प्रसाद भगीरथजी, कालयादेवी रोड, बम्बई की भूमिका रूप में प्रकाशित)

३ इस यात्रा में नौमपार से लौटते समय गोस्वामी जी मिसरिय, रामपुर मथुरा, खराबाद और सूकरखेत होते हुए अयोध्या आये थे। स्थानाभाव के कारण केवल रामपुर मथुरा ( सीतापुर ) में उनके ठहरने, वहाँ के राजा हृदयराम को मानस की एक हस्तलिखित प्रति देने तथा उस स्थान पर हनुमान जी का प्रतिमा स्थापित करने का स्थानीय साहित्य में सुरक्षित वृत्तांत संक्षेप में नीचे रिया जाता है—

वैष्णवधर्म की ही भाँति गोस्वामी जी के एक अथ समसामयिक एव साथी वासी निवासी वृष्णदत्त मिश्र द्वारा विरचित 'गौतम चन्द्रिका' में भी तुलसी

तोरण नमिष विदित जहाना । ताके प्राची दिशा सुजाना ॥  
 योजन अष्ट दूरि कवि गाव । अवधपुरी से पश्चिम पाव ॥  
 वश योजन प्रमाण महि जाई । सरित चन्द्रभागा तटभाई ॥  
 अह सरयू के दक्षिण आसा । बसत रामपुर ग्राम सुबासा ॥  
 बोहा—तहाँ महेश्वरवरा नृप, करत राज्य नय रूप ।

विश्रम विक्रम तुल्य बुधि, सुरपति गुरु अनुरूप ॥

—महेश्वर गोगज चिकित्सा, पृ० ६८,

ग्राम रामपुर ते कछु दूरी । विशि कौबेय सरित जल पूरी ॥  
 रामघाट गडकि सरि माहीं । रमई गोडिया हो तेहि ठाहीं ॥  
 गोस्वामी धो तुलसीबासा । आए तेहि बल सहित हुत्तासा ॥  
 घाट नाम पूछो हरपाई । रामघाट तेहि बीह बताई ॥  
 नाम रमैया मोर कृपाला । यहि कृत करत वश प्रतिपाला ॥  
 घाट पार को पुर कयू नामा । बसत रामपुर ग्राम लतामा ॥  
 को नप हृदय राम नरनाहा । सुनि पायो तिन बड उतसाहा ॥

अवित भ सान'ब तह, सुनि नृप आयो घाइ ।

युत आवर सत्कार तिन, बास करायो आइ ॥

सेवन कीह यथाविधि रूपा । भे प्रसन्न तव साथु अनूपा ॥  
 आशिष बीह अचल यह राजू । काहू काल न होइ अकाजू ॥  
 रामायण निजकृत तहें थापी । पूज्यो यहि अरि सक न घापी ॥  
 प्रतिमा अंजनेय भगवाई । भूप निकेत आपु पघराई ॥  
 अजहूँ राजत भूपति धामा । पूजत प्राप्त होत मन कामा ॥

—महेश्वर गो-गज चिकित्सा प० १०-११ (डायमंड जुबिली यत्रालय, कानपुर) स० १९५७ वि०, ।

ग्राम रामपुर नाम, हृदयराम भूपात्मणि ।

रामघाट सुखधाम, रमई गोडिया नाम सुनि ॥

तुलसीदास कृपाल रामभक्त तन मन बचन ।

आए ग्राम सुकाल, बास कियो कछु काल तह ॥

रामायण निजकर लिखित, बँ पुनि बीह असीस ।

अचल होइ नपता सदा, सुनु तव रामपुरीस ॥

के जीवन से सम्बद्ध अनेक आँखों देखी घटनाओं का वृत्त वर्णित है।<sup>१</sup> इस ग्रन्थ की रचना तुलसी के साहेतवास के ठीक एक वर्ष पश्चात् श्रावणवृष्ण ३, स० १६८१ को हुई थी।<sup>२</sup> इमने तुलसी की आदि शिष्या भूमि—'सूकरखेत' और गुप्त 'नरहरिदास' का जो परिचय दिया गया है, वह संशय में इस प्रकार है—

सरळ अपर घाघरी दोऊ । संगम तीर्यराज सम सोऊ ॥  
 घबलि जेठ एकादसि माही । तहाँ विपुल नर-नारि नहाही ॥  
 बहुरि बराहपेत भोया सचि । पूजहि बटु बराह बेनी रचि ॥  
 तहवा सकल लोक विख्याता । सुपत्न भक्तिमूत्र निर्माता ॥  
 साडिल रिधि आश्रम यल पासा । जहाँ तह सरवारिह कर बासा ॥  
 राम प्रप्त भूमि अधिकारी । सल दल दलन घम घनुघारी ॥  
 साडिल गोत्रज नरहरि स्वामी । ज्ञान निधान भक्तिपथगामी ॥  
 अध गज गजन नरहरी, सूकरखेत निहाइ ।  
 आरयक सुपमा भरी, कासी पहुँचे जाई ॥ २ ॥

तात्पर्य यह कि तुलसी ने जहाँ सर्वप्रथम अपने गुप्त नरहरिदास के सामिप्य में विद्याध्ययन किया था वह स्थान सरयू घाघरा संगम पर है और 'बाराह क्षेत्र' अथवा 'सूकरखेत' नाम से अभिहित किया जाता है। पसका गाँव (सूकरखेत) में 'शाण्डिल्य ऋषि का आश्रम' नाम से एक स्थान अब तक निर्दिष्ट किया जाता है। पसका के अतिरिक्त नदौर तथा उसके निकटवर्ती गाँवों में भी शाण्डिल्य गोत्र के ब्राह्मण बहुत बड़ी संख्या में बसे हुए हैं। कहने की आवश्यकता नहीं कि गोडा जिले का दक्षिणी भाग, जिनमें सूकर खेत स्थित है, शताब्दियों से सरयू-पारोण ब्राह्मणों का मुख्य केंद्र माना जाता रहा है।<sup>३</sup>

—महेश्वर रसमौर ग्रन्थ (रायबबि दौलतराम) लखनऊ प्रिंटिंग प्रेस, अक्टूबर १८६८ ई० ।

- १ गौतमचन्द्रिका में तुलसी का यत्नात् (श्री विश्वनाथप्रसाद मिश्र) नागरी प्रचारिणी पत्रिका, वष ६० अंक १, स० २०१२, पृ० १२ ।
- २ सबत सारह स एकासी । तुलसी बरखी असी प्रकासी ॥  
 सावन कृष्ण तीज तिथि पाई । यह गौतम चन्द्रिका बनाई ॥  
 वही, प० ३ ।
- ३ 'दियर आर मोर ब्राह्मस इन गोंडा वन इन एनो अवर पाट स आव अथप एण्ड इ डोड इन बि होल आय यूनाइटेड प्रायिसेस विद बि एक्सेप्टान आव गोरखपुर । बि वास्ट मेजारिटो आव वेम बिलांग टु बि सरवरिया सब द्विचोसन ।'

इन दोनों समसामयिक वृत्तों का प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष प्रभाव तुलसी के परवर्ती लेखकों द्वारा निर्मित एतद्विषयक साहित्य पर पड़ा। महेशन्त शुक्ल ने स० १९३० में 'भाषा-काव्य सग्रह' में वेणीमाधवदास का परिचय देने हुए लिखा—

ये कवि जिले गाडा में घग्घर के निकट पसका के रहने वाले थे और तुलसीदास जी के शिष्य थे। ये उड़े रामोपासक और गुरुभक्त थे। गोसाइ जी के सग ये भी फिरते थे। जो जो मिद्धताये तुलसीदास जी की इन्होंने देखी हैं वे सब अपने ग्रन्थ 'गोसाइ चरित' में लिखी हैं। ये स० १६६६ में हरिपुरवासी हुए।<sup>१</sup>

वेणीमाधवदास तथा 'गोसाइ चरित' का जो परिचय इन पंक्तियों में दिया गया है वह गोसाइ चरित की पूर्वाक्त प्रति में उपलब्ध वृत्त से समर्थित है। इस ग्रन्थ के वर्ण्य-विषय से सम्बन्ध में यह लिखकर कि इसमें वेणीमाधवदास ने अपने गुरु की केवल आत्मा देखी सिद्धताए वर्णित की हैं न कि उनका सम्पूर्ण जीवन वस्तुस्थिति स्पष्ट कर दी गई है। छटकने वाली बात केवल इतनी है कि इसमें एक स्थान पर भवानीदाम का नाम लेखक के रूप में आया है। उन्होंने इस सम्पूर्ण कथा को अपने गुरु, महात्मा रामप्रसाद से सुनी हुई बताया है।<sup>२</sup> महात्मा रामप्रसाद अयोध्या के 'बड़ा स्थान' के सस्यायक थे। इनका समय १७६० स० १८६१ तक माना जाता है। मेरी धारणा है कि भवानीदास ने गुरुमुख तथा तत्कालीन आय सन्ता से प्राप्त अनुश्रुतियों का सन्निवेश कर पूर्व प्रचलित 'गोसाइ चरित' में कुछ परिवर्तन एवं परिवर्द्धन मात्र किया है।<sup>३</sup> वस्तुतः रचना यह वेणीमाधवदास की ही है।

१ भाषा-काव्य सग्रह, पृ० १३५।

२ सब गुण रहित औगुन सहित तय धरन बिड़ विस्वास है।  
धरि आस सज्ञा नाम की जांच भवानीदास है॥

—गोसाई चरित पत्र ५

३ ताते षष्ठक प्रसंग सुभ, सुनेउ जो सत प्रसाव।

सत सिरामन हू बई, अग्या राम प्रसाव ॥ —वही, पत्र २६।

४ डा० माताप्रसाद गुप्त ने रामचरणदास की टीका सहित १९२४ ई० नवल किशोर प्रेस लखनऊ से प्रकाशित रामचरित मानस की भूमिका में उद्धृत जिस गोसाइ चरित का विवरण दिया है वह वस्तुतः गोसाइ चरित का ही प्रतिरूप है।



इसके चार वष पश्चात् विरचित 'सरोज म सेंगर जी वेणीमाधवदास का परिचय दत्त हुए लिखत हैं—

“दास—२—वेणीमाधवदास, पसका, जिले गाडा, स० १९५५ म उ० यह महात्मा गास्वामी तुलसीदास जी के शिष्य उही के साथ रह हैं और गोसाइ जी के जावन चरित की एक पुस्तक गोसाइ चरित बनाइ है । स० १९६६ म देहान्त हुआ । ’

अयत्र उसी ग्रथ मे गोस्वामी तुलसीदास के जीवनवृत्त का सभित विवरण प्रस्तुत करते हुए कहा गया है ।

‘इनके जीवन चरित्र की एक पुस्तक यणीमाधवदास कवि पसका ग्रामवासी ने जो इनके साथ-साथ रहे बहुत विस्तारपूर्वक लिखी है । उसके देखने से इन महाराज के सब चरित्र प्रकट होते हैं । इस पुस्तक म ऐसी विस्तृत कथा को हम कहा तक सक्षेप मे वणन करें ।’<sup>१</sup>

सेगर जी के उपयुक्त कथन से यह विन्तित होता है कि उहानि ‘गोसाइ चरित को स्वयं देखा था, नही तो वे इस पुस्तक मे ऐसी विस्तृत कथा को ‘हम कहा तक सक्षेप म वणन करे न लिखते । उहोने वेणीमाधवदास की रचना शैली के नमूने के रूप मे जो पत्तियाँ उद्धृत की हैं ‘गोसाइ चरित की प्रस्तुत प्रति मे वे अविकल रूप मे पाई जाती हैं । इससे यह निश्चयपूर्वक कहा जा सकता है कि महेशदत्त शुक्ल तथा शिर्वांसिंह सेंगर द्वारा निर्दिष्ट ‘गोसाइ चरित’ दासायनास अथवा दासानुनास विरचित प्रस्तुत ग्रथ से अभिन्न था और उनके रचयिता एक ही वेणीमाधव दास थे जो पसका अथवा सूकरखेत के निवासी और तुलसी के अन्तेवासी थे ।

शिर्वांसिंह के परवर्ती ‘माइन वर्नाबूलर लिटरेचर आफ हिंदुस्तान के रच-

यह ग्रथ ‘श्री स्वामी गोसाईं तुलसीदासजी को चरित्र नाम से खडगविलास प्रेस, बांकीपुर, पटना द्वारा प्रकाशित रामचरितमानस के साथ १८८१ ई० मे निकल चुका है । डॉ० गुप्त ने भी यह सम्भावना व्यक्त की है कि ‘गोसाईं चरित्र की जिस रूप मे सेंगर जी ने देखा रहा उस रूप मे यह वेणीमाधवदास की ही रचना रही हो और उसे भवानीदास की बनाने के लिए कुछ अक्षय फेरफार बाद मे कर लिया गया हो ।’

—तुलसीदास, (स० १९५३ ई०), पृ० ४३ ।

१ शिर्वांसिंह सरोज (सप्तम संस्करण, नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ), पृ० ४३२ ।

२ शिर्वांसिंह सरोज (सप्तम संस्करण नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ), पृ० ४२८ ।

मिता सर आज ग्रियसन ने भी इसी सामग्री का आधार लेकर वेणीमाधवदास को पसका (सूकरखेत जिला गोडा) का निवासी बताया है।

“वणीमाधवनाम—पसका, जिला गाडा के १६०० ई० में उपस्थित यह गोसाइ तुलसीदास के शिष्य थे और लगातार उनके साथ रहते थे। इन्होंने उनका जीवन चरित ‘गोसाइ चरित्र’ नाम से लिखा था। यह १६४२ ई० में मरे।”

इतना लिखते हुए भी न जाने किस आधार पर उन्होंने सोरो को सूकरखेत का पर्याय मान लिया। यह उल्लेखनीय है कि इस स्रोत से प्राप्त सामग्री में परम्परा में गोडा के ही सूकरखेत से तुलसी का सम्बन्ध बताया जाता रहा है। पीछे अंग्रेज शासक ने भी डिस्ट्रिक्ट गजेटियर के लिए सामग्री एकत्र करते समय इही स्रोतों को विश्वसनीय माना।<sup>१</sup>

यह तो हुआ हिन्दी साहित्य के प्राचीन ऐतिहासिक स्रोतों में पसका अथवा सूकरखेत की वास्तविक स्थिति और तुलसी से उसके सम्बन्ध का दिग्दर्शन। इसी के साथ यह भी देख लेना चाहिये कि उसकी तीर्थ रूप में प्रतिष्ठा का रहस्य क्या है ?

हम यह कह चुके हैं कि बाराह क्षेत्र अथवा सूकरखेत गोडा जिले की दक्षिणी सीमा पर सरयू घाघरा सगम पर स्थित है। इसलिये कुछ लोग इसे ‘सगम’ के नाम से भी पुकारते हैं। स्कन्दपुराण में इसकी महिमा विस्तार से वर्णित है।<sup>२</sup>

१ भाटन वर्नाम्पूतर लिटरेचर आव हिन्दुस्तान (हिन्दो अनुवाद—डा० किशोरी लाल गुप्त), पृ० १३५।

२ “वन बार टू गोंडा बर्बोच हैष अटेड सम मेजर आव लिटररी फेम। येनीमाधोदास आव पसका थाञ ए डिसाइपिल एण्ड कम्पनियन आव तुलसी वास हूज साइफ ही रोट इन बि फाम आव ए पोयम, एटाइटिल्ड ‘वि गोस्वामी चरित’।”

—डिस्ट्रिक्ट गजेटियर, गोंडा पृ० ७५

३ दशकोटि सहस्राणि दशकोटि शतानि च।  
तीर्थानि सरयू नद्या धर्मरोदक सगमे ॥  
निवसति सदा विप्र स्कन्दादवगत मया।  
तस्मिन्सगमसलिले नर स्नात्वा समाहित।  
सतप्य पितृ देवाश्च दत्त्वा धान स्वशक्ति ॥  
पौत्रे मासि विशेषेण य कुर्यात्स्नानमावृष्ट।  
ब्राह्मण क्षत्रियो यश्च शूद्रो वा षणसकर ॥

पौष मास म इस तीर्थ मे स्नान विशेष फलप्रद कहा गया है । यह उल्लेखनीय है कि इस क्षेत्र का वार्षिक पर्वस्नान अत्र भी पौष पूर्णिमा को ही होता है ।<sup>१</sup>

इसके अतिरिक्त 'रुद्रयामल तत्र' के अयोध्या खड मे भी इस सगम तीर्थ का महात्म्य विस्तार से बताया गया है उससे यह स्पष्ट हो जाता है कि यह एक ऐसा पुण्यक्षेत्र है जिसकी वैष्णव मात्र म बढी प्रतिष्ठा है ओर जहाँ प्रतिवष पौष मास मे एक महान् पर्वस्नान होता है । इसी सगम पर सत्ययुग म भगवात ने वाराह अवतार धारणा क्रिया या ओर हिरण्याक्ष का वध करके पृथ्वी का उद्धार किया था, जिसस इस वाराह क्षेत्र की सना मिली ।<sup>२</sup> 'गासाइ चरित' मे गिया गया सूकरखेत का वृत्तांत 'रुद्रयामल तत्र' म उपलब्ध विवरण से पूर्णरूपेण समर्थित है ।

स याति ब्रह्मण स्नान पुनरावृत्ति यजितम् ।

एकत सवतोर्षानि नाना विधि फलानि च ।

सरयू घघरोत्पन्न सगमस्त्वधिको भवेत् ॥

—स्कन्दपुराण (बेकटेववर प्रेस, १९६७ वि०) वष्णव खड—२, अयोध्या

महात्म्य, अध्याय ६, श्लोक ७९, ८१, ८२, ९०, ११० ।

१ डिस्ट्रिक्ट मज्जटिपर, गोंडा पृ० २४६ ।

२ सगमे यतते देवि सवपाप प्रणाशन ।

तत्र स्नात्वा तु यत्पुण्य शृणु तत्कथयामि ते ॥

दशकोटि सहस्राणि दशकोटि शतानि च ।

सरयू घघरे सगे तोषानि सति पावति ॥

हुत्वा वष्णव मन्त्रेण विष्णुलोक व्रजेन्नर ।

पौषे मासि विशेषेण स्नान बहु फलप्रदम् ॥

प्राप्नोति सकल राज्य दीपदानेन सुव्रते ।

यस्तु शुक्ल चतुर्बश्या पौषे च सयतो व्रती ॥

वष्णवो विष्णु पूजां च कुचनरहरे कथाम् ।

गीत-वादित्र नत्यश्च विष्णु सतोष कारक ॥

सगमे विधियद्वा स याति परमां गतिम् ।

ययै वयै तु कतस्य यात्रा धर्माथ-तत्परै ॥

—रुद्रयामल, तत्र, अयोध्या खड, अध्याय २६, श्लोक ३६, ३७, ४३, ५४, ५५ ।

३ पुराकृतयुगे देवि ! पृथिव्युद्धरण कृतम् ।

तत्र निष्पादिततोष वराटेण महात्मना ॥

पुराणा में अवतारा के साथ उनकी शक्तियों के भी आविर्भाव की चर्चा यत्न-तन्त्र मिलती है। 'देवी भागवत' में वाराह भगवान की आदिशक्ति वाराही देवी का उल्लेख है।<sup>१</sup> गाँडा जिले में 'सूकरखेत' के समीप वाराही देवी का स्थान 'उत्तरी भवानी' के नाम से अब भी एक भिद्वपीठ माना जाता है और वह वाराह भगवान की आदिशक्ति रूप में पूजी जाती हैं। यहाँ चैत्र शुक्ल सप्तमी को एक बहुत बड़ा मेला लगता है।

इस सम्बन्ध में एक अथ प्रामाणिक साक्ष्य अनादि काल से रामभक्तों में प्रचलित परिक्रमा के अन्तर्गत गोडा के सूकरखेत की विशिष्ट तीर्थ के रूप में स्थापिता भी है। महात्मा बनादास (सं० १८७८-१९४९ वि०) ने रामभक्ता की तीन परिक्रमाओं का उल्लेख किया है—पचकोसी, चौदहकोमी और चौरासी-कोसी। इनमें से प्रथम दो अयाध्या के सीमित तथा विस्तृत क्षेत्र की प्रदक्षिणायें हैं किन्तु तीसरी अर्थात् चौरासी कोस की परिक्रमा में अयाध्या के निकटवर्ती

हत्वा दुष्ट हिरण्याक्ष पृथ्वी स्थापन कृतम् ।  
अप्र देवा सगर्घ्वा हपनिभर मानसा ॥  
समागम्य स्तुतिं चक्रुः पञ्चवाराहतुष्टये ।  
इति धृत्वा तदा देवा गधर्वा मुनयस्तथा ॥  
तत्रैव निवसन्ति स्म सभङ्गुत्वा विधानतः ॥

—वही, श्लोक ५६, ५७, ५८, ६३ ।

- १ (क) वाराहे च वाराही सर्वे सर्वाध्यासती ।  
मूल प्रकृति सभूता पचीकरण मार्गत ॥  
वाराहे च वाराहश्च ब्रह्मणा सस्तुत पुरा ।  
उद्धार महीं हत्वा हिरण्याक्ष रसातलात् ॥  
पूर्व रूप वाराह च वपार स च लीलया ।  
पूजां चकार तां देवी ध्यात्वा च धरणीं सतीम् ॥

—देवीभागवत, नवम् स्कन्ध, अध्याय ६, श्लोक २५, २७, ३३ ।

(ख) इन्द्रिवट गजेटियर, गोंडा, पृ० ३८ (परिशिष्ट) ।

- २ पचकोस मरजाव धौवह चौरासी कोस

करत प्रदक्षिणा जो अति मन साई है ।

अथय पुण्य ताको साथ तोरय किये को फल

करत पुराण मुनि जाकर बड़ाई है ॥

—उभयप्रबोधक रामायण, पृ० ७८ ।

केजावा, गोडा तथा बस्ती जिला के कतिपय अ य छोटे-छोटे तीर्थ भी आ जाते हैं। पहली दोनो परिक्रमार्थे ब्रमश कार्तिक शुक्ला एकादशी तथा नवमी को आरम्भ होती हैं और एक ही दिन समाप्त हो जाती हैं। किन्तु तीसरी परिक्रमा वैश शुक्ला नवमी ( रामनवमी ) से लेकर पूर्णिमा तथा किमी भी दिन उठाई जा सकती है। उसका आरम्भ मनोरमा<sup>१</sup> से होना है जो अयोध्या से उत्तर गाडा जिले में मनवर नदी के उद्गम स्थल तथा उद्दालक ऋषि के पुत्र नचिकेता के आश्रम रूप में विख्यात है। इसी तीसरी परिक्रमा में सूकरखेत एक विश्राम स्थल है। परिक्रमा समाप्त होने पर यात्री अयोध्या आकर जानकी नवमी ( वैशाख शुक्ल ६ ) के दिन सीताकूड में स्नान करते हैं।

महात्मा वनानास ने उपयुक्त तीन परिक्रमाओं के अनिरिक्त रामभक्तों में परम्परा से प्रचलित एक चौथी बृहत् परिक्रमा का भी वणन किया है जिसके भीतर अधिकांश रामतीर्थ आ जाते हैं। उनके शर्तों में उसका स्वरूप इस प्रकार है—

कासी से उठावे राम नाम सब लावे,  
 प्रागराज में अहावे चित्रकूट कह आवई।  
 नीमपार धावे द्विष अति हरपावे,  
 क्षेत्र सूकर अ हावे मनोरामा पर आवई ॥  
 मिथिला को पाय नहि आनन्द समाय,  
 बक्सर वाराणसी पुर कोशल चलावई ॥

- १ उद्दालकेन यज्ञता पूव ध्याता सरस्वती ।  
 आजगाम सरिच्छ्रेष्ठा त देश मुनि कारणात् ॥  
 पूज्यमाना मुनि गणवल्कलाजिन सवृते ।  
 मनोरमेति विल्याता सा हि तमनसा कृता ॥

—महाभारत, शल्यपर्व, ३८ वां अध्याय, श्लोक २४, २५।

- २ चौरासी कोस की परिक्रमा के विश्राम स्थल ये हैं—सनोरामा, शृगी ऋषि का आश्रम, गोसाइगज सूयकुंड, दराबगज, आस्तिकाश्रम, जमेजय कुण्ड, वमानीगज, मिथ केटरवा, लखनीपुर, पटरगा कमियार, जम्बूतीथ, सूकर खेत, उत्तरी भायनी ( वाराही देवी ), अमबही, गोकुलपुर, टेडी सगम, नयाबगज, नपवा और सिक्करपुर ।

—विशेष विवरण के लिए देखिये—अयोध्या विग्वान, पृ० ५८ ५९, (प० रामरक्षा त्रिपाठी, एम० ए०)

बड़े 'बनादास' परिव्रज्याओं को स्वरूप यह,  
 'श्री' मियाराम मुख मांगी सोई पावई ॥'

यहाँ भी नीमपार (नैमिपारण्य) के पश्चात् और मनोरमा के पूर्व जिस 'क्षेत्र सूकर अथवा 'सूकरखेत' का उल्लेख है, वह गाडा जिले का ही सूकरखेत है क्योंकि उसकी स्थिति उपयुक्त दोनों तीर्थों—नीमपार और मनोरमा के मध्य में है। 'उभय प्रबोधक रामायण' में बनादास जी ने इसी प्रसंग में अपने तीर्थटन का वर्णन करते हुए सूकरखेत के स्थान पर उसके दूसरे नाम 'भगम' की भी चर्चा की है।<sup>१</sup> इसमें उक्त धारणा निर्भ्रांत ठहरती है।

'गौतम चन्द्रिका' में एक स्थान पर वृष्णदत्त मिश्र ने तुलसी द्वारा रामतीर्थों के पर्यटन का भी उल्लेख किया है। उसमें लिए गए प्रारम्भिक तथा अन्तिम यात्राक्रम में बनादास जी द्वारा प्रस्तुत परिव्रज्या का स्वरूप निम्नकुल मिल जाता है।<sup>२</sup>

१ रामधृता, पत्र ६६। इस सगम नाम का उल्लेख 'द्वयामल तत्र' और 'गौतम चन्द्रिका' दोनों ग्रंथों में हुआ है। महात्मा बनादास ने भी सूकरखेत के उस पर्याय की चर्चा अपने यात्रा विवरण में की है।

२ काशी तीर्थराज चित्रकूट नीमसार लके,  
 सगम औ मनोरमा मिथिला सिधार्ई है।  
 बनादास बखसर वाराणसी पूर कर,  
 रोशैं सीधराम मुख मांग तीन पाई है ॥

—उभयप्रबोधक रामायण, प० ७८।

३ रामभक्ति रसमय भरो, सरि गोमती नहाइ।

ज्ञानखानि अथ हानि कर, कासी निवसे आइ ॥

तीर्थराज भरि मकर नहाहीं। पागुन चित्रकूट चलि जाहीं ॥

अवध निवास करहि मधुमासा। आइ करहि पुनि कासी वासा ॥

लागत मागसीय मन भावन। कथित कृष्णगीता अति पावन ॥

रामविवाह महोत्सव जानी। तुलसी हिये भक्ति हुलसानो ॥

गुरु सन यहि मोहि सग लिधार्ई। सिय मइके मुति रमा लपार्ई ॥

अवध सत भटलो निहारो। गावहि नारि मैथिली गारो ॥

बकसर वापों गौतमो, तुलसी मुदिन नहाइ।

मुक्ति जन्म महिमा मड़ो, कासी निवसे आइ ॥

—गौतम चन्द्रिका में तुलसी का वृत्तान्त, पृ० ११।

इसो के साथ यह भी देख लेना चाहिये कि सूकरखेत का नामोल्लेख तुलसी ने 'रामचरितमानस' के जिस दोहे में किया है उसकी टीका करते हुए मानस मर्मना ने क्या विचार प्रकट किये हैं और उनकी इस स्थान की स्थिति विषयक क्या धारणा रही है। इससे यह भी प्रकट हो जायेगा कि प्राचीन काल से साधु रामाज और तुलसी साहित्य के प्रेमिया में जिस सूकरखेत को भावता दी जाती रही है। यहाँ 'मानस' की बेचल उन्हीं टीकाओं में उद्धरण दिए जायेंगे जिनकी रचना सूकरखेत मन्मधी विवाह दिवने के बहुत पहले १६ वीं शताब्दी में हो चुकी थी।

रामचरितमानस के प्रथम टीकाकार महात्मा रामचरणदास ने अपनी 'रामायण टीका' यद्यपि स० १८८० में समाप्त कर ली थी किन्तु बालकाठ का तिलक, जिसमें वह छत्र आया है, स० १८५० में ही पूरा हो चुका था।<sup>१</sup> राम चरितमानस बालकाठ के सातवें दोहे की टीका करते हुए वे लिखते हैं—

मूल—सो मैं निच गुह सनसुनी, क्या मो सूकरखेत ।

समुझी नहीं तस बालपन, तब अति रहेउँ अचेत ॥

बोहाय—सोई क्या हमारे गुहन को जाने वहाँ त प्राप्त भई। सोई क्या है मैं अपने गुह ते मुया है। क्या मु कहे सुष्टु पदार्थ को उत्पन्न करे ताको सूकरखेत कही। तहाँ सुष्टु पदार्थ श्री रामयश गुण चरित सो सरसग में गुहन त सुन्यो है अथवा सूकरखेत कहै बाराह क्षेत्र, थी अयोध्या के पश्चिम तीनि योजन सरयूतीर तहाँ सुनेउँ तब मेरी बाल अवस्था रहे अचेत दसा रहै।

इसके पश्चात् ग० १६३२ में विरचित 'रामायण भास प्रचारिणी टीका' में मानस के उपयुक्त दोहे का अर्थ करते हुए जानकीदास कहते हैं—

'अब जो कोई पूछै कि भला तुम वहाँ पायो तापर कहत हैं कि पुन वही क्या जो शम्भु कीह फेरि काक मुशुण्डि दीह तिन्हते यानवत्वय पाये त भख्दान प्रति गये सा क्या कहैं मे हमारे गुरुजी को प्राप्त भई सो हम अपने गुरुजी से सुना कहा सुना सूकरखेत नाम बाराह क्षेत्र जो थी अयोध्या जो से पश्चिम भाग में सरयू घाघरा को सगम है तहाँ पर अथवा सूकर नाम सुष्टु वस्तु जो करे सो का है सत सग सो सतसग क्षेत्र में अपने गुह स सुनी परतु समझी नहीं तस

१ सवत अष्टादस शुभग, सत्तरि अठ सपाल ।

रामचरण ऋतुराज तिथि, पक्ष शुक्ल वसाख ॥

—रामचरितमानस (ले० रामचरणदास)

२ रामायण टीका (रामचरणदास) नवलकिशोर प्रेस १८८७ ई० पृ० ६१ ।

जस श्री रामचरित मानस को स्वरूप है काहे ते कि तव बाल्यावस्था अनि अचेत रहेउ ।<sup>१</sup>

‘मानस’ की ‘सत उमनी टीका’ के रचयिता ने इसी प्रसंग की ‘याख्या’ करते हुए लिखा है—

‘तत्पश्चात् नैमिषवन के बाराह क्षेत्र नाम स्थान का साथ ही आये । तहाँ कुछ दिन रह । वा वाल्मीकि अप्यात्म इत्यादि रामायण श्रवण कियो । उनकी वृथा करि काव्य-शक्ति भई । बाराह क्षेत्र में, जा अयोध्या के पश्चिम ओर है ।’<sup>२</sup>

गाँव के इस सूत्ररक्षेत में पीप की पूर्णिमा का एक विशाल मेला लगता है जिसमें दूर-दूर से साधुओं के अखाड़े कल्पवास के लिये आते हैं । पसवा गाँव में ही, बाराह मन्दिर<sup>३</sup> और धाघरा तट के बीच, एक पुरानी कुटी है जिस वहाँ के लोग नरहरिदास की कुटी प्रस्तावित हैं । इस स्थान में सीताराम लक्ष्मण विप्रह स्थापित हैं । मन्दिर में पुराने बस्ता में रेंधा हुआ हस्तलिखित एवं प्राचीन मुद्रित पुस्तका का छोटा-सा पुस्तकालय भी है । उसमें आनंदराम नामक किसी व्यक्ति की लिखी स० १८८४ की एक हस्तलिखित रामचरितमानस की प्रति सुरक्षित है । इस गद्दी पर अब बाबा जगदेवनाथ आसीत हैं । इनके गुरु स्वर्गीय बाबा ‘रामश्रवणनाथ’ ने मुझे १८ वर्ष पूर्व अपनी परम्परा नरहरिदास के द्वितीय शिष्य रामकिमुतनाथ द्वारा प्रवर्तित बताई थी और अपने को नरहरिदास जी के पश्चात् उस गद्दी का आठवाँ महान्त बताया था । सम्भव है लिखित रूप में पर परा सुरक्षित न रहने के कारण पूर्वाचार्यों की नामावली में दो चार पीढ़ियाँ छूट गई हों ।

गुरु के साथ ही गोस्वामी तुलसीनाथ के तथाकथित चचेरे भाई और सोरा सामग्री के मेहण्ड, पमिद्ध वृष्णभक्त कवि नानाथ के भी निवासस्थान की स्थिति पर विचार कर लेना अप्रासंगिक न होगा । ‘भक्तमाल’ में वे चन्द्रहास के भाई और रामपुर नामक गाँव के रहने वाले बताए गये हैं । ‘दो सौ बावन वैष्णवों का वार्ता’ के अनुसार वे पूरज के निवासी और तुलसीनाथ के छोटे भाई थे । पहले वे रामानन्दीय सम्प्रदाय में दीक्षित हुए थे और तुलसीदास के माय काशी

१ रामायण मानस प्रचारिका टीका ले० जानकीदास पृ० १२४ ।

२ सत उमनी टीका (१८८६ ई०) बालकांड प० २०४ ।

३ सरकारी कागजों में “कोठरी बाराह जी” का विवरण नरस खसरा आबादी गाँव पसका नम्बरो ४६७ हाता नम्बरो ६ में दिया गया है ।



में निवास करते थे। उनकी प्रारम्भिक श्रृंगारी प्रवृत्ति कालान्तर में आराध्य देव कृष्ण की माधुर्य भक्ति में परिणत हो गई और मथुरा जाकर उन्होंने गोम्बामी विठ्ठलनाथ जी का शिष्यत्व ग्रहण कर लिया। तुलसी ने उन्हें कृष्णोपासना से विमुख कर रामभक्त बनाने का प्रयत्न किया किन्तु असफल रहे। छोटे भाई के व्रज चले जाने पर एक बार वे उनसे मिलने गोवर्द्धन गए। वहा नन्ददास की प्रार्थना पर श्रीनाथ जी ने तुलसीदास को धनुषमाणधारी राम के रूप में स्थान दिया। इसके अनन्तर गोम्बामी विठ्ठलनाथ की आनानुसार उनके पुत्र रघुनाथ ने नवविवाहित वधु जानकी सहित इष्टदेव के रूप में अपने 'सेवक' तुलसीदास को दशन देकर वृत्तार्थ किया। लौटते समय तुलसीदास ने नन्ददास से कृष्णव्रत त्यागकर अपने साथ काशी चलने का अनुरोध किया, किन्तु वे राजी न हुए। प्रत्युत उन्होंने तुलसीदास को ही व्रजभूमि की महिमा बताकर वहा रहते हुए अपना जीवन मफन करने की सलाह दी।

सारा आ दोलन के प्रवक्तको ने इन रेखात्रा के महारे नन्ददास की जन्मभूमि, जानि वरा-परम्परा, ससुराल, गुह मदिर आदि की खोज करके और भक्ति

१ यह क्या तुलसी की वृत्तव्रत पात्रा के समय घटने वाली उस घटना के विरोध में गढ़ी हुई जान पड़ती है जिसके सम्बन्ध में 'गोसाइ चरित' के 'श्री नाभा प्रसंग' में ये लोक प्रसिद्ध दोहे लिखे मिलते हैं—

कहा कहीं छवि आज की, भले बने ही नाथ ।

तुलसी मस्तक जब नव, धनुष बान लेउ हाथ ॥

मुरली मुकूट बुराह क, धनुष बान लिय हाथ ।

तुलसी लखि छवि बास की, नाथ भये रघुनाथ ॥

महाराष्ट्र के प्रसिद्ध रामभक्त कवि मोरोपत ने इसी घटना पर 'कैकावली' में निम्नांकित छंद लिखा है—

श्री कृष्ण मूर्ति जेणेकेली श्री राम मूर्ति सज्जन हो ।

राम सुत मयूर म्हाणे त्याचा सुयशोमृतान मज्जन हो ॥

यहाँ भी श्री कृष्णमूर्ति के श्री राममूर्ति में परवर्तित होने का श्रेय तुलसी जी अपने इष्टदेव में एकांत श्रद्धा को ही दिया गया है, किसी कृष्णोपासक की मध्यस्थता को नहीं। कवि मोरोपत का समय १६ वीं शती है। महाराष्ट्र प्रदेश तक तुलसी की जीवनी से सम्बद्ध कथाओं के पहुँचने में कुछ काल अवश्य लगा होगा। अतः इसका साक्ष्य बहुत अश तक प्रमाण कोटि में रखा जा सकता है।

साहित्य में उपलब्ध नन्ददास विषयक सूत्रा से उनकी सगति वैठाकर तुलसीदास के गृहस्थ जीवन का एक रंगीन चित्र प्रस्तुत किया है। किन्तु इस सारी सामग्री का मूलस्रोत 'दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता' की प्रामाणिकता अत्यन्त ही सन्दिग्ध है।<sup>१</sup> ऐसी स्थिति में उसने द्वारा प्रस्तुत तथ्यों को ऐतिहासिक महत्त्व नहीं दिया जा सकता।

सारी सामग्री में नन्ददास के पूर्वज सोरो का निकटवर्ती ग्राम रामपुर के निवासी बताया गया है और यह कहा गया है कि किसी कारणवश उनके पिता उम गाँव को छोड़कर सोरो के योगमाय मुहल्ले में आ गये थे। स्थानीय जनश्रुति के आधार पर यह मिथ्या करने का प्रयास किया गया है कि एक बार नन्ददास वही बाहर से कुछ धन कमाकर लाये थे। उसी से उन्होंने रामपुर को छोड़ा और उसका नाम बदलकर श्यामपुर रखा था। इसके समर्थन में पास के गाँवा में प्रचलित 'नन्ददास सुकुल कियो रामपुर से श्यामपुर' की कहावत प्रस्तुत की गई है। 'वार्ता' और 'भक्तमाल' में उपलब्ध नन्ददास की जन्मभूमि सम्बन्धी समस्त सामग्री का समीक्षात्मक अध्ययन करने में इतना ही विन्तित हाता है कि वे मथुरा वृन्दावन से पूर्व निशा में स्थित रामपुर नामक किसी गाँव के निवासी थे। यह रामपुर किस जिले में था इसके निर्णय के साधन अब अवशिष्ट नहीं रहे।

श्री प्रभुदयाल भीतल ने साम्प्रदायिक साहित्य में प्राप्त नन्ददास विरचित निम्नांकित छप्पय को सोरो-सामग्री का समर्थक कहा है—

श्री मत्तुलमीनास स्वगुरु भ्राना पद बन्दे ।  
सप गनानन विपुल ज्ञान जिन पाइ अनन्दे ॥

१ हिन्दी साहित्य का इतिहास—आचाप प० रामचन्द्र शुक्ल, पृ० ४८०। अष्टदशप (डा० धीरेन्द्र वर्मा) पृ० ११२ (टि०) हिन्दी अनुशीलन, बय ६, अंक २ स० २२१० में प्रकाशित डा० माताप्रसाद गुप्त का 'क्या ८४ और २५२ वैष्णवन की वार्ताएँ उन्नीसवीं शताब्दी विक्रमों के पूव लिपिबद्ध नहीं हुई थीं?' शीघ्रक लेख।

हिन्दी साहित्य (डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी), पृ० ३६५।

ना० प्र० पत्रिका—अंक २-३, स० २००६ 'चौरासी और दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता' शीघ्रक श्री ललिताप्रसाद कुबे।

२ तुलसीदास और उनका काव्य—श्री रामनरेश त्रिपाठी, पृ० ७८।

राम चरित जिन कीन ताप त्रय फलमलहारी ।  
करि पोथी पर सही आदरेउ आपु मुरारी ॥  
राखी जिसकी टेक मदन मोहन धनुषारी ।  
बालमीकि अवतार कहत जेहि सत प्रचारी ॥  
नन्दराम के हृदय नयन को खोनेउ सारै ।  
उज्ज्वल रस टपवाइ शियो जानत सब कोई ॥

मीनल जी ने अनुमार इस प्रसंग में 'गुरुभ्राता से रचयिता का तात्पर्य है 'बडा भाई । यह विचारणीय है कि 'गुरु भ्राता' लोचन प्रचलित 'गुरुभाई' का प्रयास है जिसका अर्थ सतीर्थ, सहनीभित अथवा सहपाठी होना है, अप्रज नहीं । वार्ता-साहित्य में नन्दराम गोस्वामी तुलसादास व माय वाणी में निवास करने और रामानन्दीय सम्प्रदाय में दीक्षा लेने की चर्चा है । मीनल जी द्वारा उद्धृत उपायुक्त छंद में वाणी के प्रसिद्ध विद्वान् 'शेष सनातन' का विद्यागुरु के रूप में

१ मेरे विचार में यहाँ 'पुरारी' पाठ होना चाहिए 'पुरारी नहीं । गोस्वामीजी के जीवनयत्न से सम्बद्ध एक प्रसिद्ध किंवदन्ती के अनुसार, जिसका उपयोग प्रायः तुलसी के सभी जीवनलेखकों ने किया है, भाषा में लिखे गये मानस की बढ़ती हुई लोकप्रियता को देख कर काशी के सत्सृताभिमानी पंडितों ने उनके समक्ष यह प्रस्ताव रखा कि यदि विश्वनाथ जी उसकी सबधेच्छता प्रमाणित कर दें तो हम विरोध करना छोड़ देंगे । कहते हैं गोस्वामी जी ने यह शत मान ली । फलतः उसी रात को 'रामचरित मानस' की एक प्रति विश्वनाथ मंदिर में कपाट में बन्द होते समय रख दी गई । प्रातः काल द्वार खुलने पर एकत्र जनसमुदाय यह देख कर स्तब्ध रह गया कि उक्त ग्रन्थ पर विश्वनाथजी की 'सही' अंकित थी । प्रसंग में निर्विष्ट 'सही' से रचयिता का आशय त्रिपुरारि शिव द्वारा की गई उक्त सही से है, 'पुरारि' से उसका कोई सम्बन्ध संक्षिप्त नहीं होता ।

२ अष्टछाप परिचय—श्री प्रभुदयाल मोतल, पृ० ३०२ ।

३ तुलसी के काशीवासी विद्यागुरु 'शेष सनातन' अद्वैत मतानुयायी थे । डा० पीताम्बरवत्स बडध्याल ने इनकी अभिप्रता की सम्भावना शेष पंडित से व्यक्त की है जो शंकराचार्य के 'सर्व सिद्धांत सग्रह' के टीकाकर शेष गोविंद के पिता थे । ये रामचरित मानस के विख्यात प्रशासक मधुसूदन सरस्वती के समसामयिक थे जिन्हें म० म० डा० गोपीनाथ कविराज ने स० १६५७ तक विद्यमान रहना स्वीकार किया है । डा० बडध्याल का अनुमान है कि

उल्लेख भी है। ये तप्य नन्ददास और तुलसीदास का गुरुभ्रातृत्व सर्वथा सगत ठहराते हैं। अतः सोरो-सामग्री का समर्थक बहा जाने वाला उपयुक्त छन्द स्वतः तुलसी और नन्दनामक सहपाठी होने की ही पुष्टि करता है—सगोत्री अथवा पितृव्य पुत्र होने की नहीं।

इसके अतिरिक्त प्रस्तुत छन्द में संकेतित अथ तप्य भी सोरो सामग्री तथा उसकी एक प्रमुख आधारशिला 'दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता' में वर्णित घटना का प्रात्याख्यान करते हैं। प्रथम पक्ति में जिस 'स्वगुरुभ्राता तुलसी की पद-बदना नददाम ने की है' उसकी 'टिक रचने के लिए ही 'मदामोहन श्री वृष्ण ने 'धनुषधारी' राम का रूप धारण किया था और उसी के नियम उपदेश से विषयासक्त नन्ददास को भगवदासक्ति की प्रेरणा मिली थी। इसके विपरीत मनुष्यविरत साम्प्रदायिकता के रग में सराबोर 'वार्ता' के 'नददास पग पग पर उपास्य के स्वरूप-भेद को लेकर तुलसी का विरोध करते और अपनी ऊँची आध्यात्मिक स्थिति के द्वारा उनका पथप्रदर्शन करते लिखाए गए हैं। नन्ददास की उपयुक्त रचना में अभिव्यक्त आत्मोल्लेखा के होते हुए भी परवर्ती भक्तों द्वारा साम्प्रदायिक महत्त्व को बढ़ाने के लिए गढ़ी गई वार्ता-ना पर विश्वास कैसे किया जाय। समझ में नहीं आता कि मीतल जी ने इस छन्द को सोरो सामग्री का समर्थक कैसे मान लिया ?

'गोसाइ चरित' में नददास को तुलसी का 'गुरुधनु' बताया गया है जो पूर्वोक्त 'गुरुभ्राता' का ही पर्याय है। किन्तु यहाँ ये मनाढय नहीं कायकुब्ज कहे गये हैं—

कायकुब्ज एक विप्र नगर बनउज डिंगवासी ।  
श्री गाना गुरुधनु रहै श्री वृष्ण उपासी ॥  
नन्ददास गुन नाम स्वच्छ वृत्त पद जग गावै ।  
और बुद्धिम्बी विप्र भक्ति प्रतिपच्छ न भावै ।

शेष पंडित अपने पुत्र शेष गोविंद की बाल्यावस्था में ही विवगत हो गये थे। इसलिए उनकी शिक्षा बोक्षा आचार्य मधुसूदन सरस्वती की देख रेख में हुई (योग प्रवाह पृ० २६८-२६९)। सगुणमार्गी भक्त गोस्वामी तुलसीदास की दार्शनिक विचारधारा पर अद्वैतमत का गहरा प्रभाव इहाँ शेषसनातन द्वारा प्राप्त शिक्षा का फल था। नददास के 'भ्रमरगीत' में उद्धृत द्वारा अद्वैत सिद्धांत का निरूपण तथा भोली भाली गौपियों की ताकिकता भी इहाँ का प्रसाद हो तो कोई आश्चर्य नहीं।

१ गोसाइ चरित, पत्र ५२ ।

‘गोसाइ चरित’ के प्रसंगों के उद्धारक भवानीदाम ने षडाक्षि प्रमाणवश ‘नन्ददास प्रसंग’ में एक अन्य नन्ददास का वृत्त सप्रथित कर दिया है जिन्होंने अपने तपोजल से, भक्तमाल के अनुसार, एक मरी हुई गाय जिला दी थी ।<sup>१</sup> प्रियादास ने इनको बरेली निवासी बताया है । इतना छोड़कर उक्त प्रसंग में दिया गया समस्त वृत्त प्रसिद्ध अष्टछापी नन्ददास का ही है । ‘गोसाइ चरित’ के इन नन्ददास का आचरण तुलसी के कृष्णोपासक गुन्वधु नन्ददास के सर्वथा अनुरूप है । नन्ददास की रामावतार सम्बन्धी रचनाओं से यह स्पष्ट विदित होता है कि तुलसी की भांति वे भी राम और कृष्ण में अनेक भावना रखते थे और उनकी लीला गाकर अपनी वाणी पवित्र करते थे ।<sup>२</sup>

रामगुणगान के साथ ही नन्ददास द्वारा लिखे गये ‘हनुमान जी के पद’<sup>३</sup>

१ नाभा ज्यों नन्ददास मुई एक दक्षि जिलाई ।

—श्रीभक्तमाल सटीक (रूपकला), पृ० ४६०

भवानीदास की ही भांति ‘गोस्वामी तुलसीदास का जीवन चरित’ की रचयिता रानी कमल कुवरि और तुलसी साहित्य के प्रसिद्ध टीकाकार ब्रजनाथ कूमवशी ने भी बरेली जिले के हवेली नामक ग्राम के निवासी इहीं नन्ददास को तुलसी का भाई माना है ।

२ रामकृष्ण कहिए उठि भोर ।

ओहि अवधेश वही सज्जोवन धनुषधरन अरु मालनचोर ॥  
इत में अयोध्या निमल सरजू उत जमुना जल करत किलोल ।  
उत में दशरथ पुत्र कहाए इत कहाए (बाबा) नदकिशोर ॥  
उत में जानकी बाए विराजे इत राधे संग जुगल किशोर ।  
नन्ददास के ये दोउ ठाकुर दशरथसुत बाबा नन्द किशोर ॥

—नन्ददास प्रयागवली पृ० २७६ पं० ।

३ जब कूद्यो हनुमान उदधि जानकी सुधि लेन को ।

बेपत दसमाय अपने नाथ को सुखदेन को ॥  
अहन बदन तेज सबन पीत नयन गात हे ।  
उत्तर ते दक्षिण मानों मेरु उडयो जात हे ॥  
जा प्रभु को नाम लेत भव जल तरि जात हे ।  
सन जोजन सिंधु कूद्यो तो कितो एक बात हे ॥  
धो रामधर पद प्रताप जग में जस जाको ।  
‘नन्ददास’ सुरनर मुनि कौतुक भूले ताको ॥ —वही, पृ० २८५

इस सम्भावना को और बदल देते हैं कि उनके भक्त हृदय पर किसी समय रामभक्ति की छाप पड़ी थी। मेरी यह धारणा है कि ये रामानंदीय सखार नन्ददास को अपने गुरु नरहरिदास तथा गुरुभाई तुलसी के दीघ सहवास से प्राप्त हुए थे। इनसे सोरो-सामग्री में चित्रित 'रामपुर' को खरीदकर 'श्यामपुर' बनाने वाले 'महाप्रभू के सेवक' कट्टरपथी वृष्णोपासक नन्ददास के आचरण का प्रत्यक्ष विरोध पडता है और यही तथ्य साम्प्रदायिक द्वेष से अनुप्राणित उक्त वार्ता की स्थिति स्पष्ट कर देता है। सोरा के नन्ददास, लीलापुरुषोत्तम के चरित गायक उदार, निस्पृह, भावावेशी भक्त तुलसी के गुरुबन्धु नन्ददास की अपेक्षा अत्यंत अनुदार एवं लोकप्रपञ्चग्रस्त प्राणी प्रतीत होते हैं। उनका तुलसी से बिन्दुमार्गी बन्धुत्व प्रमाणित करने के लिए सोरो-पथ के समर्थको ने जो प्रमाण प्रस्तुत किए हैं वे अत्यन्त एकांगी एवं भ्रामक हैं। नन्ददास की वृत्तियां में उपलब्ध अन्त साध्यों से उनकी सारहीनता स्पष्ट हो जाती है।

सोरों के समर्थको ने अपनी उपपत्ति की पुष्टि के लिए तुलसीदास की वृत्तियों में प्रयुक्त भाषा की भी गवाही प्रस्तुत की है और उसमें से कुछ ऐसे शब्द, वाक्यांश, लाकोक्तिया तथा मुहाविरे, दूढ़ निकाले जा, उनके अनुसार, सोरा के आसपास ही व्यवहृत होते हैं।<sup>१</sup> किन्तु डा० गोवन्दनलाल शुक्ल ने, जिनका उस प्रदेश से घनिष्ठ सम्बन्ध रहा है और जो वहाँ के रीति-रिवाजों तथा भाषा से मलीमाति परिचित हैं, उनकी यह धारणा सर्वथा निमूल बताई है। उन्होंने विस्तृत परीक्षा के अनन्तर तुलसी के ठेठ प्रयोगों को पूर्वी अवधी का अभिन्न अंग मानते हुए तुलसी साहित्य में निर्दिष्ट सस्कार, सगीत तथा व्यवसाय सम्बन्धी कतिपय शब्दों का सोरो में अप्रचलित तथा वहाँ के निवासियों को उनसे अपरिचित बताया है।<sup>२</sup>

तुलसी साहित्य में प्रयुक्त भाषा का विकासात्मक अव्ययन से यह विदित होता है कि उनकी वृत्तियां में क्रमशः ठेठ अवधी (रामललानहछू, पार्वती मगल, जानकी मगल आदि) परिष्कृत अथवा संस्कृतनिष्ठ अवधी (रामचरित मानस, रामाना

१ तोरथ वर सौकर निकर, धाम रामपुर वास ।  
सोई रामपुर श्यामपुर, करयो पिता नन्ददास ॥

—सूकरक्षेत्र माहात्म्य (वृष्णदास) ने अष्टधाप और चल्लभ सम्प्रदाय—  
डा० बोनदयाल गुप्त, पृ० २०१ पर उद्धृत ।

२ तुलसीदास और उनका साहित्य, पृ० ७२-७५ ।

३ सोरों सामग्री पर एक दृष्टि—डा० गोवन्दनलाल शुक्ल, पृ० २७ २६ ।

प्रश्न, परवै ) तथा ब्रजभाषा ( वैराग्य-मनोपती, गीतावली, श्रीकृष्ण गीतावली, दोहावली, कवितावली और वितयपत्रिका) का प्रयोग हुआ है। इससे यह निष्कर्ष निकालना असंभव न होगा कि उन्होंने अपनी आरम्भिक रचनाओं में जिस भाषा का प्रयोग किया वही उनकी मातृभाषा अथवा बाल्यावस्था में गृहीत भाषा थी। संयोगवश वह भाषा उसी स्थान की है जहाँ उन्होंने अति अचेतन अवस्था में गुह के अन्तेवासी रूप में अपना बाल्यकाल व्यतीत किया था। उनके द्वारा प्रयुक्त शब्दावली और प्रतीक उसी क्षेत्र की भाषा में चुने गये हैं। शनैः शनैः शिक्षा एवं सामाजिक सम्पर्क से ज्ञानवृद्धि होने पर प्रौढ़ावस्था में उन्होंने उसका परिष्कार किया और उसी में मानस की रचना की। आगे चलकर साहित्यानुशीलन एवं देशाटन करते हुए उन्होंने यह अनुभव किया कि, बल्लभ, राधाबल्लभ तथा हरिदासी सम्प्रदाय के कृष्णभक्ता और दरबारी कवियों ने ब्रजभाषा में अत्यन्त सरस काव्य रचना की है। उन्होंने देखा कि इसी गुण के कारण वह उत्तरी भारत की एक सामान्य काव्य भाषा के रूप में समाहित हो चुकी है, अतः अपनी अधिकांश उत्तरकालीन कृतियों में उन्होंने ब्रजभाषा को ही भावाभिव्यक्ति का माध्यम बनाया। यह उल्लेखनीय है कि तुलसी ने ब्रजभाषा का ग्रहण एक परिनिष्ठित काव्यभाषा के रूप में किया था जैसे उनके अल्पसमकालीन एवं परवर्ती अवध प्रदशवासी भक्ति एवं रीति परम्परा के कवियों ने किया था, कुछ मातृभाषा के रूप में नहीं। उनकी ब्रजभाषा में लिखी गयी रचनाओं में पूर्वी अवधी के शब्दों तथा मुहावरियों का प्रचुर प्रयोग इसका प्रत्यक्ष प्रमाण है।<sup>१</sup> इसके विप-

१ (क) वैराग्य सवोपनी छ० १३, की मुलपट बोहे रहे। १४, ताहि। १६, गहेउ ३३, सहिवानु। ३६, जसेहु कसेहु। ४० हम नीके बेला कय जाई। ४५, किरो बोहाई राम को गे कामाविक भागि।

(ख) गीतावली—बासकांड छ २ असहो बुसहो। ४, कोखिबुझानी। १७, लेदभा। ८३, बनियाँ।

अयोध्या—१८, बटोही। २०, चकचौधो लागे। २८, बरियार। ३१, बराइ। ३२, निसरिगे। ३७, देखवया। ४०, उपही। ४६, उकटेउ। ६६, गोड। ८७, चुचुकारे। ८६, चाह।

आरण्य—३, गवहि। ५, मेरवात। १७, अंधइ (भोजनोपरान्त हाथ मुह धोकर)। किष्किधा—२, बदिबदि।

सुन्दर—१, तरकि, लुक। १२, मोखे। २५, हुमकि, ताकि ३७, सई।

उत्तर—, धरहरिकरत। ६, बतकही। २१, सुधर। २२, कूटि।

रोन ब्रह्मभाषा क्षेत्र म उन्नत हिन्दी के प्रसिद्ध कविता म एक भी ऐसा नहीं मिलाई देता जिनके ठेठ अवधो म सफर काय-रचना की हा । किसी विशेष उद्देश्य की सिद्धि के लिए तुलसी इसके अपवाद नहीं बनाय जा सकते ।

तुलसी की ठेठ एव परिष्कृत अवधो मे लिखी गई कृतियो मे प्रयुक्त भाषा का स्वरूप प्राय वही है जा आज भी गाडा जिले के पश्चिमी एव दक्षिणी सीमान्त ब्रमश घाघरा के पुल से लेकर बस्ती जिले के पूर्वी भाग म बोली जाती है । 'सूकरखेत' इसके मध्य म स्थित है । इससे भी यही विदित होता है कि इस प्रदेश मे गोस्वामी जी ने अपने बाल्यजीवन का अधिकांश व्यतीत किया था यो कि किसी स्थान की भाषा अपनी मौलिक प्रवृत्तिया सहित उसी अवस्था म पूर्ण-रूपेण ग्रहण की जा सकती है । इसी भाँति दीर्घकाल तक काशी और चित्रकूट में निवास करने क कारण उनकी कृतियो में क्रमश भोजपुरी और बुंदेली के भी शब्द और मुहाबिरे स्वाभाविक रूप में आ गये हैं ।

गोस्वामी जी की रचनामा मे यज्ञ-तंत्र फारसी तथा अरबी भाषा के शब्दो का प्रयोग देखकर कुछ आलोचको ने उहे उत्तर प्रदेश क पश्चिमी अचल अर्थात् सोरा का निवासी सिद्ध करने का प्रयास किया है ।<sup>१</sup> उनकी यह दलील है कि

(ग) विनय पत्रिका—छ० ३३, खोंची । ३४, बिलगु न मानिए । ७०, खगिहै । ७५, ऐसी हठ जसी गाँठि परेसन की । ७६, रोटी लूगा नीके राख । १०१, बराय । १०६, भेई । १४१, डहकत । २०४, खटाई । २१६, रिरिहा । २२६, कौर । २६१, आज थाव । १८४, फोकट । १८६, अटसट, सरस, सटोला, बिहल, बटोरा ।

(घ) बोहाबली—छ० १५, मोठो अरु कठवत भरो । १४३, पुरखा । १६८, इगारहो । ३७७, निरावहि । ४०२, भरवर । ४२२, भग्हाये । ४६६, अगइ । ४७८, पाही खेती ।

(च) कवितावली—मुदरकांड—छ० ४, निमुकि । ६, बुबुक बुबुकारी देत ११, दाढ़ीजार ।

लवा षण्ड—१६, टसकतु । २०, बहपट । ४६, फेररि फेररि ।

उत्तर षण्ड—६, उधारि । १२, बेसाहे । १६, रिनिया । २२, खटाई । २४, देवया । ४६, खुरपा खटिया । ६३, गढ़ि गुढ़ि छोखि छालि । ६७, कहाँ जाई का करो ।

१ प० रामनरेश त्रिपाठी ने तुलसी की भाषा पर तत्कालीन राजभाषा फारसी के प्रभाव को विवेचना करते हुए उनके द्वारा प्रयुक्त शब्दों के जो उदाहरण



सोरो और उसके आस-पास मुसलमानों की बस्तियाँ अधिक हैं। इसी से अरबी फारसी के जितने शब्द पश्चिमी हिन्दी में मिलते हैं उतने पूर्वी हिन्दी में नहीं।<sup>१</sup> इस सम्बन्ध में इतना ही संकेत कर देना पर्याप्त होगा कि यदि मुसलमानों की बहुसंख्यक बस्ती और उनका सम्पर्क की तुलसी साहित्य में अरबी फारसी के शब्दों के अबाध प्रवेश का कारण मान लिया जाय तो सोरो की अपेक्षा मानस की आविर्भावमयली अयोध्या और उसका निकटवर्ती प्रदेश तुलसी की जन्मभूमि होने का अधिक अधिकारी है। इतिहास इसका साक्षी है कि उत्तरी भारत में दिल्ली और आगरा को छोड़कर अयोध्या ही सुलताना के समय (१२८० ई०)<sup>२</sup> से लेकर नवाब आसफुद्दौला के शासन काल, १७७५ ई० तक लगातार पाँच सौ वर्षों तक प्रान्तीय शासन का मुख्य केंद्र रहा है और उसी के नाम पर उक्त सरकार और गूरे को अवध की राजा दी जाती रही है।<sup>३</sup> इसके धार्मिक महत्त्व

दिये हैं उनमें से एक है 'सोपर'। इसका शुद्ध फारसी रूप 'सिपर' है जिसका अर्थ होता है ढाल। त्रिपाठी जी का निश्चित मत है कि 'यदि सोपर' शब्द उनकी बोलचाल में आमतौर से प्रचलित न होता तो फारसी कोष में से निकाल कर वे इस शब्द को प्रयोग करने की चेष्टा हरगिज न करते।<sup>१</sup> तुलसीदास और उनका काव्य, पृ० ७५ )। त्रिपाठी जी ने सोरों को तुलसी की जन्मभूमि मानते हुए भी उस क्षेत्र के कवियों की रचनाओं से ऐसे उदाहरण नहीं दिये हैं जिनसे यह विदित होता हो कि वहाँ की बोल चाल में ऐसे शब्द परम्परा से प्रयुक्त होते रहे हैं। किंतु मुझे गोंडा के महाराज वत्तसिंह के शौच की प्रशंसा में कहा गया 'भानु कवि' का निम्नांकित दोहा मिला है जिसमें उक्त शब्द अपने प्रकृत अर्थ में प्रयुक्त हुआ है—

सिपर सिरोही सूरता, गई बस के साथ ।

शाम मजीरा सारगा, रहो बिसेन हाथ ॥

महाराज वत्तसिंह १६६६ में गोंडा के सिंहासन पर बैठे थे। उन्होंने नवाब सआदत अली खाँ को सेनाओं को परास्त कर पूर्वी अवध में एकछत्र राज्य स्थापित किया था।

—देखिए डिस्ट्रिक्ट गजेटियर, गोंडा, पृ० १४६

१ तुलसीदास और उनका काव्य, पृ० ७५ ।

२ ए हिस्टारिकल स्केच आव दि फजाबाद तहसील—कानोंगी, पृ० २३ ।

३ वही प० २ ।

को मिटाने के लिए म यकालीन मुसलमान शासक निरन्तर प्रयत्नशील रहे ।<sup>१</sup> १५२८ ई० में बाबर ने रामजन्म भूमि का प्राचीन मन्दिर तोड़ कर उसके ध्वंसावशेषों से एक मस्जिद बनवाई जो अब तक विद्यमान है ।<sup>२</sup> उसके परवर्ती मुसलमान बादशाहों ने इसका नाम बदल कर 'अस्तर नगर'<sup>३</sup> रखा किन्तु वह सरकारी कागज-पत्रों में ही दर्ज होकर रह गया । जनमानस में अयोध्या की स्मृति पूर्ववत् बनी रही और विशिष्ट पर्वों पर उग्रकी यात्रा कर वे मर्यादापुष्पोत्तम राम की राजधानी को श्रद्धाजलि अर्पित करते रहे । इसके महन्व को नष्ट करने के उद्देश्य से औरंगजेब ने श्रेता के ठाकुर का मन्दिर तोड़कर एक विशाल मस्जिद बनवाई जिसके खडहर अब भी स्वर्गद्वार पर देखे जा सकते हैं । मुसलमान बादशाहों ने अयोध्या के आस-पास अपने सहर्षमियों की अनेक बस्तियाँ बसाई और उन्हें बड़ी-बड़ी जागीर देकर स्थायित्व प्रदान किया । बाराबकी, दरियाबाद, फेजाबाद, अकरपुर, शाहगज, जौनपुर आदि नगर तथा अयोध्या में असंख्य कब्रों और टूटी हुई मस्जिदों की मीनारों अब तक धर्म के नाम पर किये गये अत्याचारों की गवाही दे रही हैं । इस प्रदेश में शताब्दियों तक प्रतिष्ठित मुसलमानी शासनकों और उसके द्वारा प्रचारित इस्लामी रीति-रिवाजों और भाषा के दीर्घकालीन सम्पर्क से ही परवर्ती भक्त कवियों—मोहन साह, दूलनदास, बनादास, और युगलानन्दशरण ने फारसी अरबी के शब्द ही

- १ अयोध्या पर चढ़ाई करने वाले सवप्रथम मुसलमान सेनाध्यक्ष सात्तार मसऊद शाही के प्रतिनिधि सय्यद मसूद बेहानी (१०३० ई०) तथा शहाबुद्दीन घोरी के सेनाध्यक्ष मकदूमशाह जूरन घोरी (११६२ ई०) की कब्रों क्रमशः बिहड़ और अयोध्या में अब तक देखी जा सकती हैं । जौनपुर में शकों सल्तनत के संस्थापक ख्वाजा जहाँ ने भी अपनी धातु का एक बहुत बड़ा अश इसी नगर में द्यतित किया था । उसकी मृत्यु भी यहीं हुई ।
- २ इसी मस्जिद को लेकर इधर कई वर्षों से हिन्दू-मुसलमानों में वाद चल रहा है ।
- ३ (क) ए हिस्टारिकल स्केच आव बि फेजाबाद तहसील, प० २३ ।  
(ख) अयोध्या घाज ए मिन्ट टाउन आव अक्बर एण्ड मुहम्मद शाह, सम चाम्स आव बि लटर बींग इ-सक्राइब्ड 'अस्तर नगर अवध' ।

नही अपनाये, रेखता भाषा में काव्य रचना भी की।<sup>१</sup> मेरी यह धारणा है कि संपूर्ण हिन्दी प्रदेश में फारसी, अरबी तथा इनकी उत्तराधिकारिणी उर्दू का जितना प्रभाव पूर्वी अवधी क्षेत्र में लिये गये काव्य प्रयोगों में मिलता है उतना अजब ही नहीं उसकी किसी भी अन्य उपभाषा में नहीं पाया जाता। अतः इस्लामी

१ इनकी रचनाओं के कुछ नमूने नीचे दिये जाते हैं—

अवध की भूमी पवित्र सब है, पवित्रतम उसमें है तुलसी चौरा ।  
तवाफ करते हैं रोज जिसका धिरचि नारव महेश गौरा ॥  
यह घड़ी अजब थी कि जिस घड़ी, वह बरखत बट का उगा यहाँ ।  
उसी शब्द में बढ़के बुलब बुब उसे कैसे कोई करे धर्याँ ॥  
हैराँ हुए सब देख कर कुबरेत इसाही बर जहाँ ।  
न खुला मुअम्मा किसी से भी पोशीदा इसरारे निहाँ ॥  
सुना न देखा किसी ने पहले बना बिया उसने सबको बौरा ॥

—मोहन साह (सं० १८१२ में वतमान) का एक गीत, माधुरी, वष १४, खंड २, सं० ३, पृ० ३७४ ६५ से उद्धृत ।

अब तो अफसोस मिटा बिल का दिलवार दीव में आया है ।  
सतों की सुहबत में रह कर हक हादी को सिर नाया है ॥

—सतवाणी सग्रह, भाग २, दूलमदास, पृ० ६४ ।

तसवी में फेरों बिलों की बम रह वान गून के ।  
कफनी में डालो ज़शी की आसिक उसी मकबूल के ॥

—पलटू साहब की शब्दावली, पृ० २३६ ।

धरमो की अदा बेलि के चितचूर हुआ है ।  
बया बिल के अंधेरे में यह पुरनूर हुआ है ॥  
जाली था बहुत रोजों ने छातिर खराब खार ।  
मेहनत बपर शोक से भरपूर हुआ है ॥

—रहस्य पदावली, युगलान-दशरण, पृ० ५६ ।

जिगर से जलम भारी है । दसा बिरही की न्यारी है ॥  
खरे मना उदासे हैं । लेत गहरो जसासे हैं ॥

स्रोतों से आये हुये श 'ग, लोकोक्तियो और मुद्गाविरा के सफल प्रयोग को ध्यान म रखने हुए भा अयोध्या और उसके निकटवर्ती 'सूकरखेत, को तुलसी की आदि शिगामूमि मान लेने में कोई अटचन नहीं दिखाई देती ।

इसी प्रसंग म तुलसी द्वारा निर्दिष्ट तत्कालीन लोक जीवन म फैली हुई बहराइच की दरगाह ने चमत्कारी प्रभाव विषयक भ्रान्त धारणाओ पर भी विचार कर लेना चाहिए ।' यह विचारणीय है कि रामकथा तथा अपने विरक्त जीवन से सम्बद्ध तीर्थों क अतिरिक्त तुलसी ने अपनी कृतियो मे केवल इसी स्थान की चचा की है, जो गोडा वाले 'सूकर खेत स कुछ ही दूरी पर स्थित हैं । बाल्यकाल मे गुरु के सान्निध्य म पसका अथवा सूकरखेत में तथा बयस्क होने पर अयोध्या निवास करते समय उन्हाने प्रतिबप जेठ क महीने मे हजारो की सख्या मे लोगा को नेत्रज्योति, पुत्र तथा कुष्ठ रोग से मुक्ति प्राप्त करने की आकाशा से सालार मसऊ शाही क दरगाह को जियारत क लिए जाने हुए देखा होगा और उस समय उनके हृदय म जनता की अधानुमारिणी प्रवृत्ति के विरुद्ध एक प्रतिक्रिया उत्पन्न हुई होगी । धुद्र सासारिक स्वार्थों के लिए एक नृशस आक्रामक की कन्नपूजा उनकी दृष्टि से भूत पूजा से भी अधिक निदनीय थी । बहराइच की रगाह के मेले मे आनेवाले यात्रियो की प्रवृत्ति के सम्बध मे तुलसी की इस विस्तृत जानकारी का कारण उनका उसक निकटवर्ती प्रदेश मे दीघकाल तक निवास ही हो सकता है ।

सूकरखेत की स्थिति पर विचार करते हुए यह भूलना चाहिए कि गाढा का सूकरखेत आज भी उसी नाम से प्रसिद्ध है जिस रूप म उमका उल्लेख परम्परागत साहित्य में होता आया है । सोरा को तुलसी के जीवन से सम्बद्ध करने के लिए जो नए-नए प्रमाण नित्य लाए जा रहे हैं वे उसे बाराहवतार का स्थान तो बना सकते हैं, क्याकि इस गौरव के अधिकारी अनेक तीर्थ हमारे यहाँ बहुत

अधर सूखे बदन जरदी । रगे अंगरग ज्यो हरदी ॥  
भले अवर जलाया है । बाह्य सो रग छाया है ॥  
हृदय की कौन लखि पाव मुहम्बत जाते बढ़ती है ।  
बना मायूक जब राखी बशा निसि दिवस घड़ती है ॥

- १ लही आँख कय आंधरे बाझपूत कब ल्याय ?  
कब कोढ़ी काया लही ? जग बहराइच जाय ॥

कुछ विद्वानों का विश्वास है कि अपने समय में नहछू के अवसर पर गाये जाने वाले अश्लील गीतों को सुनकर उसकी प्रतिक्रिया-स्वरूप तुलसी ने इस भक्तिपूर्ण सस्कार-गीत का निर्माण किया था ।<sup>१</sup> किन्तु निम्नांकित तथ्यों के प्रकाश में यह अनुमान निराधार ठहरता है—

(१) तुलसी इस बात में पूणतया अवगत थे कि लोक-जीवन में जो मागलिक गीत प्रचलित हैं, उनमें राम तथा सीता चरित-यापक रूप से गाया और सुना जाता है । रामचरित मानस में इसका स्पष्ट उल्लेख है—

स्याम सुरभि पय बिसद अति, करहि गुनद सत्र पान ।

गिरा ग्राम्य सियराम जस, गार्वाहि सुनहि सुजान ॥<sup>२</sup>

रामकथा पर आधारित ये रामगीत सस्कार-गीत ही रहे होंगे, कारण कि लोक-स्तर पर यापक रूप से वे ही प्रचलित होते हैं । स्वयं तुलसी ने 'रामलला नहछू' की रचना उन्हीं से प्रेरणा प्राप्त करके की, यह 'रामलला नहछू' और उस अवसर से सम्बद्ध लोकगीतों की शब्दावली की समानता से स्वयं सिद्ध हो जाता है ।<sup>३</sup>

मृगनयनि विषुववनी रचेउ मनि मजु मजुल हार सो ।

उर धरहु जुवती जन बिलोकि तिलोक सोभा सार सो ॥

—पावतीमगल, १६३-६४ ।

१ 'श्री अयोध्याजी में किसी के नहछू उत्सव में श्रीगोस्वामी जी पधारे थे । वहाँ किसी भाटिन के कुछ अनुपयुक्त एव अश्लील नहछू गीत सुने । आप वहाँ से उठ चलने पर उद्यत हुए । जानकर लोगों ने गान बन्द करा दिया । तब उस भाटिन ने क्षमा माँगी और उपयुक्त गीत बना देने की प्रार्थना की । तब प्रयकार ने इसका निर्माण किया ।

—रामलला नहछू (सिद्धांत तिलक), उपोद्घात, पृ० ३ ।

२ रामचरित मानस, बालकाण्ड, दो० २० ।

३ 'के बिहल छुटकी मुँवरिया के बिहल रूप हे ।

के बिहल रतन पदारप भरि गयउ सूप हे ॥

केकड़ बिहल छुटकी मुँवरिया सोमित्रा बिहल रूप हे ।

कौसिला बिहल रतन पदारप भरि गयउ सूप हे ॥

—तुलसीदास (दा० माताप्रसाद गुप्त) प० २०४ पर रामलला नहछू (स० १६६५ के हस्तलेख से उद्धृत) ।

(२) भयान्गनिष्ठ काव्य-रचना के समर्थक होने हुए भी तुलसी मागलिक अवमरा पर गये जाने वाले गीतो मे हास-परिहास के लिए छूट देने के पक्षपाती थे। जनकपुर मे रामविवाह के अवसर पर बरपत्र के पुरुषा और स्त्रिया का नाम लेकर गाई जाने वाली गानिया मे उन्हनि रस लिया है और उह अवसरोचित मानकर अभिनानीय ठहराया है—

‘जेवत देहि मधुर घुनि गारी। ले ले नाम पुरुष अरु नारी ॥

समय सुहावनि गारि बिराजा। हंसत राउ सनि सहित समाजा ॥’

‘रामलला नहछू’ में इन गालियो के एकाध नमूने रख कर वृत्तिकार ने प्रकारान्तर मे लोचमानस मे तादात्म्य स्थापित किया है। इस प्रकार की शिथिलता आलोच्य ग्रन्थ के शृङ्गारी वणनो म कई स्थलो पर, विशेष रूप से नेग-हारिनो के हानभावो के वगन म तुलसी ने जानबूझ कर बरती है, जिसमे चित कर नवीन दृष्टि सम्पन्न आलाचका ने ‘रामलला नहछू’ को ‘महात्मा कहलाने वाले एक मनोरोगी कवि मनीषी की मानसिक रतिलीना’<sup>१</sup> तक कह डाला है। साहित्यिक एव साम्प्रतिक परंपराओं स विच्छिन्न साहित्यिक मूल्यांकन म इम प्रकार का दृष्टिदोष सहज संभव है।

कहने का तात्पर्य यह कि ग्राम्य भाषा एव लावणीय शैली म रामचरित के मागलिक प्रसंगो का वणन कर तुलसीनास जहाँ एक ओर इनके माध्यम से लोक-जीवन मे व्याप्त रामनिष्ठा को सांस्कृतिक स्तर स ऊपर उठाकर आध्यात्मिक धरातल पर प्रतिष्ठित करना चाहते थे वही दूसरी ओर तथाकथित शिष्ट एव

केद बीना छुटकी मुंदरिया केद बीना रूप।

केद बीना रतन जडाऊ त भरिया है रूप ॥

केद ने छुटकी मुंदरिया कौशल्या रानो रूप।

सुमित्रा रानो रतन जडाऊ तौ भरिया है रूप ॥

—ग्राम्य साहित्य

(प रामनरेश त्रिपाठी) पृ० २५५।

अथ मुद्रित प्रतियों मे यही पक्षित्या इस रूप मे मिलती हैं—

राजन दोहे हायो रानिह हार हो।

भरियो रतन पदारथ रूप हजार हो ॥

—तुलसी प्रयावली (रामलला नहछू) छव १७, पृ० ५।

१ रामचरित मानस बालकाण्ड ३५६।

२ परिसोध, अंक ११, पृ० २६।

ग्राम्य साहित्य का भेद मिटाकर सम्राट वग मे लोकवाणी को यथोचित सम्मान दिलाने की ओर भी उनका ध्यान था ।

### अवसर एव उत्सव स्थल

नहछू नखशूर का अपभ्रंश रूप है जिसका अर्थ है वह अवसर, उत्सव या सस्कार जिसमें नख काटा जाता है ।<sup>१</sup> कुछ विद्वानों ने इसका व्युत्पत्ति नख + स्पश (नह + छू) से मानी है और इसका अर्थ किया है नहरती से पैरा के नखों को इस प्रकार छुआना मानो नख काट रही है, जिससे यह विन्ति होता है कि इस अवसर पर वस्तुतः नख काटा नहीं जाना बल्कि नहरती से नाई या नाइनि उमका स्पश मात्र करती है । किन्तु तुलसीदास ने जिम 'नहछू' का वर्णन किया है उगमे नाइनि द्वारा नहरती से नख काटने की क्रिया का स्पष्ट उल्लेख है—

नख बाटत मुसुकाहि धरनि नाहि जातहि हो ।

पदुमराग मनि मानहु धोमल गातहि हो ॥

यह सस्कार उपवीत और विवाह दोनों अवसरों पर हाता है । प्रश्न यह है कि गोस्वामी जी ने 'रामलला' के जिस 'नहछू' का वर्णन किया है, वह इन दोनों में से किस अवसर विशेष से सम्बद्ध है । इस विषय में सता एवं विद्वानों के विभिन्न मत हैं—कोई इसे उपवीत सस्कार के अवसर पर सम्पन्न मानता है और कोई विवाह के समय । अपनी-अपनी भायता के समय में दोनों के पक्षधर उक्त श्रवण के अंत साध्या का सहारा लेन हुए निम्नांकित तक प्रस्तुत करते हैं—

(क) नहछू यनोपवीत (उपनयन) सस्कार के अवसर का है और अयोध्या में सम्पन्न हुआ—प० रामगुलाम द्विवेदी, सर जाज प्रियसन और आचार्य प० रामचन्द्र शुक्ल का यही अभिमत है ।

यह सर्वविन्ति है कि राम और लक्ष्मण विवाह के बहुत पहले ही विश्वामित्र की यज्ञ रक्षा के लिए उनके साथ चले गये थे । फिर वही से दोनों

१ पूर्वोक्त (गोंडा, बाराबंकी और बहराच) में वही कहें इसे 'नाखूर' भी कहते हैं जो निर्भन्त रूप से 'नखशूर' से व्युत्पन्न है ।

२ रामचन्द्र तथा लक्ष्मण जी मिथिला में थे और वहाँ एकाएक विवाह निश्चित हो जाने पर अयोध्या से वाराणसी चला गई थी । अतः यह नहछू विवाह के समय का हो नहीं सकता । यह कणवेध या उपवीत के समय का हो सकता है ।

बालका सहिन विश्वामित्र जनकपुर जाकर धनुषयज्ञ मे सम्मिलित हुए थे । इसके बाद विवाह के पूर्व वे दोनों भाई अयोध्या आये ही नहीं । किन्तु तुलसी ने इसका अयोध्या में अनुष्ठित होना और उसमे राम की उपस्थिति स्पष्ट रूप से अनेक स्थला पर घोषित की है—

कोटिन्ह बाजन बाजहि दमरय के गृह हो ।<sup>१</sup>

आजु अवधपुर आनल नहलू राम व हो ।<sup>२</sup>

य पत्निया इस बात की प्रमाण है कि यह 'नहलू' उपवीत सस्कार के अवसर का है, जो निश्चय ही अयोध्या में सम्पन्न हुआ था । यह मान लेने पर आनोच्छ वृत्ति पर लगाये गये ऐतिहासिक दोष<sup>३</sup> का भी परिहार हो जाता है ।

इस प्रसंग में राम के लिए 'दूलह' और 'वर' शब्दों का प्रयोग देखकर लोग यह शका करते हैं कि यदि यह उपवीत के अवसर का है तो उक्त शब्दों का अर्थ क्या होगा ? इसका समाधान यह कह कर किया गया है कि यज्ञोपवीत के समय जो मंगलगान होते हैं, उनमें भी विवाह-गीतों की भाँति 'वर' और 'दूलह' शब्दों का प्रयोग होता है ।

डा० उदयमानु सिंह ने 'जानकी मंगल' की पत्रश्रुति के जाषार पर यह अनुमान लगाया है कि 'जानकी मंगल' के निर्माण में पहले उपवीतोत्सव के लिए विशेषतया उपयुक्त मंगलगीत के रूप में रामलला नहलू की रचना हो चुकी थी । किन्तु जानकी मंगल की सदाँमित पत्तियों से इस प्रकार की कोई ध्वनि नहीं निकलती । उनमें मात्र यह व्यक्त होता है कि रचयिता ने लाकजीवन में यज्ञोपवीत, विवाह तथा अन्य माँगलिक अवसरों ( जन्म, कर्णविध आदि ) पर रामकथाश्रित उक्त गीतों का गान नर-नारियों के लिए सभी प्रकार से कल्याणप्रद माना है ।

यज्ञोपवीत के अवसर पर 'नहलू' होने की इस माँगता में विरोध में निम्नोक्त तक दिये जा सकते हैं—

१ रामलला नहलू, २ ।

२ वही, १३ ।

३ तुलसीदास डा० माताप्रसाद गुप्त पृ० २३० ।

४ जानकी मंगल, २४ ।

५ तुलसी काव्य मीमांसा, पृ० ६१ ।



(१) 'नहल्ल म तुलसी ने स्पष्ट रूप से सस्कार वणन व प्रसंग में राम को 'दूलह' और 'वर' की सजा दी है, जो किसी भी स्थिति में उपनयन व लिए अनुचित ब्रह्मचारी का बाधक नहीं माना जा सकता। यह लोकप्रसिद्ध है कि यनोपवीत के हनु वेना पर उपस्थित बालक बटु, ब्रह्मचारी या ब्रह्मा<sup>१</sup> का नाम से संबोधित होता है। इस अवसर पर गाय जाने वाले लोकगाता में राम के भी जनेऊ व गीत पाये जाते हैं। उनमें भी राम को ब्रह्मा या बटु ही कहा गया है—  
दूलह या वर नहीं।

(२) 'नहल्ल म' वही भी यनोपवीत सस्कार का वणन नहीं आया है। पर-परागत लोकाचार के अनुसार इस अवसर पर बटु का क्षीर सस्कार, शरीर में हल्दी लेपन, मृगघ्राणा तथा कुश की आमनी वगल में त्याकर पुस्तक और वाठ की तस्ती लेकर अध्ययन के लिए काशी जाने को उद्यत होना,<sup>२</sup> वेत्पाठ

१ कासी में ब्रह्मा पुकारेले हथियाँ जनेऊवा लेले ।  
है कोई कासी के ठाकुर हमके जनेऊवा विहे ।  
कासी के ठाकुर विस्वनाथ बाबा उहे उठि बोललें ।  
हम अही कासी व ठाकुर हमही जनेऊवा देवों ॥

—ग्राम्य साहित्य, पृ० २४ ।

२ राजा दसरथ आंगना मूजि कौसिल्या रानी भल घोर ।  
लपकि शपकि चौरें दूनौ हाथे घोरें ।  
रापचन्द्र ब्रह्मा भुइयाँ लोटि जायें जनेऊवा के कारन ॥

—ग्राम साहित्य, पृ० २४२ ।

३ वेहु न माता मोहि सतुव औ गुड गेइया ।  
जहौं मैं कासी बनारस बेद पढ़ि अइहौं ॥

—वही (जनेऊ गीत), पृ० २३६ ।

४ गलिया क गलिया पडित घूमैं हथवा पोपिया लिहे ।  
कवन बखरिया राजा दसरथ तो राम क जनेऊ ॥  
बाँसन धोतिया मुखत होइहैं ब्रह्मा जेवत होइहैं  
पडित बेद पढ़ रे ।

आंगन ढोल धमाक' दइव अस गरज ।

उहै बखरिया राजा दसरथ तो राम के जनेऊ ॥२॥

गलिया क गलिया नाऊ घूमैं हथवा किसबतिया लिहे ।

कवन बखरिया राजा दसरथ तो राम क जनेऊ ॥३॥

ब्राह्मण भोज, कुल के माय (फूफा या बहनार्ई) के द्वारा जनेऊ अपण' मृगछाला एव पलास दड धारण आदि त्रिया कलापा का आयोजन होता है त्रितु 'नहल्ल मे इसरा कही उल्लेख नही है । जिस लोकगीत शैली म इस सस्तर गीत की रचना हुई है, उगमे राम व जनेऊ के भी गीत हैं जोर उनम इन सारे कृत्या का वणन बडे ही सरस ढग से किया गया है । एक गीत म राम जनेऊ क लिए हठ करते हुए भूमि म लाटत हुए त्रिखाये गये हैं । महाराज दशरथ उह उठाकर गोट म बैठान हैं और गाने का जनेऊ मगा देने का आश्वासन देकर उहे बह लाते हैं ।<sup>३</sup> एक दूसरे गीत में आठ वष की अवस्था होने पर राम को जाऊ देने क लिए महाराज दशरथ वशिष्ठ स प्रायना करत हैं—माडव बनाया जाता है, उगमे नीचे राम खे होत हैं । वे तीक्ष्ण धूप व कारण व्याकुल हा जाते हैं और माता कोशिल्या को वे शीघ्र भिक्षा की तैयारी करने को कहत हैं, शास्त्रीय नियम

बासन घोतिया

गलिया के गलिया बड़या घूमे हयवा जिहे पटुलिया ।

कवन बखरिया

बासन घोतिया

गलिया के गलिया कुम्हरया घूमे हयवा बरीवा लिहे ॥७॥

कवन बखरिया

बासन घोतिया

१ गलिया के गलिया फूफा घूमे हयवा जनेउवा लिहे ॥६॥

कवन बखरिया

बासन घोतिया

उहे बखरिया राजा दसरथ तो राम व जनेऊ ॥१०॥

२ पूछ कौसिला बेइ राजा दसरथ से बात रे ।

क सेक होइ राजा रामजी के जनेउ रे ।

हयवा पलास बडा गले मृगछाल रे ।

सोने का छडडभा राम क जनेउ रे ।

३ राजा दसरथ अगना मूजि मुमिना रानी भल घोर

सपकि सपकि घोर दूनो हाये घोर ।

रामद्र बइया भुइयां लोटि जाय जनेउवा के कारन ॥

राजा दसरथ शारिनि मूरिन जांघ बठाइनि ।

देव बेटा सोने के जनेउ जनेउवा बडा उत्तम ॥—वही, पृ० २४२ ।

से दानियो का यज्ञोपवीत प्रीप्स म होना चाहिए—लोकगीत मे इसका भी निर्वाह किया गया है ।

(३) यज्ञोपवीत के गीतो की एक उल्लेखनीय विशेषता यह है कि उनम चित्रित वातावरण आद्योपांत गम्भीर, सात्विक और मर्यादाबद्ध रहता है । शृङ्गारिकता की कही क्षणक तक नही आने पाती । इम सिद्धान्त की रक्षा के लिए इस अवसर के सारे नगी नाई, माली, कुम्हार, लोहार पुरुष होते हैं किन्तु इनके विपरीत विवाह के अवसर पर आयोजित 'नहछू' मे शृङ्गारिकता का पर्याप्त पुट रहता है । इसलिए उसमे पुरुष क म्यान पर स्त्री नेगहारिनी की योजना की जाती है । तुलसी के 'नहछू मे प्राप्त शृङ्गारी वणन उसे विवाह सम्कार से घनिष्ठरूपेण सम्प्रद सिद्ध करत है ।

(४) तुलसी ने अपनी अथ वृत्तिया मे—यहाँ तक कि रामचरित मानस म भी, यज्ञोपवीत सस्कार को अपेक्षित महत्त्व नही दिया है । मात्र एक चौपाई म कुमार होने पर चारो भाइयो को गुह, पिता तथा माता द्वारा 'जनेऊ प्रदान करना और उसके पश्चात् गुह के घर जाकर राम का अल्पकाल म ही सभी विद्याआ म निष्णात हो जाना बताया गया है । उनकी किसा रचना म इस अवसर पर आयोजित नहछू का निर्देश नहीं है । यह वृत्त भी उत्तरी भारत मे प्रचलित 'जनेऊ' सम्प्रदायी लोकगीतो क अनुकूल ही है ।

(५) तुलसी ने महाराज शशरथ द्वारा चारो भाइयो के नामकरण, चूडाकरण और यज्ञोपवीत सस्कारा का साथ साथ आयोजित होना बताया है । इमन दो कारण थे—एक था सबका प्राय समयस्क होना और दूसरा था आगे-पीछे करने म दानियो क बीच मनोमानिय उपत्त होने की सम्भावना । पर तु जनकपुर से प्राप्त सूचना क अनुसार कवल राम का विवाह करने क लिए उनका बारात सजाकर ले जाना लिखाया गया है । यह दूगरी बात है कि राम का

१ भये कुमार जर्वाहि सब भ्राता । दीह जनेऊ गुह पितु माता ॥

गुरगृह पड़न गये रघुराइ । अल्प काल विद्या सब आई ॥

—रामचरित मानस, बाल० २०२।३।४ ।

२ जनमे एक सग सब भाइ । भोजन सयन केलि लरिकाइ ॥

करनवेध उपवीत बियाहा । सग सग सब भये उछाहा ॥

—वही, अयो० १० । ५, ६ ।

३ महाभारत के रामोपाख्यान मे केवल राम के विवाह का उल्लेख है, उसमे धनुभङ्ग तथा अथ तीनों भाइयों के विवाह की कोई चर्चा नहीं है । सम्भ

विवाह हो जाने पर बाद में शेष तीनों भाइयों की भी उसी घर की तीन ब-याओं के साथ भाँवरें पड़ गई। इस विचार से 'राम विवाह' के साथ ही 'रामलला-नहछू' में सम्बंधित नहछू विषयक लोकाचार का पृथक रूप से वर्णन सगत था किन्तु उसे एक साथ आयोजित चारों भाइयों के यज्ञोपवीत के साथ जोड़ देना अनुचित ठहराया जाता।

इन असगतियों के होने हुए 'नहछू' को यज्ञोपवीत के अवसर पर अनुष्ठित मानना तथ्यों की ओर से आँख मूंद लेना है।

(ख) नहछू विवाह के समय का है और मिथिला में हुआ—इस मत के पुरस्कर्ता हैं सम्पूर्ण तुलसी साहित्य के सिद्धांततिलककार अयोध्या के महात्मा श्रीकांत शरण।

राम विवाह की ऐतिहासिक परिस्थितियों को देखते हुए यह स्वीकार करने में कोई अड़चन नहीं दिखाई देती कि राम का नहछू संस्कार महाराज दशरथ के अयोध्या से वाराणसी लेकर मिथिला पहुँचने के बाद और विवाह के पूर्व मिथिला में ही हुआ होगा। परन्तु तुलसी ने 'मायन 'नहछू' आदि वृत्त्या का अयोध्या में होना और उनमें राम-लक्ष्मण की उपस्थिति निलंबित कर इसकी यथार्थता पर प्रश्नचिह्न लगा लिया है। श्रीकांतशरण जी ने अपनी धारणा की पुष्टि राम चरित मानस में निर्दिष्ट कल्पभेद सिद्धान्त के अनुसार रामचरित की विभिन्नता का साक्ष्य प्रस्तुत करके की है और इसी नियम के अनुसार जनकपुर में वृत्रिम अयोध्या निर्मित कर 'नहछू' का उत्सव करने की बात लिखी है।<sup>१</sup>

वत यह वाल्मीकि रामायण के पूर्ववर्ती लोक परम्परा में प्रचलित किसी आख्यान पर आधारित है। बाद की रामकथा में वाल्मीकि रामायण के अनुसार उक्त दोनों प्रसङ्गों का समावेश हो गया किन्तु लोकमानस उसी प्राचीन वक्त को संजोए रहा जो लोकगीतों में अब तक सुरक्षित है। 'राम-लला नहछू' में इसकी छाया उसी माध्यम से आई हो तो कोई आश्चर्य नहीं।

१ 'श्रीरामजी के अवतारों एवं उनके चरितों में ऐसे भेद कल्पभेद के माने जाते हैं। जैसे कि गोस्वामी जी ने ही श्रीरामचरित मानस में परशुराम पराजय प्रसंग, धनुषभंग के साथ उसी मंडप में लिखा है और फिर उसी चरित को अपने गीतावली रामायण में उन्होंने ही वाल्मीकीय रामायण की रीति से वाराणसी लौटने के समय भाग में लिखा है, यथा—'जनकसुता समेत आवत गृह परसुराम अतिभयहारी (गी० ३ ३८)। यह भेद कल्पभेद का है। किसी

श्रीकान्तहरण जी की यह उपपत्ति एक दूरारूढ कल्पनामान प्रतीत होती है। परशुराम प्रसंग के जो दो भिन्न उन्नाहरण उहाने गिये हैं, उनके उत्तम राम कथाश्रित किसी न किसी प्राचीन ग्रंथ में मिल जात हैं। इसीलिए तुलसी की कृतियों में ललित तत्सम्बन्धी भेद निराधार नहा कहा जा सकता। किन्तु कृत्रिम अयोध्या वाली उनकी कल्पना वाल्मीकिरामायण की परम्परा में निर्मित परवर्ती रामायणा, संस्कृत के ललित रामकाया, जैन एव बौद्ध रामचरिता—आदि स्रोतों में से किसी के द्वारा समर्थित नहीं है।

इसकी अपेक्षा मिथिलावासियों की 'लहड़गीत' में अभियक्त वह धारणा कही अधिक स्वाभाविक और विश्वसनीय कही जा सकती है, जिसमें कृत्रिम अयोध्या का झमेला न खडा कर खुले रूप में राम का लहड़ जनकपुर में होना स्वीकारा गया है और नेगिहारिना के निछावर माँगने पर राम के द्वारा उहे अयोध्या लौटने पर मनचाहा नेग देने का आश्वासन दिलाया गया है।<sup>१</sup>

(ग) लहड़ विवाह के समय का है किन्तु हुआ है अयोध्या में ही। तुलसी ने प्रस्तुत रचना में इन दोनों बातों का स्पष्ट रूप में उल्लेख किया है। इन पक्तियों के लेखक का मत है कि रचयिता के एतद्विषयक निर्देशों को प्रकृत रूप में स्वीकार करने में कोई बाधा नहीं उपस्थित होती। वस्तुतः होनी भी नहीं चाहिए क्योंकि रचना की निर्माण-प्रक्रिया, समय स्थल तथा प्रयोजन के सम्बन्ध में कृतिकार का ही साक्ष्य सर्वाधिक विश्वसनीय एव अंतिम माना जाता है। जब तक इस

कल्प में इस रीति से लीला हुई है। यथा—

नाना भाति राम अवतारा। रामायन सत कोटि अपारा ॥

कल्पभेद हरिचरित सोहाये। भाति अनेक मुनीसह गये।

वरिय न ससय अस उर आनी। सुनिय कया सादर रति मानी। ?

मानस, बा० ३३/६,७,८।

इस नियम के अनुसार किसी कल्प में धीरामजी के 'मायन' एव 'नहड़' आदि कृत्यों के उत्सवानन्द की लालसा से मारत के साथ श्री अयोध्या जी के नेगी एव मातागण तथा निछावर लेने के लिए याचक आदि गये थे। उस कल्प में श्री जनकपुर में ही जनवास के पास कृत्रिम श्री अयोध्या नगर एव श्रीवधरधगह तथा माडव आदि बने थे। वहाँ पर उक्त 'मायन' और 'नहड़' के कृत्य हुए थे।

—रामलला नहड़ ( सिद्धांत तिलक ), उपोद्घात, पृ० १,२।

१ मैथिली लोकगीत (डा० अणिमा सिंह) पृ० ४४८।

विषय में जो मतभेद प्रदर्शित किये गये हैं, उनका मूल कारण आलोचका अथवा टीकाकारों का शुद्ध भ्रम रहा है, 'रामलला नहछू' और उसके रचयिता की शतावली नहीं। आलोचकों को यह ध्यान ही नहीं रहा कि वे जिस रचना की समीक्षा करने जा रहे हैं वह लोकगीत शैली की है, अतः उसकी प्रकृति एवं परम्पराओं को समझ कर तदनुकूल सिद्धांतों के द्वारा उसका मूल्यांकन करें। ऐसा न करके उसे इतिहास एवं साहित्यशास्त्र के नियमों की कसौटी पर कसा गया। इस विवेकहीन पद्धति का अनुसरण करने से कुछ गण्यमाय विद्वानों को तुलसी ऐसे समर्थ मर्यादानिष्ठ एवं जागृक कवि की लेखनी से निःसृत पक्तियों में स्थान स्थान पर शिथिलता, अनैतिहासिकता, अश्लीलता, आदि दोषों की भरमार दिखाई पड़ी।

डा० माताप्रसाद गुप्त ने तुलसी की प्रामाणिक रचनाओं और उनके रचना-क्रम पर विचार करते हुए 'रामलला नहछू' की विशद समीक्षा प्रस्तुत की है। उनके पहले और बाद में भी अब तक उतने विस्तार से उक्त ग्रंथ पर विषय तथा शैली की दृष्टि से विचार नहीं किया गया है।

गुप्तजी ने 'नहछू' को विवाह के अवसर पर अयोध्या में अनुष्ठित तो स्वीकार किया है किन्तु कुछ आपत्तियों के साथ। उनका सबसे सबसे बड़ा एतराज इस बात पर है कि जब विवाह के सारे कृत्य मिथिला में हुए और उसके पूर्व राम अयोध्या आय ही नहीं तो 'नहछू' का अयोध्या में होना कैसे लिख लिया गया? इसे वे तुलसी की पहली और अशुभ ऐतिहासिक भूल मानते हैं। उनके इस मत का समर्थन कुछ अन्य विद्वानों ने भी किया है। 'नहछू' के अनुष्ठान स्थल के सम्बन्ध में व्याप्त सारी भ्रातियों एवं आपत्तियों की जड़ यही प्रायः है। अतः इसका विश्लेषण एवं अन्वीक्षण आवश्यक है।

लोकगीत शैली में निर्मित 'रामलला नहछू' में ऐतिहासिक दृष्टिकोण का अभाव घोषित करने के पूर्व सुधी आलोचकों को यह देखना चाहिए था कि नागर साहित्य की भाँति लोकगीतों में घटनाओं के कालक्रम तथा नायकारण सम्बन्ध का निर्वाह नहीं पाया जाता। लोककाव्य का उद्गम स्थल समष्टि मानस है। समाज का मन एक स्वर में बध कर ही गीत का रूप धारण करता है—इस प्रक्रिया में विशेष का परिहार होकर सामान्य ही अवशिष्ट रह जाता है—भावा का साधारणीकरण तभी सम्भव है। लोककवि साधारणीकृत भाव को

स्वर एव सय प्रदात करता है—इसीलिए जन-मन के अपने भाव और उनसे सवनित गीत सबके अपने भाव एव गीत बन जाने हैं। लोकगीतों में वर्णित 'राम' और आज के देहाती 'रामदीन' के नहलू में तत्काल कोई अन्तर नहीं होना चाहिए वह रहता भी नहीं है। राम विवाह के समय सगुराल में ही थे, लोककवि के लिए उनकी यह विशेष परिस्थिति उपेक्षणीय है, वह तो सामान्यतया समाज में विवाह के पूर्व घर पर आयोजित 'नहलू' का ही वर्णन करेगा—क्योंकि लोकाचार सम्मत होने से वही सर्वग्राह्य और सर्वोपयोगी हो सकेगा 'नहलू' के भागलिक अवसर पर वही आस्था गीत की प्रतिष्ठा प्राप्त कर सकेगा।

लोकगीतों में रामविवाह के पूर्व अयोध्या में होने वाले दम 'नहलू' की एक बद्धमूल परम्परा थी। एक गीत में अवसरोचित सभी लोकाचारा—नहलू के पूर्व घर का स्नान करता गोत्र की स्त्रियों को बुलावा भेजना, नहलू के अवसर पर समागत स्त्रियों द्वारा 'योछावर, नाइत का नेम के लिए ठनगन करना, कौशल्या का उमकी आश्वासन देना आदि का विस्तार से वर्णन किया गया है—

के यह पोखरा खनावा घाट बधावा रे ।  
रामा बेहकर भरहि कहार राम नहवावे रे ॥  
राजा दसरथ पोखरा खनावा ओ घाट बधावा रे ।  
कौसिला के भरहि कहार राम नहवावे रे ॥  
घर घर फिरहि नउनिया गोतिनी बटोरे रे ।  
आज राम जिव के नेहलू सबे कोइ आवे रे ॥

करते हुए वितोर की महारानी के मुख से सामान्य ग्रामीण वियोगिनी स्त्रियों के उद्गार व्यक्त कराये हैं—

तप लाग अब जेठ असाढ़ी । भइ मो कह यह छाजनि गाढ़ी ॥  
साठि नाहि लाग बात को पूछा । बिनु जिय भएहु मूज तनु छूछा ॥  
घरसहि नन चुव घर माहीं । तुम्ह बिनु कत न छाजन छाहीं ॥

—पद्यावत, ३०/३५६-१, ३, ६ ।

१, डा० माता प्रसाद गुप्त की स० १६६५ वाली नहलू की प्रति में 'नहलू' विषयक प्रचलित लोकगीत की बहुत सी पंक्तियाँ शब्दशः पाई जाती हैं। इससे भी इस मायता को बल मिलता है कि तुलसी को नहलू रचना की प्रेरणा लोकगीतों से ही प्राप्त हुई थी।

के दीन चुटकी मुंदरिया के दीना रूप रे ।  
 के दीना रतन पदारथ भरिगा है मूप रे ॥  
 कौमिला दिहिन चुन्की मुंदरिया सुमित्रा दिहिन रूप रे ।  
 केकइ दिहिन रतन पदारथ भरिगा है मूप रे ॥  
 महवै क्षगरै नउनिया निछावरि घोर रे ।  
 आजु राम जिव के नेहळू म लेत्रो डेर रे ॥  
 का तू क्षगरी नउनिया नेवछावरि घोर रे ।  
 राम बियहि घर ऐहैं मैं देवो करोरि रे ॥'

डा० माताप्रसाद गुप्त को 'रामलला नहळू' की सं० १६६२ की जो प्रति मिली है, वह कवि के जीवन काल की है। उसमें उपर्युक्त लोकगीत की बारह पक्तियाँ ज्यों की त्यों मिल जाती हैं।

मिथिला में यह 'नहळूगीत' तुलसी के ही नाम से किञ्चित् परिवर्तन के साथ प्रचलित है। एक विशेष बात यह है कि उसमें गुप्तजी वाली प्रति की कुछ और पक्तियाँ भी आ गई हैं। नेद केवल इतना है कि जहाँ हस्तलेख की भाषा भोजपुरी प्रभावित है वहाँ उक्त गीत मैथिली बोली में है।<sup>२</sup>

१ 'ग्राम साहित्य' में प० रामनरेश त्रिपाठी द्वारा संप्रहीत 'नहळू' गीत में निम्नांकित पक्तियाँ और हैं। उनमें तीसरी और अंतिम पक्ति में 'घोर' के के स्थान पर 'घोड' है जो डा० गुप्त की प्रति में 'घोर' हो गया है—

पातरि पातरि अगुलो तो नाउनि गोरो ।  
 करत राम जीव के नेहळू तो घुघुट खोली ॥  
 पाँच पाट क जाजिम झारि बिछाइय ।  
 जेकरे जहाँ मन होय तहाँ ते बठय ॥

—ग्राम साहित्य, पृ० २५५ ।

२ चलह सबहि मिलि देखन शोभा राम क हे ।  
 आजु सुबिन दिन सहळू राम क ह ॥  
 जुष जुष जब जाययि मगल गावयि हे ।  
 राम चुमावन हार धार विसि धावयि हे ॥  
 नाओनी ऐली गुनमती बेगि बोलाविय ह ।  
 सीताराम चुभावहु चौक बसावहु हे ॥  
 सोना क नहरनी महा भलो नाओनि गोरिय हे ।  
 प्रभु जो क बदन निहारि बिहसि मुख फेर हे ॥



स्पष्ट है कि तुलसी ने अयोध्या में अनुष्ठित राम के इस नहलू धन की लोकव्यापी परंपरा का सत्कार रामविवाह की विशेष परिस्थितियों की उपेक्षा करके किया।

राम विवाह सम्बन्धी लोकगीतों में ऐतिहासिक तथ्यों की अवहेलना का क्रम यही समाप्त नहीं होता। अयोध्या में 'नहलू' का यह वृत्त्य सम्पन्न करने के बाद महाराज दशरथ जनकपुर को बारात ले जाने की तैयारी करते हैं। हाथी, घोड़े सजाये जाते हैं, दूल्हा राम के घोड़े की सजावट विशेष प्रकार से की जाती है। बारात के प्रस्थान के समय माता कौशल्या राम की आरती उतारती हैं, आदानिरेक से उनके नेत्रों से आँसू की बूंदें ढुलकने लगती हैं—

कोरे कलस पर लियना बरत है कोरी परैया साठी धान रे ।

वैसे रामजी के माथ झलकवै बाधे मोर भी पाग रे ॥

हाथी साजिन घोडा साजिन साजिन सकली बरात रे ।

राम के घोडवा मुघर के साजिन मोतियन रची है लगाम र ॥

साजि बरात चले राजा दसरथ चदन विरोवा तर ठाढ रे ।

निसरि न आबो रानी कौसल्या राम के आरती उतारि रे ।

धीर धीरे मिया आरती उतारें दूनी नयन दुरै आँसु रे ॥

चारों पुत्रों सहित बारात लेकर महाराज दशरथ यथासमय जनकपुर पहुँचते हैं। इसके बाद धनुष मज की तैयारी होती है। राम विश्वामित्र के आदेश से धनुष तोड़ते हैं, तब विवाह सम्पन्न होता है।

इस प्रकार रामविवाह का सम्पूर्ण घटनाक्रम वैसा ही है जैसा समाज में प्रत्येक परिवार में पुत्र विवाह के समय आज तक होता चला आ रहा है।

यनि तोरे भागि नउनिया चरन छुधौ राम क हे ।

भरि मुख करत किलोल सिया थी राम क हे ॥

रामजी तोहे बसरथ सुत सद्यिमन आत क हे ।

नउआ कहै नउनिया यहि विधि तोरा मे ।

रामजी क हैत बिवाह चढ़न लेव घोडा मे ॥

कत जोरि कहै नओनिया किरपा हमरा दीय हे ।

कौसल्या उर हार नाथ मोहि दीय हे ॥

हार त अयधपुर एतम कतय पाबिय हे ।

तुलसी कहै मुख केरियो चलव त देव हे ॥

लुकमानम ने उक्त 'नहलू प्रमग के अतिरिक्त राम के चरित मे इतिहास, पुराण या नागर काव्य मे स्वीकृत ब्रम की अवहेलना अय अनेक स्थलो पर भी की है । रामचरित त्रिपयक लोकगीत मे निरूपित निम्नांकित तथ्यो से म्यति और स्पष्ट हो जायगी—

(१) प्रसग गीता वनवाम का है । वाल्मीकि आथम मे पुत्रोत्पत्ति के पश्चात् वे नाई के हाय अयोध्या का तीन रोचन भेजवाती हैं—पहला महाराज दशरथ, दूसरा महारानी कौशल्या और तीसरा लक्ष्मण के लिए । इसके साथ ही वे उमे यह भी ताकीद कर देती हैं कि राम के कान मे इसकी भनक तक न पडे—

पहिल रोचन राजा दशरथ, दुसर कौसिला माई हो ।

तिसर रोचन लछ्मिन देवरा, पपियवा न जानै अधरमी न जान हो ॥

कोन नही जानता कि दशरथ की मृत्यु रामवनगमन के समय ही—वाल्मीकि-रामायण के अनुसार, सीतापरित्याग वाली घटना से बहुत पहले हो चुकी थी, किन्तु लोककवि न शाही मुखरिख होता है न इतिहास का प्रोफेसर । उसक सामने तो माता, पिता, सास, समुर से सम्पन्न एक भरे-पूरे परिवार का चित्र है—एक दशरथ मर गये तो क्या हुआ ? ग्राम बधुआ क दशरथ लावा की सख्या म जीवित है लोककवि की सीता उन्ही के पास रोचन भेजकर बधु का वत्तव्य पालन करते हुए तृनार्थ होनी है क्योंकि पौत्रजन्म का सम्वाद पाकर जितने प्रसन्न सास-समुर हगि, उतना और कोई नहीं । पुत्रवनी बधु के लिए अपने सास-समुर की प्रसन्नता सर्वाधिक मूल्यवान है । लोककवि पति के द्वारा अवहेलित सीता को इस गौमाय्य मे वचित रखना सहन नही कर सकता ।

(२) राम के उत्तरकालीन चरित से ही सम्बद्ध एक दूसरे गीत में राम की परधाम माया के पूर्व सीता ने महाराज दशरथ स पति के दुब्यवहार की शिकायत की । समुर ने सभा मे बैठे हुए राम से इसका कारण पुछवाया, राम को बात लग गई । यह सामाय घटना ही उनके लोकातरण का कारण बनी—

जव हम रह जनक घर राजा रे जनक घर ।

सखिया सोने के सुपेलिया पछोरों में मोनिया हलोरों ॥

जव हम परली राम घर राजा दशरथ घर ।

जरि वरि भइउ है कोइलिया त जरि के भसम भइउ ॥

सभवा बैठे हैं रामचन्द्र पुछाइन राजा दशरथ ।

पुता कवन मितल दुख दिट्टउ सखिन सग रोने ॥

हंसि के धनुष उठाइन बिहंसि के पैठिन ।

सीता अत्र सुख सोवळ महलिया गुपुत हाइ जावे ॥<sup>१</sup>

सास मसुर से भरे-पूरे समुक्त परिवार मे पति के अत्याचारा से प्राण ससुर ही दिला सकता है । लोकगीत की सीता ने पारिवारिक मर्यादा की रक्षा के लिए दिवगत दशरथ को पुनर्ज्जीवित कर लिया । कवि, चाहे वह शिष्ट भाषा का हो या भ्रष्ट भाषा का, स्वयम्भू होता है । वह इतिहास का निर्माता होता है, अनुगामी नहीं—लोकगीता क ये दृष्टा त इसके प्रमाण हैं ।

इन तथ्यों के आधार पर यह निश्चयपूर्वक कहा जा सकता है कि तुलसी द्वारा वर्णित 'नहलू विवाह के अवसर का है और यह संस्कार अयोध्या में निष्पादित हुआ ।

### प्राक्षेप और समाधान

डा० माताप्रसाद गुप्त ने 'नहलू' की एक और ऐतिहासिक भूल बताई है और वह है कौशल्या की 'जेठि अथवा महाराज दशरथ की ज्येष्ठा भ्रातृवधू का उल्लेख—

कौसल्या की जेठि दीन्ह अनुसासन हो ।

नहलू जाइ कराबहु बैठि सिहासन हो ॥

आपत्ति का कारण है रामकथा के किसी स्रोत में दशरथ के बड़े भाई के उल्लेख का अभाव । फिर जेठानी के अस्तित्व का आधार हा क्या ?

कहना न होगा कि इस प्रसंग में कवि के अभिप्रेत अर्थ के ग्रहण में आलोचक की असफलता का कारण परम्परागत लोकरीतिआ की अनभिन्नता है । जेठि या जेठानी गाँवों में आज भी केवल सगे ज्येष्ठ भ्राता की स्त्री नहीं कही जाती बल्कि पूर कुल या गोत्र में, दूर के नाते स भी, जो जेठे भाई लगते हैं उनकी स्त्री की सजा जेठानी होती है । मुंडन विवाहादि मांगलिक अवसरों पर उन्हे यथोचित प्रतिष्ठा दी जाती है और उनके द्वारा लोकाचार सम्पन्न कराये जाते हैं—यहाँ तब कि लड़क के विवाह में यदि अपने वंश में उसका कोई जेठा भाई नहीं होता तो चुनरी छाड़ने के लिए 'मसुर' का काय आयु में बड़े फुफेरे और ममरे भाई करते हैं । इस अर्थ में रघुवशियो में दशरथ से आयु में बड़े भाइयों की छियाँ वीरशत्या की जेठानी थीं । उन्ही के आदेश से ये चौक पर पुत्र का

१ ग्राम साहित्य, प० २०५ ।

२ रामलला नहलू, ६ ।

नहछू कराने के लिए बैठी थी। रामचरित मानस में केकड़-कोप के प्रसंग की निम्नांकित पंक्ति में प्रयुक्त 'जठेरी' शब्द से यह स्पष्ट विदित होता है कि केकड़ को ममज्ञाने के लिए एकत्रित स्त्रियों में उनकी जेठानिया भी थी—

विप्रवधू कुलमाय जठेरी । जे त्रियपरम केकड़ि केरी ॥

इसी प्रकार डा० गुप्त ने 'नहछू' में दो म्यला पर जो प्रवच दोष दिखाये हैं वे भी वस्तुतः प्रवच दोष न होकर लोकाचार के सूक्ष्म सत्त्वा का आशय हृद्यगम करने में विद्वान् समीपक की अशमताजय मिथ्या प्रतीति मात्र हैं।

यह प्रसंग नाइन की 'नहछू' के अवसर पर उपस्थिति से सम्बन्धित है। डा० गुप्त का कहना है कि जब नहछू के आरम्भ में ही नाइन भौजूद बतवाई गई है और उसे गारी गाने सिखाया है<sup>१</sup> तो यात्री ही देर के बाद उसके बुलाये जाने का उल्लेख करने का क्या औचित्य है? गुप्तजी की धारणा है कि उक्त प्रसंग में यह पता चलता है कि कवि को यह स्मरण ही नहीं रह गया कि वह पीछे राज-प्रासाद में नाइन की उपस्थिति सिखा चुका है इसलिए उसने लोकाचार सम्प्र-करणे के लिए आवश्यकतानुसार नाइन के पुन बुलाने की बात लिख दी।

किंतु पूरे प्रसंग को दृष्टि में रखकर प्रवृत्त पंक्तियाँ की समीक्षा करने पर कवि द्वारा निर्धारित घटना क्रम की योजना सर्वथा निर्दोष ठहराती है। इसमें उस स्थिति का चित्रण है जब नहछू में सम्मिलित होने के लिए अय ने गहारिना के साथ नाइन घर से आई है और आनन्द विभोर होकर अय माणलिक गीता के साथ रानियो को गाली गाने लगी है। इसका बाद नहछू कराने के लिए कौशिया राम को गोष्ठी में लेकर बैठाती है। तब अपनी विशिष्ट भूमिका के लिए उसकी बुलाहट होती है क्योंकि उस उत्सव का प्रधान कृप, नाचून काटना, उमी के हाथों सम्पन्न होना है। प्रश्न यह उठता है कि अभी थोड़ी ही देर पहले जो गा बजा रही थी वह क्षण भर में ही कहा लुप्त हो गई? जिससे उसकी खोज कराना पड़ी। निम्नांकित पंक्तियाँ इसका रहस्य खोल देती हैं—

नाइनि अति गुनछानि तो बगि बोलाई हा ।

करि सिगार अति लोन तो बिहंसति आइ हो ॥

वनक चुनिन सा लधाति नहरनी लिहे कर हो ।

आनन्द हिय न समाइ दखि रामाहि वर हा ॥

१ नैन बिसाल नउनिया भौ धमकावद हो ।

देइ गारी रनिवासाहि प्रमुदित गावद हो ॥

कानन कनक तरीबन वेसरि सोहइ हो ।  
 गजमुकता कर हार कठ मनि मोहइ हो ॥  
 कर ककन षटि किबिनि नूपुर बाजइ हो ।  
 राति के दीही सारी अधिक विराजई हो ॥'

यान यह थी कि नाइनि आरम्भ म घर से अपनी स्थिति क अनुकूल अत्यन्त सामान्य आभूषण एव कपडे पहन कर आई थी किन्तु सामन्तीय परंपरा के अनुसार युवराज राम क नहछू मस्कार के उपलक्ष्य मे उमे बहुमूल्य वस्त्राभूषण पहिरावन के रूप म दिये गये थे जिह धारण करके ही उमे नहछू कराना था । अत भीड़-भाड़ मे हटकर वह कपडे बदलन महल के किसी एकांत कक्ष मे चली गई । इसम स्वभावत कुछ देरी लगी होगी—विशेष रूप म गहनो के पहनने म । तब तक कौशल्या जी पुत्र को गोम म लेकर चौक पर आ बैठी—इमलिए उमे शीघ्र बुलाने क लिए लोग यत्न हो गय । हुआ सब कुछ स्वाभाविक रूप से ही, कवन समझने म पर था । बुलाने के पीछे दूसरा सशक्त तक यह है कि ऐसे विशिष्ट अवसरो पर नेगहारा नेगहारिना की विशेष रूप से मनुहार की जाती है । थे उस समय साधारण प्रजागण नही होते, विशिष्ट व्यक्ति होते हैं । बुलाय जाने पर थे नेग क लिए नखरे भी करते है, मनचाही चीजे मांगते हैं । उहे बार बार मनाना और बुलाना पडता है ।

एक ऐसी ही प्रबंध द्रुति 'नहछू के गारो प्रसंग मे बनाई गई है । सम्बद्ध पत्तियाँ इस प्रकार हैं—

काने राम जिउ मावर लखिमन गोर हो ।  
 कौधौ रानि कौसिलहि परिगा भोर हो ॥  
 राम अहे दमरय के लखिमन आन क हो ।  
 भरत सत्रुहन भाइ तो श्री रघुनाथ क हो ॥

डा० गुप्त का कहना है कि उपयुक्त छन्द की प्रथम दो पत्तियो म प्राप्त परिहास तकशृङ्खला सगन है किन्तु अतिम ११ पत्तिया म अभिप्रेत परिहास अत-विरोध क कारण भ्रान्तिपूर्ण हैं । पहले यह कहकर कि एक ही पिता के पुत्र होते हुए भी राम और लक्ष्मण मे वधभेद का कारण कौशल्या का अपने पति दशरथ के भ्रम में पर पुरुष स गन्धधारण करना है अर्थात् राम औरस पुत्र हैं, फिर तत्काल ही यह घोषित करना कि वस्तुतः राम ही दशरथ की औरस सन्तान है

१ रामलला नहछू १०, ११ ।

२ वही, १२ ।

और लक्ष्मण अनोरस, रचयिता की अ यवस्थित मानसिक स्थिति का परिचायक है। भरी सम्मति मे यह गन्तव्यही भी लानगीता की प्रवृत्ति की जावारी न होने म ही हुई है। सर्वाभत पाण पतिया की निम्नादिता व्याख्या से रचयिता का मतव्य स्पष्ट हा जायगा—

नहल्लु क अवसर पर एकत्र स्त्रियाँ, जिनम नाइति, वारिति, आदि नेगहारिनें भी हैं, गाली गा रही हैं। इन गालिया की मुख्य लक्ष्य हैं महागती कौशल्या, क्याकि व हा गाण म पुत्र को बैठाकर नेहल्लु करा रही हैं। लगे हाथा वे मुमित्रा और केकेपी की भी खबर ल लेती हैं। एक स्त्री शका करती है कि एक ही गिता की सतान कही जाने पर भी क्या राम सावल हैं और लक्ष्मण गोरे। सम्भवत इमका कारण कौशल्या का जिभी सावल रग के पर पुरुष से जार सम्बन्ध है। अयथा गोर दसरथ और गोरी कौशल्या का पुत्र भी गारा ही होता चाहिा था। इम प्रकार कौशल्या को परिहास का लक्ष्य बनाने के बाद स्त्री बग मुमित्रा और केकेई की जोर झुक्ता है उनम म एक बगती है, नही, वात ऐसी नही है, वस्तुत राम ही शरथ के औरम पुत्र हैं लक्ष्मण जारज हैं—इम प्रकार मुमित्रा की भी पूजा हो गई। बच रहा केकेई, वृद्ध पति की तवपुवती पत्नी होने से उनके प्रति किया गया इम प्रकार का परिहास, परिहास न रहकर काम्त्विकता का भ्रम उत्पन्न कर लेता, दूसरे केकेयी का स्वभाव भी उग्र था। इन कारणों से स्त्रिया न भरत को भी राम की ही भांति शरथ का जोरस पुत्र कहा, इनके साथ शत्रुघ्न का नाम इमलिण जोड़ दिया गया कि मुमित्रा को प्रथम पुत्र की जमन्गत्री क रूप म पहले ही कलक का सेहरा पहनाया जा चुका था—उनके दूसरे लख के भी मदिग्य पितृत्व का उल्लेख परिहास को अवाछनीय सीमा तक पहुँचा देता, इसलिए राम का भाइ कहकर उनकी ओरसता प्रमाणित कर दी गई।

इस सदर्म म एक रात ध्यान देने का यह है कि अवध प्रपेश म ही नही मिथिला मडन म भी नहल्लु के जो गीत गाये जाते हैं, उनम रामलला नहल्लु की यह गारी इहा शब्दा म आज भी विशमान है। अतर केवल इतना है कि महाराज जनक व महल म और मिथिला की स्त्रिया क द्वारा गाई जाने से उसमे परपुरुष का आशय स्पष्ट करत हुए कौशल्या का उनम समधी जनक मे लगाकर गाली दी गई है—

राम जी ता हैं दसरथ सुत लछुमन आन क हो।

रानी कमिला गेल भार जनक जी के आँगन हो ॥'

### अमर्यादित शृंगार चित्रण

‘रामलला नहछू’ का सर्वाधिक छोछालर उसके शृंगारी चित्रण का लकर थी गई है । उहे ठेठ अथवा उत्तान शृंगार थी सजा दकर तुलसी की भद्दी एवं अरलीन रचि का द्योतक बढाया गया है । डा० माताप्रसाद गुप्त की धारणा है कि महाराज दशरथ का अहिरिा के ‘उनरत जोवन’ पर लदद होना, विशालाणी नाउनि का नाखून रंगा समय बढा रों से राम को देखना,<sup>१</sup> धत्रीली तमोलिन और पतली बभरवाथी रमीली बरिनि का मनोहर नेण्डाओ स लोगा को आरुष्ट करना,<sup>२</sup> वैर धोते हुए राग का बढाणों मे नाइनि को देखना,<sup>३</sup> आदि कामोत्तेजक कायव्यापारा के बणन में दशरथ तथा उनके पार्ववर्ती अन्य रमिको का व्याज से कवि स्वयं ‘कल्पित आनन्द प्राप्त करने की चेष्टा कर रहा है ।’ इस विचार सरणि के समर्थक कुछ अय विद्ववाना ने चार कम्म आगे बढकर ‘नहछू’ को ‘काम की हीन प्रिय न शोभातुल तुलसी का चचन काव्य’ और ‘कामशास्त्र’ तक कह डाला है ।

इस आणैप के ओचित्य पर विचार करते हुए दा बानो पर ध्यान देना आवश्यक है—

(१) क्या शृंगार चित्रण की दृष्टि मे ‘नहछू’ म अविात दशरथ और राम के चारित्रिक आश्र म तुलसी की अय वृत्तियो की अपेक्षा कोई उल्लेखनीय अतर पाया जाता है ?

- १ अहिरिनि हाथ बहेडि सगुन लेइ आवइ हो ।  
उनरत जोवन देखि नपति मन भावइ हो ॥—रामलला नहछू ५ ।
- २ अति बडभाग उडनिया छुए नख हाथ सो हो ।  
ननह करति शुमान तो धी रघुनाथ सो हो ।  
उपयुक्त छद की प्रथम पक्ति मे ‘छुए’ पाठ न होकर ‘छूहे’ होना चाहिए जिसका अर्थ होगा ‘रगा’, नहछू के अवसर पर नाखून काटने के बाद नाउनि (या नाई) उहें साल रग से रगता है ।
- ३ कटि के छीन बरिनिया छाता पानिहि हो ।  
बढर बरनि मृगलोचनि सब सुख खानिहि हो ॥—धही, ८ ।
- ४ अतिसय पुहुपक माल राम उर सोहइ हो ।  
तिरछो चितवनि आनद मुनि मुल जोहइ हो ॥—धही, १४ ।
- ५ तुलसीदास, पृ० २३२ ।
- ६ परिशोध, अक ॥, जनवरी १९७०, पृ० २७ ३३ ।





गाथाहि गत्र रनिवाग देहि प्रभु गारी हो ॥

रामलला गनुचाहि देनि महारो हो ॥<sup>१</sup>

× × ×

दूसह के महारि देनि मन हरणइ हो ।<sup>२</sup>

इजा ही नहीं आराध्य व परास्पर प्रपञ्च म अगाध श्रद्धा और उनके पुण्य चरित के गान-श्रवण की अपार महिमा म जैगी दृढ़ आस्था रामचरित मानम तथा विनय पत्रिका पाई जाती है, नहलू म उमम त्रिनभर भी कम नहीं सिगई देती—

जो पगु गाउनि घोईई राम धोखावइ हा ।

तो पग धूरि मिठ मुनि दरम न पावई हो ॥<sup>३</sup>

इमई पञ्चानु हम लाकगीतो म अभिव्यक्त शृगार भावना म नहलू व शृगारी बणना की तुलना करने यह समेगे कि इम सिगा म अपने उ स स 'नहलू वही सक प्रभावित है ।

'नहलू' र अनुष्ठान स्पष्ट एवं अवसर की मीमांसा करते हुए हम यह पहन सिगा खुके हैं कि निम प्रनार उमकी गारी सम्बन्धी पतिया अशरणा लोकागीता म मिम जाती हैं । तुलना ने इन गीता म तो प्रेरणा ली ही उद्यत कही अधिक प्रेरणा उहने ऐस अवसर पर सामाजिक जीवन म सर्वत्र सिगई देने वाली हाग-परिहास सम्बन्धी लू स प्राप्त की । लडन के विवाह के अवसर पर रमिबता सत्रामक बन जाती है, मर्यांग की लगाम दीनी हो जाती है, जिसका लाभ बालक और युवा वग तो उठाता ही है वानप्रस्थ और स यास की अहता क दावेदार दास, बाबा भी मधुर सम्बन्ध के रिश्तेगारा, नेगहारिनो तथा वयापग के लोका से हईसी-मसमरो का भरपूर आन सत्र है । इस ऋतु का सर्वस्वीकृत म्याय होता है यहि पाग पत्रित तामे धरो और 'पागुन भरि बाबा दवर लागे' जैसी लोक प्रचलित उक्तियां हा ऐस अवसरो पर लोकप्रवृत्ति की मनानिका होती है । नहलू म गहाराज दशरथ का अनिरमिठता के पीछे उनकी स्वभावगत शृगारिकता के जतिरिन वैवाहिक वातावरण सम्बन्धी यह लोकाचार भी है, जिसे परम्परा स सामाजिक मायना प्राप्त है । इस पृष्ठभूमि म नहलू के शृगारा वर्णना की समीक्षा करने पर राम कुछ सहज, स्वाभाविक लगेगा—न उतमे

१ रामलला नहलू, १८ ।

२ वही, १६ ।

मर्यादा विरोध सिद्धाई पडेगा न निग्रह अनग सीला ।

इसी प्रकार 'नहल्लु' मे शैलीगत गैयित्य वे जो उगाहरण डा० माताप्रसाद गुप्त ने उद्धृत किये हैं, वे लोकगीतों की स्वरयोजना तथा शब्द सघटना मे अभिन्न भावक को मचर लगेंगे । 'जाइ हो' का 'जाइय हो' 'ममान हो' का 'समानइ हो' धन जाना लोकगीतो की लयव्यवस्था वे गर्वया मेल म है । लोकगीत पद्धति की रचना में भरती वे शब्दों का अस्तित्व भी आश्चर्यजनक नहा कहा जा सकता । शब्दों व विवृत रूप देने वे निग प्रतिनिधिवार का प्रमाण ही उत्तरदायी प्रतीत होता है । वैमे जब तक पाठानुचन वे सिद्धान्ता वे अनुसार इस ग्रन्थ का वैज्ञानिक संपादन नही हो जाता तब तक प्राप्त शब्दरूपों पर आलाचना प्रत्यालोचना निरर्थक ही मानी जायगी । यह एक उन्नेखनीय तथ्य है कि डा० गुप्त का स० १९६५ वाला 'नहल्लु' का हस्तलेख, आचार्य रामचन्द्र गुप्त द्वारा संपादित 'रामलला नहल्लु' तथा उसके अन्य प्रकाशित संस्करणों की अपेक्षा लोकगीत गैयी से अधिक प्रभावित है, उमम नहल्लु मन्त्रधी प्रचलित लोकगीतो की बहुत भी पक्तियां शब्दश उद्धृत मिलती हैं । उनमे भी विवृत तथा भरती वे शब्दों की कमी नही है ।<sup>१</sup>

इसके अतिरिक्त

'आज जनकपुर ब्याह नहल्लु राम व हो'

तथा—

'जगमग जोति अवधपुर अनिच्छवि छात्रिय'

जैमी परस्पर विरोधी उक्तियां भी उसमे हैं । यहाँ एक बार यह यताकर कि आज जनकपुर मे राम विवाह है (तो नहल्लु भी वही होना चाहिए) फिर दूसरी ही सांस म यह भी कहना कि अयोध्या को सजाने और ज्योतिर्मय करने की यवस्था अत्यन्त आवश्यक है (नहल्लु वे मांगलिक उत्सव वे उपलक्ष्य मे) पाठक को भ्रात कर नेता है । 'आज शब्द के कारण वह यह निश्चय नही कर पाता कि नहल्लु वस्तुतः अयोध्या मे हो रहा है या जनकपुर म ।

हममे स्पष्ट है कि इतनी प्राचीन प्रति भी जो रचयिता वे जीवन काल की है, प्रामाणिक नही मानी जा सकती ।

साराश यह कि रामलला नहल्लु का स्वारम्य आत्मसात् करने वे लिए

१ कौसिला के भरिहें कहार तो प्रभु को नेहवाएब हे ।

× × ×  
राम विवाहि कर आएब देबु मए घोर हे ।

—उद्धत, तुलसीदास पृ० २०४ ।

गर्वाहि सब रनिवास देहि प्रभु गारी हो ॥

रामलला सकुचाहि देवि महतारी हो ॥<sup>१</sup>

× × ×

दूह के महतारि देखि मन हरपइ हो ।<sup>२</sup>

इतना ही नहीं आराध्य के परास्पर ब्रह्मत्व में अगाध श्रद्धा और उनके पुण्य चरित के गान-श्रवण की अपार महिमा में जैसी दृढ़ आस्था रामचरित मानस तथा विनय पत्रिका पाई जाती है, नहछू में उससे तिलमर भी कम नहीं दिखाई देती—

ओ पगु नाउनि धोवई राम धोवावइ हो ।

सो पग धूरि सिद्ध मुनि दरस न पावई हो ॥<sup>३</sup>

इसके पश्चात् हम लाङ्गीतो में अभिप्रेत शृंगार भावना से नहछू के शृंगारी वणनी की तुलना करके यह देखेंगे कि इस निशा में अपने उत्स से 'नहछू' कहाँ तक प्रभावित है ।

'नहछू के अनुष्ठान स्थल एवं अवसर की मीमांसा करने हुए हम यह पहले दिखा चुके हैं कि किस प्रकार उसकी गारी सम्बन्धी पत्तियाँ अक्षरशः लोकगीता में मिल जाती हैं । तुनसी ने इन गीतों से ता प्रेरणा ली ही उससे कहीं अधिक प्रेरणा उन्होंने ऐम अवसरों पर सामाजिक जीवन में सर्वत्र दिखाई देने वाली हास-परिहास सम्बन्धी दृष्टि से प्राप्त की । लड़के के विवाह के अवसर पर रमिकता सञ्चामक बन जाती है मर्यादा की लगाम ढीली हो जाती है, जिसका लाभ बालक और युवा वर्ग तो उठाता ही है वानप्रस्थ और सयास की अहता के दावेदार दादा, बाबा भी मधुर सम्प्रदाय के रिश्तेदारों, नेगहारिना तथा कयापथ के लोगों से हसी मसखरी का भरपूर आनन्द लेते हैं । इस ऋतु का सर्वम्बीकृत न्याय होता है 'यहि पाखे पतिधन ताखे धरो और 'कागुन भरि बाबा देवर लागे' जैसी लोक प्रचलित उक्ति या ही ऐसे अवसरों पर लोकप्रवृत्ति की सचानिका होती है । नहछू में गहाराज दशरथ की अतिरसिकता के पीछे उनकी स्वभावगत शृंगारिकता के अतिरिक्त वैवाहिक वातावरण सम्बन्धी यह लोकाचार भी है, जिसे परम्परा में सामाजिक मान्यता प्राप्त है । इस पृष्ठभूमि में नहछू के शृंगारा वणनी की समीक्षा करने पर सब कुछ सहज, स्वाभाविक लगेगा—न उसमें

१ रामलला नहछू १८ ।

२ वही, १६ ।

३ वही, १४ ।

मर्यादा विरोध सिद्धाई पडेगा न निबन्ध अनग लीला ।

इसी प्रकार 'नहलू' मे शैलीगत शैथिल्य के जो उन्हाहरण डा० माताप्रसाद गुप्त ने उद्धृत किये हैं, वे लोकगीतो की स्वरयोजना तथा शब्द सघटना से अभिन्न भावक को लचर लगेंगे । 'जाइ हो' का 'जाइय हो' 'समान हो' का 'समानइ हो' बन जाना लोकगीतो की लयव्यवस्था के सर्वथा भेल में है । लोकगीत पद्धति की रचना मे भरती के शब्दों का अस्तित्व भी आश्चर्यजनक नही कहा जा सकता । शब्दों के विवृत रूप देने के लिए प्रतिलिपिकार का प्रमाण ही उत्तरदायी प्रतीत होता है । वैसे जब तक पाठालोचन के सिद्धान्ता के अनुसार इस प्रयोग का वैज्ञानिक संपादन नही हो जाता तब तक प्राप्त शब्दरूपों पर आलोचना प्रत्यालोचना निरर्थक ही मानी जायगी । यह एक उल्लेखनीय तथ्य है कि डा० गुप्त का स० १९६५ वाला 'नहलू का हस्तलेख, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल द्वारा संपादित 'रामलला नहलू' तथा उसके अन्य प्रकाशित संस्करणों की अपेक्षा लोकगीत शैली से अधिक प्रभावित है, उसमे नहलू सम्बन्धी प्रचलित लोकगीतों की बहुत सी पंक्तियाँ शब्दशः उद्धृत मिलती हैं । उनमे भी विवृत तथा भरती के शब्दों की कमी नही है ।<sup>१</sup>

इसके अतिरिक्त

'आज जनकपुर ब्याह नहलू राम क हो

तथा—

'जगमग जोति अवधपुर अतिछवि छाजिय

जैसी परस्पर विरोधी उक्तियाँ भी उममे हैं । यहा एक बार यह बताकर कि आज जनकपुर मे राम विवाह है (तो नहलू भी वही होना चाहिए) फिर दूसरी ही साम मे यह भी कहना कि अयोध्या की सजाने और ज्योतिर्मय करने की व्यवस्था अत्यन्त आकर्षक है (नहलू के मागलिक उत्सव के उपलक्ष्य मे) पाठक को भ्रात कर देता है । 'आज शब्द के कारण वह यह निश्चय नही कर पाता कि नहलू वस्तुतः अयोध्या मे हो रहा है या जनकपुर में ।

इसमे स्पष्ट है कि इतनी प्राचीन प्रति भी जो रचयिता के जीवन काल की है, प्रामाणिक नही मानी जा सकती ।

माराश यह कि रामलला नहलू का स्वारम्य आत्मसात् करने के लिए

१ कौसिला के भरिहें कहार तो प्रभु को नेहवाएब हे ।

× × ×  
राम विवाहि कर आएब देयु मए घोर हे ।

उसके विषय तथा शैली तत्व का आलोचन लोकसाहित्य के प्रतिमाना का दृष्टि में रखकर होना चाहिए, नागर साहित्य के शास्त्रीय सिद्धान्तों के प्रकाश में नहीं। अथवा तुलसी की काव्य प्रतिभा, प्रवृत्ति, समाज-दशन एवं उनके द्वारा प्रतिष्ठित चारित्रिक आदर्श के सम्बन्ध में इसी प्रकार के अनगुल आरोपों का ब्रम चलता रहेगा।

## मानवता और रामचरित-मानस

रामचरित भारतीय सस्कृति का सर्वाधिक लोकप्रिय आख्यान रहा है। साहित्यकारा ने समय-समय पर युगमानस को ऊजस्वित करने के लिए अपनी व्यक्तिगत साधना और अनुभूति के अनुसार उसे नये साँचे में ढाल कर रूपायित किया है, लोकगायका ने अपनी अमृतवाणी में माटी की गंध से वासित कर उस लाकानुरजन तथा जनशिक्षा का माध्यम बनाया है। तुलसी की लोकव्यापी दृष्टि ने रामकथा की इन सारी परम्पराओं को समेटते हुए आध्यात्मिकता का पुट देकर राम को आदर्श मानव के रूप में प्रतिष्ठित किया। इसके फलस्वरूप एक व्यक्ति की जीवनगाथा होते हुए भी उसने धर्म ग्रन्थ की महत्ता प्राप्त कर ली। विश्वसाहित्य में अन्य किसी नाव्यग्रन्थ को यह गौरव प्राप्त हुआ हो, यह देखने में नहीं आता। तुलसी ने उसके पठन, श्रवण और रमाब्धान्न को आत्मशोधन एवं भवसंतरण का सर्वसुगम साधन कहकर प्रकारांतर से निगमागम एवं पुराणों की भाँति ही उसकी पावनता प्रतिपादित की है और लोकमानस ने उनके इन वचनों को ब्रह्मवाक्य के रूप में ग्रहण किया है—

“चली सुभग कविता सरिता सो । रामप्रम जस जल भरिता सो ॥<sup>१</sup>  
 रामचरित मानस यह नामा । सुनत श्रवण पाइइ विद्यामा ॥<sup>२</sup>  
 मन करि विषय अनल बन जरई । होइ सुखी जो एहि सर परई ॥<sup>३</sup>  
 राम मुप्रेमहि पोपत पानी । हरत सकल कलि कनुप गलानी ॥  
 भव अम सोपक सोपक तोपा । समन दुरित दुख दारिद दोपा ॥<sup>४</sup>  
 मान्द मज्जन पान किये ते । मिटहि पाप परिताप हिए ते ॥<sup>५</sup>  
 कर्हिहि मुर्नाहि अनुमोदन करही । ते गोप इव भवनिधि तरही ॥<sup>६</sup>

१ राम० बाल, ३८।११ ।

२ वही, ३४।७, ८ ।

३ वही, ४२।३, ४ ।

४ वही, ४२।६ ।

५ वही, १२८।६ ।

पूर्ववर्ती रामकथाश्रित प्रबन्धो म कहीं ऐतिहासिक, कहीं दार्शनिक, कहीं सांस्कृतिक ओर कहीं साहित्यिक दृष्टिकोण को प्रधानता दी गयी थी। तुलसी ने एकांगिता से बचकर रामचरित में मानव-जीवन की महत्वपूर्ण समस्याओं का आत्यंतिक समाधान प्रस्तुत करने वाले सूत्रों को उजागर किया। पूण सुख शान्ति एव समृद्धि सम्पन्न समाज का निर्माण अधूरे, विरूप तथा अभावग्रस्त मानव द्वारा सम्भव नहीं, इसलिए उन्होंने पथभ्रत मानवता के समग्र पूण मानव के आदर्श राम का चरित रखा। ऐसे महापुरुष की जीवन शैली प्रस्तुत की, जिसने दशरथपुत्र के रूप में अवतरित होकर अपने कर्मकौशल से लोकमानस में परात्पर ब्रह्म की प्रतिष्ठा प्राप्त की थी, जिसने राजपद का वैभव-विलास से अक्षय्य पृक्त रह कर दानवता से पराभूत और सम्यक्ता के प्रकाश से वचित मानवता के उत्थान के लिए दर-दर की खाक छानी थी। विश्व मानव का प्रति इस अगाध करुणा एव भव्य भावना के कारण देशकाल की बदलती परिस्थितियों में समय-समय पर मानवता के ओ भी उत्कृष्टतम प्रतिमान निर्धारित ह्ये 'मानस के राम उससे सदा ही कुछ ऊपर और कुछ आगे दिगाई देगे।

### प्रेरणा एव आघार

रामचरित को जन्म के रूप में अपनात की प्रेरणा तुलसी को समकालीन समाज के विभिन्न वर्गों एव स्तरों के गहरे अध्ययन तथा निजी अनुभव से प्राप्त हुई थी। उनकी बाल्यावस्था घोर दरिद्रता में कटी थी। वैराग्य धारण करने के बाद उन्होंने तीर्थाटन करते हुए सारे देश का भ्रमण कर जनजीवन का बहुत ही निकट में निरीक्षण किया था, सत्संग के क्रम में उन्हें विभिन्न धार्मिक संप्रदायों के अनुयायियों का आचार-विचार का पर्यवेक्षण का अवसर प्राप्त हुआ था, जीवन का अन्तिम वर्षों में जब वे 'तुलसी' के ऊपर उठ कर 'गोसाइ' हुए तो बड़े-बड़े राजे महाराज उनका चरण बदन कर कृतार्थ होने से इस माध्यम से सामंतीय वर्ग से भी उनका परिचय हुआ। इस प्रकार समकालीन समाज के विविध वर्गों और प्रवृत्तियों के व्यक्तियों का जीवन तथा विचार पद्धति का आन्तरिक परिचय प्राप्त कर लेने पर उन्होंने अनुभव किया कि समाज का पूरा शरीर घातक सडन

१ घारे ते ललात बिललात द्वारे द्वारे दीन,  
जानत हों धारि फल धारि ही धानक हो ।

—कविता, ७।७३ ।

२ विनय० २६६।२ ।

का शिकार हो रहा है। धार्मिक भावनाके व्यापक हास से उसके मूलाधार जप, योग तथा वैराग्य तिरोहित हो गये हैं, स्वाध्याय की परम्परा समाप्त हो चुकी है, आये दिन नये-नये पद्य और सप्रदायो की स्थापना हो रही है, यज्ञदानादि कर्मों का अनुष्ठान अर्थाभाव के कारण बन्द हो रहा है, पालखी लोग धार्मिक आचार-विचार के नाश के कारण बन रहे हैं, वर्णाश्रम धर्म लडखडा रहा है और लोकमर्यादा के मस्तूल ढह रहे हैं, सारा धार्मिक समाज दुर्वासनाओ का शिकार हो रहा है, राजवग बड़ा ही छली है, वह प्रजा की रक्षा करने के स्थान पर उसे निगल जाने पर उतारू है, नित्य नये करा स जनता की रीठ टूट गई है, आर्थिक शोषण से निधनता बढ़ रही है, निरतर पडने वाले दुर्भिक्षो स मनुष्य का अस्तित्व ही खतरे में पड गया है, मभी वर्णों के लोगो मे चरित्रहीनता फैल गई है, व्यक्तिगत तथा सामाजिक आचार के पतन से चारा ओर अव्यवस्था का ताडव आरम्भ हा गया है', समाज मे विपमता इतनी बढ़ गई है कि एक ओर वैभव नालियो म बह रहा है, तो दूसरी ओर लोग दाने-दाने को तरस रहे हैं। मर्यादा तथा निष्ठा व अभाव में जनजीवन विच्छिन्न हो गया है। मानवी मूल्यों को समाप्त करने वाली सम-सामयिक परिस्थिति का तुलसी ने बड़ा ही मर्मस्पर्शी चित्र खींचा है। विनाशकारी युग प्रभाव को उन्होंने 'कलि' के नाम से अभिहित किया है और इसका मूल कारण आसुरी वृत्तियां का उत्तरोत्तर विकास बताया है।

इस दयनीय स्थिति से समाज का उद्धार करने के लिए उन्होंने शक्तियों के विधर्मों शासन के परिणामस्वरूप जन-मानस मे प्रतिष्ठित हीनभावना, भय, रुद्धिप्रियता, अविश्वास, सन्नेह आदि को दूर करना आवश्यक समझा। इसके बिना आतंकित एव दलित जनता मे अत्याचार, अधर्म और अनैतिकता को प्रोत्साहित करने वाली शक्तियों से लोहा लेने की शक्ति का संचार करना असम्भव था। कहन की आवश्यकता नहीं कि इस उद्देश्य की सिद्धि मात्र तरवनाम के उपदेशो और कीर्तन भजन के आयोजना से नहीं हो सकती थी। वेदोपनिषद्, स्मृतियां और पुराण तब भी पढे-पुने जाने थे, त्रिगुणिया सन्नो और मूफी फकीरा व असख्य अनुयायी उस युग मे भी धर्मग्रन्थो के स्वाध्याय और साधना मे कालयापन करते थे। राम और कृष्ण भक्ति क केद्रों में आराध्य युगल की लीला के गान और प्रदर्शन की परम्परा भी अधुण्ण रूप से चली आ रही थी। विभिन्न दार्शनिक मतवादो के अनुयायी सभ्यासी तथा गृहम्य तत्त्वनिरूपण, शास्त्रार्थ आदि से ज्ञान की ज्योति प्रज्वलित रखने में यथाशक्ति अशदान करते थे—फिर भी अधिकार बन्ता जा रहा था। विनय पत्रिका में एक स्थान पर इसका संकेत मिलता है—



वाक्य ज्ञान अत्यंत निगुन भव पार न पावत कोई ।

निजि गृह मध्य दीप की बातन तम निवृत्त नहिं हाई ॥<sup>१</sup>

ऊंचे सिद्धांत और विचार व्यवहारभूमि में उतर कर ही लोक कल्याण के स्थापन बनते हैं । जन-मानस का विश्लेषण करने पर उन्हें लगा कि इसका कारण नैतिकता के मूर्त आश का अभाव है—सामान्य लोग अमृत सिद्धांत और विचारों से, चाहे वे कितने भी उत्कृष्ट और उपादेय क्या न हो, प्रेरणा नहीं प्राप्त कर सकते । सूरदास की इन पक्तियों में समकालीन लोकमानस की किञ्चित्-व्यबिगूढ़ावस्था की छाया देखी जा सकती है—

“अधिगत गति कछु कहत न आवै ।

रूप रेख गुन जानि जुगुति बिन निरालख मन चरत धावै ।

सब विधि अगम विचारहि ताते गूर सगुन लीला पत् गारै ॥’

मुगीन वातावरण का सम्यक् आकलन करने के बाद तुलसी ने अपने गभीर शास्त्रज्ञान के द्वारा यह अनुभव किया कि भारत के साम्युक्तिक इतिहास में कुछ इसी प्रकार का गतिरोध हज़ारों वर्ष पूर्व गाथाकाल में उपस्थित हुआ था, जब रावण के अत्याचारा से समस्त चराचर जगत नारकीय यातना भोग रहा था, पृथ्वी माता उस समय गोरूप में जगन्नियन्ता के समक्ष उपस्थित हो प्राण की भिन्ना भागने के लिए विवश हुई थीं और परात्पर ब्रह्म ने करुणाद्र हो धर्म-संस्थापना के लिए मानवावतार धारणा का वचन देकर उभे आश्वस्त किया था । श्रेता का रामावतार इसी का परिणाम था । लोक मयादा के संस्थापक राम का जीवनांश अपनाने से ही विधर्म शासन द्वारा निर्मित आसुरी वातावरण पर विजय प्राप्त की जा सकती है और परतंत्रता की वेडिया में जकड़ी भारत भूमि का उद्धार किया जा सकती है, यह उनका स्पष्ट मत था—

मडलीक मनि रावन राक्षसि फोउ न सुतत्र ।

भुजबल जगत बग्य करि, राज करै निज मत्र ॥

× × ×

जेहि विधि होह धर्म निरमूला । सोइ सब करै धर्म प्रतिकूला ॥

× × ×

यह रावनारि चरित्र पावन राम पत् रतिप्रत् सत् ।

कामान्हिर विमानकर सुर सिद्ध मुनि गावहि मुत् ॥<sup>२</sup>

१ विनय १२३ ।

२ मानस बाल० १८२।५ ।

३ मानस कि० ३० क ।

भव भेषज रघुनाथ जस सुनहि जे नर अरु नारि ।  
तिन्हकर सकल मनोरथ, सिद्ध करहि त्रिपुरारि ॥<sup>१</sup>

× × ×

यह कलिकाल मलायतन मन करि देखु बिचार ।

श्री रघुनाथ नाम तजि नाहिन और अघार ॥

ऐसी अनेक उक्तियां द्वारा तुलसी ने सारी सामाजिक विगगतियों और उनके प्रेरक मानसिक विकारों को दूर करने में रामकथा के अद्भुत प्रभाव का उल्लेख किया है। इससे हताश लोगों में यह विश्वास जगा कि दुःशामन एवं दुःव्यवस्था चाहे वह कितनी ही मूलबद्ध और शक्तिशाली क्या न हो अतत समाप्त होकर ही रहेगी। इस भावना से प्रजा में सघष करने की ऊर्जा एवं अत्याचारी शासक को दण्डनीय घोषित करने का साहस उत्पन्न हुआ—

जाबु राज प्रिय प्रजा दुखारी । मो वृष अवसि नरक अधिकारी ॥<sup>२</sup>

रामचरित मानस ने सर्वमानवीय मुक्ति के लिए अतः शक्ति उद्बुद्ध कर दानवी वृत्तियों पर विजय पाने का पथ प्रशस्त कर दिया।

## विराट् लक्ष्य

शब्दशक्ति से मानवता को प्रभावित कर अधःपतित समाज को ऊपर उठाने का ऐसा महान् लक्ष्य उसी सर्वोत्तमदर्शी वृत्तिकार का हो सकता है जिसका मानस पीडित मानवता की हृत्तन्त्री से संपृक्त हो चुका हो, जिसका 'स्व' विराट् 'अह' में और विराट् 'अह' जिसका 'स्व' में विलीन हो गया हो। उसी का 'स्वान्त-सुखाय', 'सर्वान्त सुखाय' बनने का गौरव प्राप्त कर सकता है। यह 'अन्त सुख निज सुख शान्ति अथवा 'परम विश्राम ही मानव-जीवन का चरम लक्ष्य है, यही आत्मोत्थि है। तुलसी ने इसका आस्वात्न किया था—

जाकी वृषा लवलस त मति मद तुलसीदास हूँ ।

पायो परम विश्राम राम समान प्रभु नाही कहूँ ॥<sup>३</sup>

## अवतार निष्ठा में मानवतावादी दृष्टि

अवतारवाद मानवतावाद का ही नामान्तर है, यह अवतार धारण करने के प्रयोजन की भीमामा से ही स्पष्ट हो जाता है। यहाँ तक कि मानवतार योनिया—

१ मानस लका १२१ ख ।

२ मानस० अयोध्या०, ७०।६ ।

३ मानस० उत्तर, १३०।३ ।

मत्स्य, कच्छ, वाराह म भी विष्णु के अवतार आनतामिया का सहार करके मानवधर्म की स्थापना के लिए ही हुए थे ।

### (क) मानवावतार—मानयता को गौरव दान

मानव विश्वकर्ता की उत्कृष्टतम सृष्टि है । कर्मसंपादन की क्षमता से मज्जित होने के कारण मनुष्य देह ही भव-सतरण का एकमात्र साधन माना गया है । धर्ममाधना से इसे स्वर्गापवग की प्राप्ति होती है और ज्ञान विज्ञान प्राप्त कर यह मोक्ष का अधिकारी हो जाता है । मानव शरीर की प्राप्ति बड़े भाग्य से होती है । तुलसी ने इसे देवदुलभ माना है कारण कि भगवदृपा का प्रकाश मानव पर होता है, देवता इससे वंचित रहने हैं । इसीलिए परात्पर ब्रह्म के दोनो पूर्णावतार—राम और वृष्ण, मानवावतार ही हैं । अय अवतारो से इनके उत्कर्ष का कारण अपक्षावृत्त अद्भुत तत्व का गोपन एव सहजता का प्रकाश है । लोकशिक्षा पर मात्मा के मर्त्यावतार का मुख्य लक्ष्य होता है । उसकी सिद्धि लोकव्यवहार से ही संभव है । राम की अवतार-लीला के वणन में तुलसी ने यथासंभव अलौकिकता के प्राक्त्य को बचाया है । यदि उसका प्रकाशन भा हुआ है तो व्यक्ति विशेष के लिए और स्थानविशेष में—सबके समक्ष और सबके लिए नहीं । और यह भी इसलिए कि कहीं पाठक इसे धीरपूजा के रूप में वर्णित प्राकृत मानव की कहानी न समझ बैठे । यही कारण है जिससे आराध्य के नितान्त नर सुलभ व्यवहारो उद्देशो एव आचरणा का विवरण प्रस्तुत करते हुए वे निरंतर उनके परात्पर ब्रह्मत्व का स्मरण दिलाते रहते हैं ।

### (ख) रामचरितमानस के मानव सुलभ संवेग

रामचरितमानस में अप्राकृत ब्रह्म की प्राकृत लीला का वृत्त प्रस्तुत किया गया है । यथारम्भ में जिस लोकानुग्रह अथवा करुणा को निगुणब्रह्म के सगुण रूप धारण करने का मुख्य प्रेरक भाव बताया गया है, रामकथा में उसकी जाद्योपान्त व्याप्ति दिखाई देती है । इसके अतिरिक्त अधैर्य प्रलाप, विरहाकुलता, कठोरता, पक्षपात, ममता आदि मनोभावा का भी उनके जीवन में विशिष्ट अवसरों पर उद्रेक दिखाई देता है । कहीं-कहीं तो वे इतने सहज ढंग से अभिव्यक्त हुए हैं कि अवतार लीला से उनका सम्बन्ध प्रतीत ही नहीं होता । श्रद्धालु पाठका तक को उन्हें परात्पर ब्रह्म की नरलीला स्वीकार करने में कठिनाई का अनुभव होता है । जनमामाय उसका पारमार्थिक रूप को भूल कर मात्र लौकिक चरित मानने लगे तो आश्चर्य ही क्या है ? तुलसी ने इस भाति की संभावना अनुमान

कर मानस-प्रेमियों को सगुणलीला की रहस्यमयता से सावधान रहने की चेतावनी देने हुए लिखा था—

निरगुन रूप मुलम अति, सगुन न जाने कोय ।

सुगम अगम नाना चरित, गुनि मुनि मन भ्रम हाय ॥<sup>१</sup>

## कहणा

राम की शरणागत वत्मलता और पतितरावणी प्रकृति के व्यजक जो वृत्तान्त रामचरित मानस में संकलित हैं, प्रसंग की समीक्षा करने पर उन सबके मूल में कहणाभाव की ही प्रधानता दिखाई देती है—गौतम के शाप से उत्पन्न शिला-भूता पत्नी अहिल्या का उद्धार, बालि के भय से वन बीहड़ों में लुप्त-छिपकर जिनगी काटने वाले सुग्रीव का रक्षा तथा किष्किंधा का राज्यदान, दंडक वन-धासी मुनियों को सर्वप्रकारेण संरक्षण प्रदान करने का आश्वासन, नरभंगी राक्षसों द्वारा मारे गए ऋषियों के अस्थिसमूह को देखकर पृथ्वी को राक्षसहीन करने की प्रतिज्ञा, शरणागत विभीषण को लंका राज्य का दान आदि प्रसंगात् उत्पन्न कहणा अथवा जीवदया भाव की अपूर्व छटा दिखाई देती है जिससे रहित मनुष्य को पशु कहने से पशुता भी अपमानित होती है। राम की इस कहणा-सवलित उत्तरता की पराकाष्ठा दिखाई देती है राम रावण युद्ध में उस अवसर पर जब वे राक्षसों को बैरभाव से स्मरण करने वाले अपने भक्त बतलाकर रणक्षेत्र में प्राण त्यागने पर उन्हें मुनिदुलभ परमपद प्रदान करते हैं।

## कृतज्ञता

गुदरराज जटायु ने रावण द्वारा हरी जाती हुई सीता की रक्षा में प्राण अर्पित किये थे—राम ने उनका अंतिम संस्कार अपने हाथों किया, पिता दशरथ से भी उनके प्रति अधिक ममता दिखाई और अंत में सदैव मुक्ति दी। इसी प्रकार हनुमान द्वारा किये गये अनेक उपकारों का बोझ आजीवन होने में वे गर्व का अनुभव करते रहे।

(१) सीताहरण के पश्चात् वियागी राम की लौकिक विरहीनायिका की भाँति विह्वलता एवं कामासक्ति का वर्णन।

(२) लक्ष्मण-शक्ति प्रसंग में मर्यादा तथा औचित्य की सीमा पार करने वाला प्रलाप।

(३) गीता की अभिनपरीक्षा के समय राम का दुर्वाचक्यन ।

(४) अखिल ब्रह्मांड नायक होते हुए भी एक स्थानविशेष—अयोध्या के प्रति उनकी अगाध आसक्ति और बैकुंठ से भी उसकी श्रेष्ठता का प्रतिपादन ।

मानस के अघ्यताआ, कथावाचका और सहृदय गायका ने राम की भगवत्ता पर प्रश्न चिह्न लगाने वाले इन प्रसंगों की विविध प्रवार से 'याख्या कर अवतार चरित की अलौकिक महत्ता अद्युष्ण रखने का प्रयास किया है । मेरे विचार में इनकी यथायथा को स्वीकारने से भी रामचरित की गरिमा पर कोई आंच नहीं जाती । लोकहृदय उनकी पुरुषोत्तमता का पूजक है—देवत्व का नहीं । य तयावधित कमजोरियाँ राम को मानवीय विशिष्टताओं से मद्धित करती हैं, उन्हें दिव्य साक्षेत् से उतार कर त्रिधि प्रपञ्च की रगस्पली, गुणावगुण समन्वित, जड चेतना से सङ्कुचित उस घरती पर ला खडा करती है जिसका भार उतारने के लिए ही ब्रह्म राम का अव्यक्त से व्यक्त, असीम से ससीम और नारायण से नर होना स्वीकार किया था । तुलसी इसका मर्म जानते थे । वे इस खतरे से भी अवगत थे कि अवतार-लीला को तर्क की कमीटी पर कमने से श्रद्धालु पाठक भटक जायेंगे । इसीलिए उन्होंने इसका स्पष्ट शब्दों में निषेध किया था—

चरित राम के सगुन भवानी । तरकि न जाहि करम मन बानी ॥<sup>१</sup>

रामायण को मानस' का रूप देने वाले शिव का भी यही अभिमत था—

राम अवतर्व्य बुद्धि मन बानी । मत हमार अस सुनिह भवानी ॥

ऐसी बात नहीं कि वे अवतार चरित की असंगतियों से अपरिचित थे । एकाध स्थलो पर उन्होंने स्वयं आराध्य के कृत्यों की आलोचना की है—

जेहि अध बपेउ 'याध इव वाली । साइ सुकठ पुनि कीन्ह कुचाली ॥

सोइ करतूति विभीषन करी । सपनेहु सो न नाथ हिय हेरी ॥<sup>२</sup>

मरणाग्र बालि के द्वारा भी इन्होंने राम के मयात्पुरुषोत्तमत्व और समर्पणता को चुनौती प्लिताई है—

मैं बैरी सुश्रीव पियारा । कारन कवन नाथ मोहि मारा ।

घर्म हत अवतरउ गोमाइ । मारेहु मोहि व्याध की नाइ ॥

इसने यह स्पष्ट हो जाता है कि तुलसीदास राम के परात्पर ब्रह्मत्व के सम-

१ मानस, लका० ७३।१ ।

२ मानस, बाल० १२०।३ ।

३ मानस बाल० २८।६ ।

४ मानस कि० ८।६ ।

र्षक होते हुए भी उनकी मानवावतार-लीला को साधारण लोगो के चरित की ही भांति आलोच्य मानते हैं, इसलिए नहीं कि वे रामचरित की उपयुक्त यून-ताआ की यथार्थता में विश्वास करते हैं बल्कि यह लिखाने के लिए कि शेष के षण पर स्थित घरती पर आकर यहाँ की मर्यादानुसार पूण ब्रह्म भी अपना स्वरूप गापन कर अपूण मानव सा ही व्यवहार करता है। इसीसे उनका चरित जनसाधारण के अनुकरण योग्य बनता है और अवतार-प्रयोजन की सिद्ध होती है।

### लोकानुप्रेरक जीवनदर्शन के मुलाधार

रामचरितमानस के लोकानुप्रेरक जीवन दर्शन<sup>१</sup> के मूल आधार हैं—राम, सीता, लक्ष्मण, भरत, हनुमान आदि प्रमुख पात्रों के चरित में आद्योपात् व्याप्त समय, स्नेहशीलता, निश्चलता, मत्यनिष्ठा आदि मानवीय गुण। कथा के नायक होने से राम का चरित सर्वाधिक प्रशस्त है। व्यक्ति के रूप में अक्षय आत्म-विश्वास, स्थितप्रज्ञता, अनामक्ति, कतव्यनिष्ठा, स्वावलंबन, सगठनशक्ति, शीघ्र, पराक्रम आदि तत्त्वों से समवित उनका अखंड तेजोमय जीवन, कुटुम्बी के रूप में बड़े के प्रति श्रद्धा, समान्तर, आनाकारिता और सदापूण व्यवहार तथा छोटे पर स्नेह-वृत्ता एवं क्षमाशीलता की अजस्र वर्षा, मित्र के रूप में सीता का आजीवन निर्वाह, राजा के रूप में प्रजावर्ग की सुख-सुविधा का निरंतर ध्यान, समत्व पर आधारित समाज व्यवस्था का प्रवर्तन, लोकमत का समुचित सत्कार, ऊँच नीच का भाव त्याग कर वय जातियों से धनिष्ठ सम्बन्ध की स्थापना, समाज के विभिन्न वर्गों के साथ सभी परिस्थितियों में शीलपूण व्यवहार का निर्वाह, प्रत्यक्ष सम्पर्क से कोल-किरानादि जनजातियों का हृदय परिवर्तन, मानव समाज से ही नहीं पशुपक्षियों तथा जड़ प्रवृत्ति तक से आत्मीयता की स्थापना, व्यक्तिगत सुख सुविधाओं का त्याग कर स्वेच्छया दुःख एवं विपत्तिसकुल जीवन का वरण, असत तथा अयाय की शक्तियों में आजीवन सघर्ष करते हुए अन्ततः केवल धर्मनिष्ठा तथा चारित्रिक बल से भौतिकतावादी शक्तियों पर विजय

१ पुण्य पापहर सदाशिवकर विज्ञानभक्तिप्रद  
मायामोहमलापह सुविमल प्रेमान्बुधु शुभम्  
धोमद्रामचरित्रमानसमिद भक्त्यावगाहन्ति ये  
ते ससारपतङ्गघोरकिरण बह्मन्ति नो मानवा ॥

(३) सीता की अग्निपरीक्षा के समय राम का दुर्वाद कथन ।

(४) अखिल ब्रह्मांड नायक होते हुए भी एक स्थानविशेष—अयोध्या के प्रति उनकी अगाध आसक्ति और वैकुण्ठ से भी उसकी श्रेष्ठता का प्रतिपादन ।

मानस के अध्येताआ, कथावाचको और सहृदय गायको ने राम की भगवत्ता पर प्रश्न चिह्न लगाने वाले इन प्रसंगा की विविध प्रकार ने व्याख्या कर अवतार चरित की अलौकिक महत्ता अशुष्ण रखने का प्रयास किया है । मेरे विचार मे इनकी यथायथा को स्वीकारने से भी रामचरित की गरिमा पर कोई आंच नहीं जाती । लोकहृदय उनकी पुरुषोत्तमता का पूजक है—देवत्व का नहीं । ये तथाकथित कमजोरियाँ राम को मानवीय विशिष्टताओ से मंडित करती हैं, उन्हें दिव्य माकेत से उतार कर विधि प्रपंच की रगस्थली, गुणावगुण समन्वित, जड चेतना से सकुचित उस धरती पर ला खडा करती है, जिसका भार उतारने क लिए ही ब्रह्म राम न अव्यक्त से व्यक्त, जसीम स ससीम और नारायण से नर होना स्वीकार किया था । तुलसी इसका मर्म जानते थ । वे इस खतरे से भी अवगत थे कि जवतार-लीला को तक की कसौटी पर कसने से श्रद्धालु पाठक भटक जायेगे । इसीलिए उन्होंने इसका स्पष्ट शब्दो मे निषेध किया था—

चरित राम के सगुन भवानी । तरकि न जाहि करम मन बानी ॥<sup>१</sup>

रामायण को मानस का रूप देने वाले शिव का भी यही अभिमत था—

राम अतर्क्य बुद्धि मन बानी । मत हमार अस सुनहि भवानी ॥<sup>२</sup>

ऐसी बात नहीं कि ये अवतार चरित की असंगतिया स अपरिचित थे । एकाध स्थलो पर उन्होंने स्वय आराध्य के वृत्यो की आलोचना की है—

जेहि अघ बधेउ व्याध इव बाली । साइ सुकठ पुनि कीन्ह कुचाली ॥

सोइ करतूति विभीषन केरी । सपनेहु सो न नाथ हिय हेरी ॥<sup>३</sup>

मरणासन बालि क द्वारा भो इन्हाने राम के भयाङ्गपुरुषोत्तमत्व और समर्पिता को चुनौती िलाइ है—

मैं वैरी सुग्रीव पिपारा । कारन कवन नाथ मोहि मारा ।

धर्म हेन अवतरउ गोमाइ । मारेहु मोहि व्याध की नाइ ॥<sup>४</sup>

इसने यह स्पष्ट हो जाता है कि तुलसीदास राम के परात्पर ब्रह्मत्व क सम-

१ मानस, लका० ७३।१ ।

२ मानस, बाल० १२०।३ ।

३ मानस बाल० २८।६ ।

४ मानस कि० ८।६ ।

धक होते हुए भी उनकी मानवावतार-लीला को साधारण लोगो व चरित की ही भांति आलोच्य मानते हैं, इसलिए नहीं कि वे रामचरित की उपयुक्त 'पून-ताया की ययार्थता म विरवास करत है बल्कि यह दिखाने के लिए कि शेष के पण पर स्थित धरती पर आकर महीं की मर्यादानुसार पूर्ण ब्रह्म भी अपना स्वरूप गोपन कर अपूण मानव सा ही व्यवहार धरता है । इसीम उनका चरित जनसाधारण के अनुकरण योग्य बनता है और अवतार-प्रयोजन की सिद्ध होती है ।

### लोकानुप्रेरक जीवनदर्शन के मुलाधार

रामचरितमानस के लोकानुप्रेरक जीवन दर्शन<sup>१</sup> के मूल आधार हैं—राम, सीता, लक्ष्मण, भरत, हनुमान आदि प्रमुख पात्रों के चरित में आद्योपात् व्याप्त समय, स्नेहशीलता, निश्चयनता, मत्पनिष्ठा आदि मानवीय गुण । कथा के नायक होने से राम का चरित सर्वाधिक प्रशस्त है । 'यक्ति के रूप में अथय आत्म-विरवास, स्थितप्रज्ञता, अनासक्ति, कृतव्यनिष्ठा, स्वावलंबन, सगठनशक्ति, शीघ्र, पराक्रम आदि तत्त्वों से समर्पित उनका अखंड तेजोमय जीवन, कुटुम्बी के रूप में बड़ों के प्रति श्रद्धा, समान्तर, आज्ञाकारिता और सेवापूण व्यवहार तथा छोटी पर म्नेह-शृपा एवं धमाशीलता की अजस्र वषा, मित्र के रूप में सौहाद्र का आजीवन निर्वाह, राजा के रूप में प्रजावग की सुख-सुविधा का निरंतर ध्यान, समत्व पर आधारित समाज व्यवस्था का प्रवर्तन, लोकमत का सप्रुचित सत्कार, ऊच नीच का भाव त्याग कर वय जातियों से घनिष्ठ सम्बन्ध की स्थापना, समाज व विभिन्न वर्गों के साथ सभी परिस्थितियों में शीलपूण व्यवहार का निर्वाह, प्रत्यय सम्पक से कौन किरातादि जनतातिया का हृदय परिवर्तन, मानव समाज से ही नहीं पशुपक्षिया तथा जड प्रकृति तक से आत्मीयता की स्थापना, व्यक्तिगत सुख-सुविधा का त्याग कर स्वच्छया दुख एवं विपत्तिसकुल जीवन का वरण, अमृत तथा अयाय की शक्तियां म आजीवन सघष करते हुए अन्तत ववल धर्मनिष्ठा तथा चारित्रिक बल से भौतिकतावादी शक्तियों पर विजय

१ पुण्य पापहर सवाशिवकर विज्ञानभक्तिप्रद  
मायामोहमलापह सुखिमल प्रेमाम्बुपुर शुभम्  
धोमद्रामचरित्रमानसमिद भक्त्यावगाहन्ति ये  
ते ससारपतङ्गधोरकिरण बह्यति मो मानवा ॥



प्राप्ति—आदि कार्यव्यापारो मे उनकी लोकवादी साधना साकार हो उठी है ।

पुराणो के विष्णु ने पृथ्वी का भार उतारने के लिए मानवावतार ग्रहण कर मानवता को गौरव दिया था । मानस के राम ने अपनी लोकलीला म मानवीय गुणो के अद्भुत प्रकाश से भगवत्ता की प्रतिष्ठा बढ़ाई । उनका मर्यादापुरुषोत्तमत्व, परात्परब्रह्मत्व, का पर्याय बन गया । पहले भगवत्ता मानवता में परिणत मात्र हुई थी । तुलसी के राम म वह पूणतया लीन हो गई ।

### रामभक्ति—मानवता की अतिम शरणागति

रामकथा के व्यापक प्रचार द्वारा आध्यात्मिक वातावरण की सृष्टि और उसका लोकमगल मे विनियोग ही रामचरित मानस का मुख्य आग्रह है । तुलसी का यह दृढ विश्वास था कि इसके श्रद्धापूर्वक श्रवण-मनन से लोगो के हृदय म रामचरणो म प्रगाढ़ आभक्ति उत्पन्न होगी ।

जे यहि कयहि सनेह मगना । कहिहहि सुनिहहि समुझि सचेता ।

होइहै रामचरन अनरागी । कलिमल रहित मुमगन भागी ॥<sup>१</sup>

### मनोवैज्ञानिक पद्धति

इम धारणा की पुष्टि बड़ी ही मनोवैज्ञानिक पद्धति पर करते हुए वे कहते हैं ।

कहेउ नाथ हरि चरित अनूपा । "यास ममास स्वमति अनुरूपा ॥"<sup>२</sup>

जाने विनु न होह परतीती । दिन परतीति होहि नहि प्रीती ॥

प्रीति विना नहि भगति ट्टाई । जिमि खगपति जल के चिकनाई ॥<sup>३</sup>

परिचय से विश्वास, विश्वास स प्रीति, प्रीति स श्रद्धा और श्रद्धा से भक्ति—लौकिक प्रेमभावना की भाँति ही आध्यात्मिक विकास की भी यही प्रवृत्त प्रणाली है । मानस म इन स्थितियों का चित्रण ही नहीं हुआ है, हनुमान विभीषण, सुग्रीव, अगल, शबरी आदि के चरित्र म इनके विकास का भी निरूपण किया गया है । इम क्रम मे प्रतिष्ठित रामभक्ति साधक का अंतमल धो देती है जिससे जन्म जन्मान्तर से जमी हुई कुसंस्कारो की काई छूट जाती है । तुलसी का यह दृढ़ मन है कि अथ किमी भी साधना-पद्धति मे इनका अत्यन्तभाव सम्भव नहीं है—

१ मानस बाल० १४।१० ।

२ मानस उत्तर० १२२।१ ।

३ मानस उत्तर० ८८।७ ।

राम भगति जल त्रिनु खगराई । अभिअतर मल कवहुँ न जाई ॥

### सस्कारमार्जन

गोश्वामी जी की धारणा थी कि प्रारब्ध से प्राप्त कुम्भकारो की भांति ही मनुष्य जीवन को याननामय बनाने वाले मोह, लोभ, काम, क्रोधादि मनोविफारो के नाश को भी रामभक्ति ही एकमात्र औषधि है । इमवे श्रद्धापूर्वक सेवन से मानव ममाज मानसिक स्वास्थ्यलाभ कर लौकिक उत्कप और पारमार्थिक सिद्धि के पथ पर अग्रसर हो सकता है ।

मोह सकल व्याधिन कर मूला । तिन्हते पुनि उपग्रहि बहु मूला ॥<sup>१</sup>

यहि विधि सकल जीव जग रोगी । सोक हरप भय प्रीति वियोगी ॥<sup>२</sup>

रघुपनि भगति सजीवनि मूरी । अनूपान श्रद्धा मति पूरी ॥<sup>३</sup>

जो परलोक दृष्टा सुख चहू । बचन हमार मानि हू गहू ॥

यें पत्नियाँ अमर्ष्य मनुष्य गेगो में ग्रस्त मानवता के पनि तुलसी की अणार महानुभूति और उनके पजे से मानव जीवन को मुक्त करने क लिए उनवे कृष्णाद्र हृदय की छापटाहट यक्त करती हैं ।

रामभक्ति के विलक्षण प्रभाव का वर्णन करते हुए वे लिखते हैं कि एक बार हृष्य म प्रतिष्ठित हो जाने पर फिर वह कभी जाती नहीं । उसका श्रिय प्रनाश अधकारघर्मी अप्रवृत्तियो का मूलोच्छेद कर देता है—

राम भगति मनि उर बस जाके । दुख लवलेस न सपनेहु ताके ॥

यापहि मानन रोग न मारी । जिहके बस सब जीव दुलारी ॥

खल कामादि निकट नहि जाही । बसत भगति जाके उर माही ॥<sup>४</sup>

### सुगम मार्ग

इसकी मदम एव बडी विशेषता है सुगमता सुलभता । कम, जानाति साधना की भांति न तो यह अथमाय्य है न प्रयत्न साध्य । इसकी प्राप्ति की एकमात्र शत है सरलता, निष्कपटता और सतोषवृत्तिपूण जीवनचर्या—

“कहहुँ भगति पथ कवन प्रयासा । जोग न जप तप व्रत उपवासा ॥”

सरल सुभावन मन कुटिलाई । जपालाम सतोष मदाई ॥

२ मानस उत्तर० १२०।२६ ।

३ मानस उत्तर० १२१।१ ।

४ मानस उत्तर० १२१।७ ।

५ मानस उत्तर० ११६।६,८५ ।

१ मानस उत्तर० ४५।१ ।

इसके अधिकारी जीव मात्र हैं—

“एहि विधि जीव बराबर जेते । त्रिजग जीव सुर असुर समेते ॥’

अखिल त्रिस्व यह मोर उपाया । सब पर मोरि बराबरि दया ॥

### सवहारा का प्रयत्न

यो तो राम की वृषादृष्टि सब पर, सत्र समय और समान रूप से रहती है, किंतु उसका विशिष्ट पात्र मानवता का वह षग होता है जो उपेक्षित है, अभावग्रस्त है और अध पणित है । पतित पावन के सस्पर्श से वह निष्कलुष बन जाता है—

सरन गए मोसे अधरासी । होहि सुद्ध नमामि अविनासी ॥<sup>१</sup>

### लोकोन्मुखी अध्यात्म साधना

ऐन भक्तवत्सल की सवकसेय भाव से आराधना करके मनुष्य अनेक जर्मों की साधना के अनंतर कठिनता से प्राप्य मुक्ति को अनायास—भात्र सम्मुरता मपादन म प्राप्त कर सकता है—

‘राम भजत सोह मुक्ति गोसाईं । अनइच्छित आवइ बरिआई ॥<sup>२</sup>

म मुख होइ जीव मोहि जबही । कोटि जम अध नासहुँ तबही ॥

इस प्रकार रामभक्ति के माध्यम से तुलसी ने समाज को अध्यात्मोन्मुख करने के लिए जिस महात् अनुष्ठान का सूत्रपात किया उसका आधार व्यक्ति का अंत परिष्कार था और रामभक्ति का प्रचार वैयक्तिक साधना के रूप में ही किया गया था । अधो मुखी समाज को ऊर्ध्वमुखी बनाने का यही माग था । इसके माध्यम से तुलसी ने मानवता को एक नई जीवनदृष्टि दी एक नया रास्ता दिखाया जिसका अनुसरण करने के लिए किसी प्रकार के भौतिक साधना या सबल की आवश्यकता नहीं थी, एतत्थ श्रद्धा, विश्वास या मानसिक परिष्कार भी पुरस्सर अध्यात्मिक पृष्ठभूमि भी अनिवाय नहीं थी—भाव, कुभाव, अनख, आलस्य किमी भी प्रकार और शोच अशोच, किसी भी स्थिति में रामनाम जप से उसकी प्राप्ति हो सकती थी । इसके लिए धर छोड़ कर जगलो में धूनी रमान की जरूरत नहीं थी । अपेक्षा मात्र इतनी थी कि वह अति निवृत्ति और

१ मानस उत्तर० ८६।६ ।

२ मानस उत्तर० १२३।८ ।

३ मानस उत्तर० ११८।४ ।

अति प्रवृत्ति से बचते हुए योग और भोग के बीच का रास्ता पकड़ कर—नामस्मरण के द्वारा अपने और आराध्य के बीच का सम्पर्क मूत्र सम्हाले रहे। भगवान बुद्ध ने सद्धम के प्रचार से मानव चरित्र को ऊपर उठाने का यही मार्ग विधेय ठहराया था—तुलसी भी इसी निष्कष पर पहुँचे—

घर कीन्हे घर जात है, घर छोडे घर जाय ।<sup>१</sup>

तुलसी घर बन बीच रहु, राम प्रेम पुर छाय ॥

यह 'रामपुर रामराज्य का केन्द्र है। ऐसा रामराज्य जिनमे समत्व, शांति और सम्पन्नता का अखंड निवास है। जहाँ के नागरिका मे परस्पर स्नेह-सद्भावना है, रागद्वेष का नामोनिशान नहीं, दुखदारिद्र्य फटकने नहीं पाता, अधिकार लिप्सा से विरत होकर जहाँ सभी अपने कृतव्यपालन मे व्यस्त रहते हैं। इस प्रकार तुलसी ने रामभक्ति के माध्यम से वैयक्तिक उन्नयन को चरमसीमा पर पहुँचा कर लोकोत्थान का साधन बनाया और प्रत्येक व्यक्ति को विश्वनागरिकता प्राप्त करने का अधिकारी माना। यही उनकी अध्यात्मश्रित लोक साधना है।

लोकनायक तुलसी ने इस प्रकार व्यष्टि साधना को समष्टि-साधना में परिणत कर 'भक्तिपथ' का रूप दे दिया। मानव सुलभ दुबलताओं से रक्षा के लिए उन्होंने अनासक्ति एवं विवेक को इसका अभिन्न अंग ठहराया। इससे इसकी निम्बिजय का पथ प्रशस्त हो गया—

“विरति चर्म अमि ज्ञान मद, लोभमोह रिपु मारि ।

जय पाइय मो हरि भगति, देखु खगैस त्रिचारि ॥”

सुतप्राय मानवीय आदर्शों की पुनर्प्रतिष्ठा के लिए समाज का जिस प्रकार के सत्याग्रही, दृढ, अदम्य एवं भावप्रवण आध्यात्मिक पथनिर्देश की आवश्यकता थी—रामचरित मानस द्वारा उसकी प्रशसनीय ढंग से पूर्ति हुई।

### लोको मुखी भाषा शैली

राम की भाँति उनके अक्षरविग्रह, रामचरित मानस, का भी प्राकृत्य लोक-मगल के लिए हुआ था। अत रचयिता की दृष्टि उसे लोकग्राह्य बनाने की ओर बराबर लगी रहे। तुलसी का कायादश इसी भावना से प्रेरित था—

कीर्ति अनित्ति भूति भनि सोई । सुरसरि सम सब कह हित होई ॥<sup>२</sup>

इस उद्देश्य की सिद्धि के लिए यह आवश्यक था कि उसकी रचना लोकभाषा

१ शोहाबली २५६ ।

२ मानस० बाल० १३।६ ।

में की जाय, क्याकि वही सबकी समझ में आ सकती थी। इस विषय में एक अडचन यह थी कि परंपरा से समाहत धर्मग्रन्थों की भाषा उस समय भी सस्मृत ही थी और लोकप्रसिद्ध रामकथाओं—वाल्मीकि-रामायण, अव्यात्म रामायण आदि का निर्माण भी सस्मृत में ही हुआ था। लोगों के हृत्पय में चाहे वे सागर हो या निरक्षर सस्मृत भाषा के प्रति विशेष समात्तर का भाव था, देव अथवा देवाधिदेव की कथा, स्तुति और अर्चना के लिए देववाणी की उपयोगिता स्वतः सिद्ध थी। किंतु तुलसी के समकालीन समाज में उसके पढ़ने में समझने वाला की संख्या नगण्य हो गई थी। वह मिला कर धार्मिक कृत्या और धर्मग्रन्थों में जीवित रह गई थी—लोकजीवन की मुख्यधारा से उसका सम्पर्क टूट चुका था। तुलसी रामकथा को लोकशिक्षा का सशक्त माध्यम बनाना चाहते थे। इसलिए भी उसकी रचना देशभाषा में करना अनिवार्य था। उधर सस्मृत में अतिलोकनिष्ठा को देखते हुए उसे भी उचित सम्मान देना था। उन्होंने मानस के प्रत्येक कांड के मंगलाचरण और देवस्तुतियां में उसको स्थान देकर परंपरावादी प्रवृत्तियों का सत्कार किया। प्रतीत होता है कि इसके बावजूद उनके मन में आराध्य व पावन चरित्र को 'निगमागम' की भाषा त्याग कर ग्राम्यभाषा में लिखने की इच्छा बनी रही। मने विचार में इसका कारण लोकभाषा में किसी प्रकार की 'यूनता' अथवा अप्रमत्ता न होकर तत्कालीन धर्माश्रयी विद्वद्गण का सस्मृत के प्रति मोह और लोकभाषा के प्रति तीव्र जुगुप्सा एवं विरोध को भावना थी।

“राम सुकीरति भनित भदेमू । असमजम अस मोहि अदेमू ॥

छमिहहि सज्जन मोरि छिठाई । सुनिहहि वानवचन मन लाई ॥”

उन्होंने ग्राम गीतों में प्राप्त रामचरित्र के सहज माधुर्य एवं काव्य सौन्दर्य का प्रत्यक्ष अनुभव किया था इसलिए प्रथम रचना के लिए लोकभाषा के सामर्थ्य पर उन्हें रचमात्र सदेह नहीं रह गया था।

कालान्तर में भाषा सम्बन्धी उनका यह अतद्बद्ध समाप्त हो गया। सर्वमानवीय कल्याण-भावना की प्रेरणा से उन्होंने सस्मृत का पल्ला छोड़ कर लोकभाषा के ही पक्ष में निष्पत्ति किया—

का भाषा का सस्मृत, प्रेम चाहिए साच ।

काम जा आवे कामरी, का लै करव कुमाच ॥

× × ×

स्याम सुरभि पय विसद अति । करहि गुनद सब पात ॥

गिरा ग्राम्य सिय राम जस । गावहि मुनिह सुजान ॥

इससे यह स्पष्ट विदित होता है कि तुलसी ने रामकथा को ग्राम्य भाषा में वर्णित करने की प्रेरणा सीधे लोकजीवन से प्राप्त की थी—यह बात दूसरी है कि उसका स्वरूप निर्माण उहाने ससृष्ट के विशाल वाङ्मय का सहारा लेकर किया।

सयोगवश उनके आरम्भिक जीवन का अधिकांश अवध प्रदेश में बीता था। अयोध्या रामोपासना का सर्वप्रतिष्ठित केन्द्र था, उनके गुरु का उससे घनिष्ठ सम्बन्ध रहा होगा। नरहरिदाम की साधना भूमि 'सूकर छेत' अयोध्या के पास पड़ती थी, वही बाल्यावस्था में इन्होंने गुरुमुख में रामायण की अनेक आवृत्तियाँ सुनी थी, अतः मानस की रचना वही की बोली में हुई। राम की जन्मभूमि की भाषा होने से तुलसी का उसके प्रति आकर्षण एवं आदरभाव स्वभाविक था।

काव्य में वर्णित तथ्यों एवं भावों को जनमानस में उतारने के लिए भाषा का मरल, सुशोध, सरस एवं प्रवाहपूर्ण होना आवश्यक है। महज अभिव्यक्ति ही उसकी प्राणशक्ति है। अतः काव्य शास्त्र के भङ्ग और अप-अक्षर के सामर्थ्य से अवगत होत हुए भी तुलसी ने कहीं भी प्रतिभा प्रदर्शन का प्रयास नहीं किया। यह बात दूसरी है कि उनकी परावाणी में सारे काव्य गुण स्वतः ही सिमट आये हों। उनकी दृष्टि काव्य के आत्मपथ के सवारने पर थी, देहत्व के सजाने पर नहीं। रामभक्ति के स्वरस्य को लोक हृदय में यथार्थ रूप में प्रतिष्ठित कर देने में ही वे काव्य प्रतिभा की सायकता मानते थे और इसी में कवि काम की इतिथी समझते थे—

त्रिधु बानी सब भाँति सवारी । सोह न बरान जिना बर नारी ॥”

“मनिनि विचित्र सुकवि कृत जोऊ । रागनाम त्रिनु सोह न सोऊ ॥

इसी भावना ने उन्हें प्राकृत जनो के गुणगान से विरत किया। किसी व्यक्ति की प्रशंसा करने में चाहे वह कितना ही प्रतिष्ठित और वैभवं संपन्न क्यों न हो, मरस्वली का अपमान होता है, ऐसा उपात विचार सांसारिक प्रलोभनों एवं आकर्षणों से मुक्त मानवीय मूल्यों के पारखी का ही हो सकता है। यह कितने आश्चर्य की बात है कि राजाओं एवं दरबारी काव्य की भत्सना करने वाले तथा सामंती और सामन्तीय ससृष्टि के विपाक प्रभाव से समाज की रक्षा करने वाले इस जनवादी कवि को वादाग्रही आलोचक आज सामन्तवाद का पोषक बनाने लगे हैं

“गहि न जाह रसना काहू की कहौ जाहि जो सूखै” ।

इधर रामचरितमानस में अभिव्यक्त राम के चरित की मानवीय यूनताओं की भाँति ही तुलसी वं भी मानवता विषयक दृष्टिकोण की भी तीव्र आलोचना

होने लगी है। कहीं-कहीं तो इसने उग्र स्थूल विरोध का रूप ले लिया है। उन्हें ब्राह्मणवादी, शूद्रविरोधी और नारी निन्दक कह कर सामाजिक सद्भाव एवं एकता का विरोधी घोषित किया गया है। इन आरोपों पर सस्कारमुक्त चित्त से तत्कालीन ऐतिहासिक तथा सामाजिक परिवेश को दृष्टिपथ में रख कर विचार करने की आवश्यकता है। हम यह न भूलना चाहिए कि तुलसी आज से लगभग साठे चार सौ वर्ष पूर्व पैदा हुए थे, जब शताब्दियों की विधर्मी राज्य-व्यवस्था से आशात जनता अपनी अस्तित्व-रक्षा के लिए झूझ रही थी। वर्षों व्यवस्था जो कभी कर्मणा थी उस समय तक आने-आते पथरा कर जमना हो गई थी और उसी व लौहावरण के भीतर अपने सांस्कृतिक दाय को छिपा कर सजोने में व्यस्त थी। बाहरी आघातों से व्यक्तिगत तथा सामाजिक जीवनादर्शों में दरारें पड़ गई थीं और उन्हीं दरारों के कारण मनु द्वारा स्थापित सामाजिक व्यवस्था का गढ़ ढहने की स्थिति में आ गया था। तुलसी को सांस्कृतिक प्रहरी के रूप में इन सारे छिपा और दरारों को भरकर हवाशा तथा निरुत्तम्यविमूढ़ जनजीवन को नया श्वासेनी थी। प्राचीनता को एकत्र उतारने पकने से इसकी मिट्टि समझ नहीं थी—उन्हें जग समाज को लेकर चलना था, जिसका परिष्कार करना था वह पुरातनताप्रिय था—प्रातिकारी परिवर्तन के शटनेसे भड़क जाता। इसलिए उन्होंने आध्यात्मिक की ही तरह लोक सामाजिक जीवन के क्षेत्र में भी अतिवाञ्छिता का त्याग कर मध्यममार्ग का अनुसरण किया। उन्होंने जहाँ एक ओर वर्णव्यवस्था व कट्टर समर्थक व रूप में ब्राह्मण, शूद्र और नारी सम्बन्धी परस्पर प्राप्त विचारों का समर्थन किया वहीं दूसरी ओर उन्होंने वैष्णव भक्ति आन्दोलन द्वारा प्रवर्तित गुणधर्मवादी दृष्टिकोण के प्रकाश में देशपाल की बदली हुई परिस्थिति को देखते हुए ब्राह्मण व गिरी हुए चारित्रिक आदर्शों की पुनरुद्धार आलोचना की, शूद्रों को वशिष्ठ तैम युगाराध्य ब्राह्मण और भरत जैसे लोकव्यय क्षत्रिय न गने मिलाया, और स्त्री पराधीनता को समाज का अभिघाव बताया—

‘बहु विधि गुजा नारि जग माही । पराधीन गपनेहु सुख ताही ॥’

उसी यह मनुस्मृतिक दृष्टि समाज के सभी वर्गों पर पड़ी। धार्मिक मध्यमताओं, सामाजिक जीवन व आन्दोलन सन्ध्या और वैयक्तिक जीवन व वैयक्तिक मूल्यों में परिमित मानवता के स्वयं विनाश व अवरोधक तत्वा पर उन्होंने निर्मम प्रहार किये, विधर्मीकारी प्रवृत्तियों को निर्मूल करत सगटन तथा गद्गदता व शिथिल व निम्न उन्होंने स्त्रीवादी सामाजिकता, पत्निता और पुरो-मियों व स्वार्थ एवं लोभ-परक नेतृत्व को अस्वीकार कर समाज के उद्धार का

उत्तरदायित्व सता वा मोपा । उनकी यह धारणा थी कि व्यक्ति और लोक का रामन्वय रामदर्शी सता का निस्पृह तथा पावन व्यक्तित्व ही कर सकता है—  
लोकमत और बदमत दाना से सतमत का बरीयता देन का यही रहस्य था—

“सत हृदय सतत मुखनारी । बिस्व सुखद जिमि इन्दु तमारी ॥”

रामचरितमानस में निरूपित उच्च मानवीय मूल्यों के द्वारा विश्वकल्याण की जो कल्पना तुलसी ने की थी कालांतर में वह साकार हुई । मध्यकालीन अधकारधर्मा सामतवाद तथा रुडिज्जर सामाजिक भावताओं के महल ढह कर रहे । अंग्रेजी शासन के साथ पश्चात्य, नान-विज्ञान से आलोकित आधुनिक युग का पदापण हुआ । राजनीतिक चेतना के इस अभूतपूर्व जागृति काल में भी युगावतार गांधी ने तुलसी के ‘रामराज्य’ को ही सर्वोदय भावापन्न आदर्श राज्य व्यवस्था स्वीकार किया । इतना ही नहीं उन्होंने मानस प्रतिपादित नाम महिमा में हट आस्था रखते हुए ‘रामनाम’ को ही जीवन तथा जगत की सारी समस्याओं की महोपधि बताया और उसकी आजीवन साधना कर ‘रामनाम’ का स्मरण करते हुए एक सच्चे रामभक्त का भाँति अपनी ऐहिक लीला सवरण की ।

यह कहा जा चुका है कि तुलसी ने आध्यात्मिक जीवन को ही सर्वोपरि माना था और राजनीतिक, सामाजिक तथा व्यक्तिगत जीवन के उत्थान में उसकी भूमिका अनिवाय बतायी थी । भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन का सूत्रपात ही धार्मिक राष्ट्रीयता के रूप में हुआ । गांधी और विनोबा के नेतृत्व में तो उसने पूणतया आध्यात्मिक रूप धारण कर लिया—तुलसी ने ‘धर्मरथ प्रसंग’ में वैज्ञानिक उपलब्धियों से सुसज्जित विश्वविजयी रावण पर भौतिक साधना के अभाव में भी बनबासी राम की विजय का कारण उनका अदम्य उत्साह और उच्चकोटि की नैतिकता बताया है । गांधी ने राम के इस आत्मजयी व्यक्ति तत्व से प्रेरणा प्राप्त कर अंग्रेजी साम्राज्यशाही से भारतभूमि का उद्धार किया । रामचरित भारतीय स्वतंत्रता संग्राम में कितना प्रेरक रहा है, इसका पता असहयोग आंदोलन के समय निर्मित साहित्य से लगता है ।

आज विज्ञान की अनियंत्रित प्रगति और भौतिकता के असंतुलित विकास ने मानव सम्यता का रामायण काल की ही भाँति विनाश के कगार पर ला सडा किया है । आसुरी शक्तियों का जाल जल, थल और अंतरिक्ष चारों ओर फैल गया है । अपना देश राजनातिक दृष्टि से स्वतंत्र हो गया है किन्तु स्वतंत्रता के फल—सुख एव शानि से सर्वथा वंचित हैं । ऐसे घोर सांस्कृतिक संकट के समय समाज के मानवीय तत्वा की पुनर्स्थापना के लिए रामचरितमानस को नये सिरे से पढ़ने-गुनने का नहा, समझने की जरूरत है ।



## तुलसी की लोकाराधना

तुलसीदास लोकदर्शी कवि थे। समकालीन जनजीवन की पीड़ा, प्रतारणा और हीनावस्था ही उनकी काव्यरचना का प्रेरणास्रोत था। लोकमानस से सादात्म्य स्थापित कर उन्होंने अपनी कृतियां में उसका सच्चा प्रतिबिंब उपस्थित किया। उनके तीव्र संवेदनशील मानस में युग का जीता-जागता स्वरूप उतर आया। प्राकृत जन को उद्वेलित करने वाली परिस्थितियाँ उनकी निजी अनुभूति बन गई। तुलसी साहित्य में स्थान-स्थान पर अत्याचार तथा अभाव से क्षुब्ध लोकवाणी की गूँज सुनाई पड़ती है। कहना न होगा कि उसके अनर्गत मुगल कालीन जन-जीवन का जो चित्र उपलब्ध है, वेतनभोगी शाही इतिहासकारा तथा विदेशी सैलानियों के सतही विवरणों में उसकी झलक भी नहीं दिखाई देती। दण्डनीति पर आधारित यवन शासन दुःख दारिद्र्य से त्रस्त जनता का शोषण कर रहा था।<sup>१</sup> उसके अधीनस्थ सामंत और राजकर्मचारी प्रजापीडन में अपने मालिकों को भी मात देते थे। क्या किसान और क्या मजदूर सभी जीविका विहीन होकर पेट की ज्वाला में भस्म हो रहे थे।<sup>२</sup> अकाल तथा महामारी के प्रकोप से चतुर्दिक त्राहि त्राहि मची हुई थी।<sup>३</sup> हिन्दुओं के देवालय भ्रष्ट किये जा रहे थे।<sup>४</sup> धार्मिक जीवन में दम और पाखंड का एकाधिकार

१ बोहावली, ३४६, कवितावली, ५।३२।

२ प्रभु ते प्रभु गन बुखद अति, प्रभुहिं सभारे राउ।  
करतें होत कृपान को, कठिन घोर घन घाउ ॥ दो० ५०।

३ कवितावली, ७।६७।

४ वही ७।८१, रामचरितमानस, ७।१०।१५।

५ तुलसी देवल देव को, लागे लाख करोरि।

काग अभागे हगि भरयो, महिमा भई कि पोरि ॥

बोहावली, ३८४।

था ।<sup>१</sup> तीर्थ अनाचार के केन्द्र हो गये थे ।<sup>२</sup> अयोध्या और काशी ऐसे नगरतीर्थों की तो बात ही क्या चित्रकूट<sup>३</sup> जैसे पहाड़ी तीर्थ भी कलि प्रभाव से अछूते नहीं बचे थे ।

शताब्दिषा की पराधीनता से सामाजिक जीवन में अनेक विकृतियाँ आ गइ थी । हिन्दुआ में भी कन्न-पूजा आरम्भ हो गई थी ।<sup>४</sup> भूतप्रेत, डाकिनी-शाकिनी में लोग की आस्था बढ़ रही थी ।<sup>५</sup> पारम्परिक ईर्ष्या-द्वेष की अग्नि विकरान रूप धारण कर चुकी थी । सगे सबधी खून क प्यासे दिखाई देते थे ।<sup>६</sup> कसब्य की अवहेलना और अधिकार-लिप्सा सीमा पार कर रही थी ।<sup>७</sup> अकर्मण्य आलोचकों और प्रवचकों की कमी न थी ।<sup>८</sup> स्वार्थ की विभीषिका से सामाजिक जावन यातनामय हो गया था ।<sup>९</sup>

१ गुरसवननि तीरय पुरिन, निपट कुठाट कुसाज ।  
मनहुँ मवासे भारि कलि, राजत सहित समाज ॥

—वही ५५८ ।

२ मुख्य वचि होत बसिबे की पुर रावरे,  
राम तेहि वचिहि कामाबि घेरे । विनय, २१०

३ चित्र कूट गए हों कलि की कुवालि बेलि,  
अब क्षपडरनि डरयौ हों । विनय, २६६ ।

४ बोहावली, ४९६ ।

५ बोहावली, ६५, ९२ ।

६ सहवासी काघो गिलहि, पुरजन पाक प्रबोन ।  
कालक्षेप केहि मिलि करहि, तुलसी लग घृग मोन ॥

बोहा० ४०४ ।

७ सामु समुर भुव मातु पितु, भयो चहँ सब कोइ ।  
होना डूजी ओर को, सुजन सराहिय सोइ ॥

बोहावली ३९१ ।

८ ठाढ़ो द्वार न ब सकें, तुलसी जे नर नोच ।  
निबहि बलि हरिचब को, का कियो करन बघोच ॥

—वही, ३८८ ।

९ हरो घरहि, तापहि बरत, फरे पसारहिं हाय ।  
तुलसी स्वारय भीत जन, परमारय रघुनाथ ॥

—वही, ५२ ।

तुलसी की अतर्भङ्गी दृष्टि समाज के इस जर्जर ढाँच पर पड़ी। उन्होंने उसके निगूढ गहरा में छिपी व्याधियाँ और उनका पोषक बीटाणुआ को देखा। कवितावली में विराट् पुरुष के हृदय में बसते रावण रघु राजरोग का जो निम्ब प्रस्तुत किया गया है, उसके मूल में धम्नुत युगरोष ही है। सोरपीठक मुगल शासन और विश्व-परितापी रावण की रीति-नीति में उन्हें अद्भुत साम्य नियायी पड़ा। प्रकट रूप से तो उन्होंने इसका उल्लेख एवाध रयला पर हा किया है, किन्तु परोक्षरूप में उनकी समस्त रचनाओं में आनुरो प्रकृति का जैसा वर्णन किया गया है, वह तत्कालीन शासक वर्ग के आचार-व्यवहार से पूरी तरह मेल खाता है। रावण ने सारे ससार की सपना चूट कर जिस पूँजीवाणी साम्राज्य की स्थापना की थी, राम ने जन जातियाँ के सहयोग से उसका मूलोच्छेद करके अमुरो के ही नियंत्रण में उसे एक नई व्यवस्था प्रदान की थी। तुलसी को यह गाणानालीन सदर्म साम्प्रतिक स्थिति में बड़ा ही प्रेरक प्रतीत हुआ। साधनहीन जाति का उद्धार अशुर संहारक राम का सोनानुरेक चरित्र ही कर सकता है, इसमें उनकी दृढ़ आस्था हो गयी। अतः तद्वास्तव समाज के उद्बोधन के लिए उन्होंने अपने पूर्ववर्ती निगुणमार्गी सत्ता की भाँति चेताने तथा दार्शनिक तत्त्व विवेचन का मार्ग न अपनाकर लोकग्राह्य कथा पद्धति से राम के लोकपावन चरित्र का आदर्श प्रस्तुत करके दर्शन का जीवन में उतारने का स्तुत्य प्रयास किया। इस माध्यम से अध्यात्म तत्त्व की प्रनिष्ठा हो जाने पर सारी समस्याएँ हल हो सकती हैं, और दुःखार्च्छि से सहज ही छुटकारा पाया जा सकता है। उनका दृढ़ विश्वास था—

जग मगल गुन राम राम के । दानि मुक्ति धन धरम धाम के ॥<sup>१</sup>

मत्र महामनि विषय व्याल के । मेदत कठिन कुअक माल के ॥

अत्याचारी शासन से श्रुत जनता के लिए उनका यह उद्घोष कितना आशाप्रद और धैर्य बंधाने वाला था—

राज करत निनु काज ही, करत कुठाट कुसाज ।

तुलसी ते कुहराज ज्यो, जेहँ बारह बाट ॥

राम नाम नरकेसरी, कनकचसिपु कलि काल ।<sup>२</sup>

जापक जन प्रह्लाद जिमि, पालिहि दलि सुरसाल ॥

इस सुदृढ़ आध्यात्मिक आधार के साथ ही उन्होंने परंपरागत सांस्कृतिक

१ रामचरितमानस, बाल ३१।२ ।

२ बोहायली, ४१७ ।

३ रामचरितमानस, १।२७ ।

मूल्यों की रक्षा के लिए जनता को सर्वस्व अर्पित करने की प्रेरणा भी प्रदान की—

सहि कुबोल साँसति मकल, अगइ अनट अपमान ।  
तुलसी धरम न परिहरिय, कहि करि गये सुजान ॥<sup>१</sup>

### लोकोपासना का राजपथ—रामभक्ति

लोकजीवन के प्रत्यक्ष अनुभव से तुलसी की यह धारणा बन गयी थी कि उसका उत्थान व्यक्तिगत नैतिकता के उत्कर्ष से ही सम्भव है। व्यक्ति की अधोगति के मूल में राजनीतिक एवं सामाजिक परिस्थितियाँ हो या पूर्वजन्म के सत्कार, प्रत्येक दशा में मनोभावा का परिष्कार हुए बिना भवातप से आत्यंतिक मुक्ति नहीं मिल सकती। कूठाएँ, सत्रास, मानसिक द्वंद और दारिद्र्य सबका कारण मनुष्य की वैषयिक वृत्ति है। उसी के नियंत्रण और उन्मत्तीकरण से भौतिक अभावों एवं भयप्रद परिस्थितियों का दीर्घ सतोप एवं सुख का अनुभव किया जा सकता है। इस प्रकार की मन स्थिति अत्यात्म साधना में प्राप्त होती है। किन्तु कर्म, अहतायें अपेक्षित हैं, वे जनसाधारण की पहुँच से बाहर हैं। इन सारी बातों को ध्यान में रखकर उन्होंने रामभक्ति का अत्यंत लोकग्राह्य स्वरूप प्रस्तुत किया है—

सम सतोप विचार विमल मति सत भगति ये चारि हठ करि घर ।  
काम ब्रोध अह लोभ मोह मद राग द्वेष निसंस करि परिहर ॥  
सदन कया मुखनाम हृदय हरि सिर प्रनाम सेवा करि अनुसर ।  
नयन निरखि तृपा समुद्र हरि अग जग रूप भूप सीता वर ॥  
इहै भगति वैराग्य म्यान यह हरिलोपन यह सुभ व्रत अचर ॥

सभी वर्गों और स्थितियों के मनुष्य ही नहीं सारा चराचर जगत इसका अधिकारी है।<sup>२</sup> मनुष्य को अतः सर्व बाह्य व्याधियों तथा मनोगत अयकार को दूर कर यह सहज ही उस तत्त्वज्ञान को प्राप्त करा देता है, जिसे योग और

१ बोहावली, ४६६ ।

२ विनय, २०५ ।

३ अखिल विस्व यह मोर उपाया । सब पर मोरि बराबर थाया ।

सब मन प्रिय सब मन उपजाये । सबते अधिक मनुज मोहि भाए ॥

४ यहि बियि सकल जीव जग रोगी । सोक हरष भय प्रीति बियोगी ।

रघुपति भगति सजोवनि मुरी । मनुषान धदा मति पूरी ॥

जान माग के अनेक कष्टसाध्य स्तरो को पार करने के बाद भी बिरले ही साधक प्राप्त कर पाते हैं—

रघुपति भगति बारि छालित चित बिनु प्रयास ही सूझे ।

तुलसीदास कह चिद्विलास, जग बूझत बूझत बूझे ॥ विनयपत्रिका ।

स्वरूप ज्ञान से आत्मविश्वास का उदय होता है । शक्ति केन्द्र से सम्बद्ध हो जाने से मनुष्य में साहस, निर्भयता आदि भावों का उदय होता है और वे उसके स्वभाव के स्थायी अंग बन जाते हैं फिर वह किसी भी सासारिक शक्ति से पराभूत नहीं हो सकता और न दूषित सामाजिक वातावरण ही उस मिटा पाता है ।<sup>१</sup> आराध्यदेव की शक्तिशाली भुजाओं द्वारा अहर्निश सुरक्षित रहकर वह निर्भय विचरता है—

तुलसी जेहि के रघुनाथ से नाथ, समर्थ सुसेवत रीझत थोरे ।<sup>२</sup>

कहा भव पीर परी तेहि घो, विचरे धरनी तिनसा तिनतोरे ॥

### जन-नायक राम

राम भक्ति की ओर लोकहृदय को आवृष्ट करने के लिए तुलसी ने रामचरित के ऐसे तत्वों एवं प्रसंगों को उभारा जो लोकस्तर के सर्वाधिक मूल में थे । आराध्य के परात्पर ब्रह्म युवराज और महाराज रूप का साधारणीकरण तुलसी की विशेषता है । रामचरितमानसा का प्रतिपाद्य ही राम की भगवत्ता है, किन्तु उनकी अवतारलीला प्राकृत नरलीला के रूप में ही प्रस्तुत की गई । एवाय स्थलों पर जहाँ अलौकिकता का प्रदर्शन हुआ भी वह अत्यंत गोपनीय ढंग से और ऐसे घनिष्ठ सबंधियों के समक्ष अिनके द्वारा उसके लोकप्रचार की संभावना नहीं थी, बाल्यावस्था में वे नगर के मामाया बालका के साथ अयोध्या की गलियों की मिट्टी और धूल में खेलें थे, किमोरावस्था में पत्नी और माध्या सहित उन्होंने सत्वाओं और नागरिका के साथ सामाजिक उत्सवों में सम्मिलित होकर रंग-

१ भागीरथी जलपान करो ओ नाम ह राम को लेत नितही ।

मोरो न लेनों न देखो कष्ट कलि भूति न राखरे ओर बितेही ॥

आनि क ओर करो परिनाम तो तू ही भितेहै प म न भितेही ।

साह्यण ज्यों जगित्यो उरगारि हों त्यों ही तिहारें हिते न त्रितहो ॥

कथितावली ७।१०२ ।

२ वही, ७।४६ ।

रेलियाँ मनाइ थी। वनवास क समय कोल-किरातो स घुलमिल कर उनकी जीवनधारा को नया मोड़ दिया था। रिण, बानर आदि अधसम्प जातियों क अत्याचारी शासक को समाप्त कर सुल और शाक्तिपूण जीवनयापन म सहायता की थी और उनका लोकमोहक सौन्दर्य तथा चैष्टारुँ नागरिकों को मुग्ध करती हैं। बाल्यावस्था म सखाओं के भाय भौरा चकडोरी खेलत और पतग उडाते हुए देखकर नगरवासी लोग आनन्दमग्न हो जाते हैं। जनकपुर मे नगरदर्शन के समय स्त्री पुरुष काम काज छोडकर उनके दशन क लिए दूट पडत हैं, स्त्रियाँ पुष्पो की बर्षा कर उनका स्वागत करती हैं। वे जहाँ-जहाँ जाते हैं आनन्द की बर्षा होती चलती है।

वन-पथ मे जो उहे एक बार देख लेते हैं, आत्म-विस्मृत हो जाते हैं—  
स्थान स्थान पर उनका स्वागत होता है, लोग दूर दूर तक साथ लगे हुए चले जाते हैं और रात मे विश्राम का प्रस्ताव करके सेवा का अवसर प्राप्त करना चाहते हैं।

लोकजीवन को आनन्दपूण बनाने और उस आनन्द में स्वयं मग्न होने मे राम की गहरी अभिरुचि तुलसी द्वारा प्रस्तुत झूला तथा वसतलीला के बणना से व्यक्त होती है, जिसमे ऐश्वर्य तथा मर्यादा को भूलकर वे सखाओं, बधुआ और स्त्री समाज के साथ नगर की गलिया मे घूम घूमकर हाथ म पिचकारी और कधे पर अबीर की क्षोली लटकाये हुए स्वागिया तथा विद्रुपको के बीच हृदयग का आनन्द लेते हुये दिखाई देते हैं—

खेलत बसत राजाधिराज । दणत नभ कौतुक सुर समाज ॥<sup>१</sup>  
सोहैं सखा अनुज रघुनाथ साथ । क्षोलीह अबीर पिचकारी हाथ ॥  
उत जुवति जूय जानकी सघ । पहिरे पट भूपन सरस रग ॥  
गुपुर कटि किंकिनि अति सोहाइ । ललना गन जब जेहि धरत धाइ ॥  
लोचन आजहिं फगुआ मनाइ । छाडा है नचाइ हा हा कराइ ॥  
चढे खरनि विद्रुपक स्वाग गाजि । करै कूटि निपट गइ लाज भागि ॥  
नर नारी परस्पर गारी देत । मुनि हंसहि राम भाइन समेत ॥  
प्रगीत मुक्तका म कवि थी अतवृत्ति का खुलकर खेलने का अवसर मिलता

१ हिय हरपाहि बरसहि सुमन, सुमुखि सुलोचनि वृन्द ।

जाहि जहाँ जहाँ बधु बोड, तहाँ-तहाँ परमानन्द ॥

(रामचरितमानस बाल-२२६)

है। इसी से राम का नागरिकों के साथ इतना सम्पृक्त, इतना घुलामिला दिखाया जा सका। इस प्रकार की रसमयी लीलाओं से लोकजीवन को तो महत्व मिला ही, राम के लोकनायकत्व की सायकता भी प्रतिपादित हो गयी। मुख-दुख सभी स्थितियों में आश्रिता के साथ कधे से कथा मिलाकर रहने वाला ही उनके गले का हार हो सकता है, तुलसी इस तथ्य से पूणतया अवगत थे।

### लोक सस्कृति का चित्रण

राम कथा के अतगत लोकप्रचलित संस्कारों, उत्सवों, प्रथाओं एवं व्रतोत्सवों के अनगिनत प्रसंग आय हैं। रामचरित मानस, रामलला नहछू, धानकी मगल, पार्वती मगल, गीतावली और कवितावली में इसके बड़े ही सश्लिष्ट एवं रोचक विवरण प्रस्तुत हुए हैं। इनसे गृहस्थ जीवन की अतर्घाराओं से तुलसी का प्रगाढ़ परिचय प्रकट होता है। इस संवध में एक ध्यान देने की बात यह है कि उन्होंने लोकजीवन में प्रचलित ऐसी अनेक प्रथाओं को भी प्रकृत रूप में चित्रित कर प्रकारान्तर से उपादेय ठहराया है जिनमें लोकमानस से अपरिचित आलोचकों को अश्लीलता और गंवारूपन की गंध आती है।

रामलला नहछू में अंकित महाराज दशरथ की गहरा रसिकता का व्यञ्जक एक चित्र देखिये—

अहिरिन हाथ दहेडि सगुन लेइ आवहि हो ।<sup>१</sup>

उनरत जोवन देखि नृपति मन भावहि हो ॥

इस अवसर पर स्त्रियों द्वारा गाई गई गारी का उल्लेख ही नहीं ब्योरा भी दे दिया गया है—

काहे राम जिव सावर लछिमन गोर हो ।

कीधा रानि कौसिलहि परिगा भार हो ॥

राम अहाँहि दसरथ के लछिमन आन क हो ॥

मुडन तथा विवाह में स्त्रियाँ 'स्वाग भर कर कलि कौतुक करती हुई 'रत-अगा' करती हैं इसका भी निर्देश है—

हिलि मिलि करहि सवाग, सभा रस केलि हो ।<sup>२</sup>

नाउनि मन हरपाइ, सुगधिन मेलि हा ॥

१ रामललानहछू ५ ।

२ वही १२ ।

३ रामलला नहछू, १८ ।

‘राम विवाह’ के समय गारी का रूप और निखरता है। जनकपुर की स्त्रियाँ मात के समय महाराज दशरथ, बरातिया, उनके बुद्धि की स्त्रियों का नाम ले लेकर गाली माती हैं—

जेबंत देहि मधुर घुन गारी। लेइ लेइ नाम पुरुष अह नारी ॥<sup>१</sup>

समय सुहावनि गारि विराजा। हँसत राउ सुनि सहित समाजा ॥

गारी का प्रसंग यही समाप्त नहीं होता। तुलसी को यह प्रथा इतनी प्रिय<sup>२</sup> थी कि लकाहन के समय वे हनुमान के पादुन रूप में उपस्थित अग्निदेव के भोजन के समय रागनिया द्वारा गारी से सत्कार कराना नहीं भूलत—

पादुने वृसानु पवमान सो परोसो,

हनुमान सनमानि के जेभाएँ चित चाय सा।<sup>३</sup>

तुलसी निहारि अरिनारी दै दै गारि कहै,

बावरे मुरारि वैर कीही राम राय सो ॥

कथा को विदाई का चित्र कितना हृदयद्रावक होता है। इस अवसर पर परम विरागी विदेह भी विचलित हो गये थे। पार्वती मगल का एक विन्ध्य है—

भेंटि विदाकरि बहुरि भेंटि पहुँचावहि।<sup>४</sup>

हुँकारि हुँकारि मुता लवाइ धेनु जनु धावहि ॥

भौवरि के समय ‘लावा परछने की रीति कन्या के भाई द्वारा सम्पन्न कराई जाती है। जनक के कोई पुत्र न था। तुलसी ने भूमि पुत्र मगल को इस मागलिक कार्य के लिए उपस्थित कर उक्त प्रथा की मर्यादा निभाई—

सिय भ्राना के समय भौम तव आयउ।

दुरी दुरा करि नेग सुनात जनाएउ ॥

इसी प्रकार कोहबर, ‘लहकोरि’ ‘जुआ आदि रस्मा का भी वर्णन बड़ी तमयता के साथ किया गया है।

इन सारे चित्रणों का आधार तुलसी के सामने अपना देखा हुआ समाज और उसमें प्रचलित लोकप्रथाएँ रही हैं, इसमें कोई सन्देह नहीं।

१ रामचरितमानस, १।३२८-७।

२ अमिय गारि गारउ गरल गारि कीह करतार।

प्रेम बेर लो जननि जुग, जानहिबुध न गवार। बोहावलो ३२८।

३ कवितावली लका २४।

४ पावतीमगल, १५८।

५ जानकीमगल, १६६।



## लोक धर्म

'राम' का अवतार लोकधर्म की स्थापना के लिए हुआ था। तुलसी ने अपनी वृत्तियां में रामकथा के प्रमुख पात्रों के आचार, व्यवहार तथा उत्तमों के माध्यम से लोकधर्म का नैर्मागिक स्वरूप प्रस्तुत किया है। अहिंसा, कष्टना, परोपकार, वृद्धों की सेवा, मर्यादातिष्ठता, जन्म भूमि प्रेम, दुष्टों का दमन, प्राण देकर भी अबलाओं की रक्षा, भलो के लिए नम्रता और अहिंसा, तिलाजलि देकर शक्ति की भाषा का प्रयोग आदि कार्य व्यापारों को आदर्श सामाजिक जीवन का अनिवार्य रूप मानकर उन्होंने राम की लोकलीला में उनकी व्याप्ति दिखाई और इस प्रकार लोकधर्म पालन के प्रति जनरुचि जागृत की।

## लोक प्रकृति निरीक्षण

सामाजिक जीवन में तुलसी ने लोक स्वभाव का सूक्ष्म निरीक्षण किया था। उनकी रचनाओं में ऐसे स्थल भरे पड़े हैं, जिनसे मानव प्रकृति की विलक्षणताओं की पहचान और अद्भुत क्षमता चोखित होती है। विशिष्ट अवसरों पर प्रस्फुटित मन के सहज उद्गार व्यक्ति के वास्तविक स्वभाव स्तर तथा विचार पद्धति के सूचक हैं। पात्रों के चरित्रचित्रण में उनकी दृष्टि में यह बात बराबर रही। इसी से मानव प्रकृति के चित्रण में उन्हें इतनी सफलता प्राप्त हो सकी। रामचरित मानस में सन-असज्जन बदना, नारदमोह, लक्ष्मण-भरशुराम संवाद, मयरा प्रसंग तथा कलिधर्म निरूपण आदि प्रसंगों में तो एतद्विषयक प्रचुर सामग्री उपलब्ध है ही, दोहावली में भी लोक स्वभाव एवं प्रवृत्ति-यजक अगणित रेखाचित्र सजाये गये हैं—

### (१) त्रिया चरित्र

कत सिख षेइ हमहि कोउ भाई । गाल करब केहि कर बल पाई ॥<sup>१</sup>  
हमहुँ कहब अब ठकुर सोहाती । नाहि त मोन रहब दिनु राती ॥  
जारै जोगु सुभाउ हमारा । अनभल देखि न जाइ तुम्हारा ॥

### (२) गूढ़ ध्यम्य (कूटि)

करहि कूटि नारदहि सुनाई । नीक दीह विधि सुन्दरताई ।  
रीसिहि राजकुवरि छत्रि देखी । इन्हहि बरिहि हरि जानि विसेखी ॥<sup>२</sup>

१ रामचरितमानस, २।१४-१ ।

२ वही २।१६ ४ ७ ।

३ रामचरितमानस, १।१३४ ३,४ ।

- (३) क्षोभ में अपशब्द प्रयोग  
 खीझति मदीवै सविपाद दखि मेघनाद<sup>१</sup>  
 बयो लुनियत सब याही दादीजार को ।<sup>२</sup>
- (४) पडोसियो का क्रूरतापूर्ण व्यवहार  
 महवासी कायो गिराहि पुरजन पाक प्रवीन ।  
 कानयेप केहि मिलि करहि तुलसी खग मुग मीन ॥
- (५) लोकव्याप्त स्वायभावना  
 हरीचरहि ताराहि बरत, फरे पसारहि हाय ।  
 तुलसी स्वारथ मीन जन, परमारथ रघुनाथ ॥<sup>३</sup>

### लोक विश्वास

लोक जीवन की सामान्य धारा अधिकांशतः परम्परागत भावनाओं से संचालित होती है। इनका आधार जाति विशेष के मास्कृतिक विकास की विभिन्न दशाओं में अनुभूत तथ्य होते हैं। सम्यता का ऐतिहासिक ज्वार ऊपर से निकल जाता है, ये अन्तस्तल में चिपके पड़े रहते हैं। तुलसी ने समकालीन जीवन को प्रभावित करने वाले तत्वों को मनोयोगपूर्वक देखा-परखा था। उनमें कुछ उहे सारहित साधक लगे, कुछ हानिकारक। उन्होंने उनका विवेकपूर्वक त्याग अथवा ग्रहण करने के लिए लोगों को भावधान किया—

(१) अथविश्वास—बहराइच में गाजी मियाँ की दरगाह की जियारत से कृष्टनाश, पुत्र प्राप्ति, नेत्रनाश विषयक लोकभायता का खतन—

लही जाँस कर आँधरे, बाँस पूत कर लाय ।

कब कोटी फाया लही, जग बहरायच जाय ॥<sup>४</sup>

(२) सती प्रथा का विरोध—पति के मरने पर उसकी चिता में छियों के

१ कवितावली, ५।१२ ।

२ 'दादीजार' स्त्रियों द्वारा पुरुषों के लिए प्रयुक्त एक गाली है, जिसका अर्थ है 'जिसकी दाढ़ी झला देने योग्य हो।' मध्यकाल में मुसलमानों के घोर अत्याचार से क्षुब्ध होकर हिन्दू स्त्रियाँ ने यह शब्द गढ़ा था आक्रोश व्यक्त करने के लिए, कालांतर में इसका प्रयोग अत्याचारों, अनिष्टकारक अथवा विरोधी-भाव के लिए होने लगा ।

३ बोहावली, ४०४ ।

४ बोहावली, ४६६ ।

आत्मदाह की मध्यकालीन राजपूतो में प्रचलित प्रथा उन्हें अमातवीय एवं मर्यानाहीन प्रतीत हुई। उन्होंने त्रिया को इससे विरत होकर कुलशील का पालन करते हुए साधनापूर्ण जीवन व्यतीत करने की सीख दी।

सीस उपारन विन कहेउ, बरजि रहे प्रिय लोग ।

पर ही मती कहावती, जरती नाह वियोग ॥<sup>१</sup>

इसके अतिरिक्त लोकनिवास, निष्ठा, सदाचार आदि सद्गुणों के बंधक और लोकधर्म की रक्षा के सहायक प्रतीत हुए उनका उन्होंने समर्थन ही नहीं किया वरन् उसके पोषण निमित्त उपयुक्त अवलम्ब भी प्रदान किये—

(३) शकुन विचार—यात्रा, मागलिक कार्य, इष्टानिष्ट पान आदि के लिये शकुन विचार की प्रथा अत्यंत पुरानी है। इसके लिये लोग बड़े ज्योतिषियों का सहारा लेना पता था। तुलसी ने रामभक्ता को आत्मनिभर बनाने के लिये 'रामानाप्रश्न' की रचना की और उसकी प्रयोग विधि का भी निर्देश कर दिया—

सुदिन साँझ पोयी नेवति, पूजि प्रभान मग्रेम ।

सगुन विचारन चारु मति, सार सत्य सनेम ॥<sup>२</sup>

शकुन विचार का सबसे अधिक सरल रूप 'रामशलाका' में प्रस्तुत किया गया, जिसका उपयोग मात्र अज्ञान रखने वाले भी कर सकते हैं।

(४) भौतिपूजा—गाँवा में स्त्रियों विशेष पर्वों पर दीवारा पर देवी देवताओं के चित्र बनाकर पूजती हैं। लोकमानस में भक्ति की प्रतिष्ठा के लिये तुलसी की यह प्रथा उपयोगी जान पड़ी। इसलिये उन्होंने इसकी हिमायत की—

अपनो ऐपन निज हथा, तिय पूजहि निज भीति ।

फले सकल मन कामना, तुलसी प्रेम प्रतीति ॥<sup>३</sup>

### साहित्य साधना में लोक तत्व

प्रतिपाद्य विषय की भाँति ही उसकी अभिव्यजना में भी तुलसी ने लोक-तत्त्व को महत्त्व दिया। धार्मिक तथा आध्यात्मिक साहित्य की रचना परम्परा से सस्कृत में होती आ रही थी। किन्तु काल-प्रवाह में यह भाषा लोक सम्पर्क से दूर जा पड़ी थी। तुलसी को लोकोत्थान के लिये जन जन तक अपना सन्देश पहुँचाना था। इसलिये इसने प्रति आदरभाव रखते हुये भी उन्होंने लोकभाषा

१ बोहावली, २५४ ।

२ रामानाप्रश्न, ७।१ ।

३ बोहावली, ४५४ ।

अवधी तथा ब्रजो को अपनाया। साहित्य निर्माण में यह उनके लोकवादी दृष्टि-  
कोण का परिचायक है। इसकी भी प्रेरणा उह लोक-जीवन से प्राप्त हुई थी।  
साम्प्रतिक ग्राम्य भाषा में उहे रामकथा की एक समृद्ध परम्परा का पता चलता  
था—

स्याम सुरभि पय विसद अति, करहिं गुनद सब पान ।

गिरा ग्राम्य सियराम जस, गावाहिं सुनाहिं सुजान ॥<sup>१</sup>

उसमें निहित भावों तथा कलात्मक विधिपिष्टताओं को देखकर उनकी यह  
धारणा बन गई थी कि नरवाणी में वर्णित रामचरित देववाणी में विरचित राम-  
कथा की अपेक्षा अधिक व्यापक, सोधा सर्वमुलभ, और मधुर है—

हरिहर जस सुर नर गिरहू, बरनहिं सुकवि समाज ।

हाडी हाटक पटित चर, तुलसी स्वाद सुनाज ॥<sup>२</sup>

उनकी कृतियों में ब्रजभाषा और अवधी दोनों का प्रयोग हुआ है। प्रतीत  
होता है इनमें भी अवधी उन्हें विशेष प्रिय थी—उसके परिनिष्ठित तथा ठेठ दोनों  
रूपा को अपनाकर उन्होंने इसका सकेत दिया है। ब्रजभाषा का केवल टक्साली  
रूप प्रयुक्त हुआ। अवधी के देशज शब्दों तथा मुहावरों का बाहुल्य देखते हुए यह  
अनुमान लगाना असंगत न होगा कि बाल्यजीवन में उनका उक्त प्रदेश में दीर्घ  
कालव्यापी तथा घनिष्ठ संबंध रहा होगा।

रामकथाश्रित काव्यो की परम्परा में लोकगीतात्मक शैली के मंगल काव्यो  
—रामलला महछू जानकीमंगल और पार्वतीमंगल—की रचना कर उन्होंने एक  
नई कड़ी जोड़ी। इनमें उनका मुख्य उद्देश्य 'रामचरितमानस' का अशिक्षित तथा  
अदक्षिणित ग्रामीण समाज के बीच प्रचार करना था, यह कार्य सस्कार गीतों  
के माध्यम से ही सम्भव था। इसलिए लोकस्तर पर उतरकर उन्होंने उनके  
सस्कारा रुचियों और रीतियों के अनुकूल रामकथा के मांगलिक प्रसंगों को ग्राम-  
गीतों के सन्धि में ढाला। इनके गाने और सुनाने के सभी प्रकार के लौकिक तथा  
पारमार्थिक कल्याण का विश्वास निलाकर उनके प्रति लोकाकर्षण का मार्ग प्रशस्त  
कर दिया—

जे यह मंगल गावाहिं गाइ सुनावाहिं हो ।

शुद्धि सिद्धि कल्याण मुक्ति नर पावइ हो ॥<sup>३</sup>

इतकी रचना भी लोक परिचित 'सोहर' तथा मंगल छंदा में हुई—

१ रामचरितमानस, १।१० (ख) ।

२ दोहावली, १६७ ।

३ रामललानहछू, २० ।

## लोक-रीति का निर्वाह

तुलसी के हृदय में लोक परम्पराओं के प्रति कितना सम्मान और साहित्यिक रचना में भी उनके निर्वाह का कितना आग्रह था, इसका सबैत इससे मिल जाता है कि राम के अनेक भक्त होने लगे भी रामचरितमानस ऐसे प्रबंध काव्य में ही नहीं, पावती-भगल और विनयपत्रिका ऐसे प्रगीत मुक्तियों में भी गणेश वन्दना के बाद ही इष्टदेव की वन्दना की गयी है। इसका महत्व तब और बढ़ जाता है, जब हम देखते हैं कि उनसे समसामयिक कृष्ण भक्तों यहाँ तक कि सूरदास ने भी अपनी कृतियों के मंगलाचरण में मात्र आराध्य देव की वन्दना को स्थान दिया है। तुलसी ने विनयपत्रिका में राजा रामचंद्र के समक्ष कलि प्रभाव से पीड़ित मानवता की जो अर्जो पेश की है, उसमें भी तत्कालीन लोक-व्यवस्था में प्रयुक्त दरबारी शिष्टाचार का पूरी तरह पालन किया गया है। स्पष्ट है कि लौकिक जीवन में प्रत्यक्ष परिज्ञान प्राप्त करने के बाद ही उक्त-पद्धति का विनियोग आध्यात्मिक जीवन में किया गया। उनकी कृतियों में प्राप्त 'साहेब साहिबनी', 'गरीब नेवाज', 'उमरदराज', 'दरवार' आदि शब्द समसामयिक शासन-व्यवस्था से ही लिये गये हैं। विनयपत्रिका के अन्त में स्वीकृति प्राप्ति के लिये 'परी रघुनाथ सही है का प्रयोग हुआ है। यह शब्दावली भी मरकारी ही है।

## लोक सुलभ अप्रस्तुत विधान

तुलसी की भाषा में जैसी भावगरिमा है वैसा ही उसका कलेवर भी शब्द और अर्थवैचित्र्य से मण्डित है। मवहित कामना से लिखे गये काव्य का प्रधान गुण सुगमता होना चाहिये, इस पर उनकी दृष्टि बराबर रही। इसलिये उनकी रचनाओं में अलंकार तथा अन्य काव्य गुणों का विधान अत्यन्त स्वाभाविक रूप में हुआ है। काव्य के भारे गुण उनकी वाग्धारा के सहज प्रवाह में स्वतः सन्निविष्ट होते गये। प्रसाद उनकी मुख्य वृत्ति रही, माधुर्य उनके रसमग्न हृदय के सम्पर्क से और ओज अखंड तेजोमय नायक के प्रताप से। 'कवित्त विवेक एक नहिं भोरे' की घोषणा करने वाले तुलसी की भाषा नितनी काव्यात्मक और काव्यशास्त्र में निर्दिष्ट विशिष्टताओं में भरी पूरी है, यह बताने की आवश्यकता नहीं।

माधम्यमूलक धर्मधारो के विधान में तुलसी की विशेष अभिरुचि रही है। इनकी योजना में परम्परा तथा प्रयोग दोनों पद्धतियों का योग रहा—पुराने उमाना को भी स्थान दिया गया है और स्वतंत्र रूप से नये-नये अप्रस्तुतों की

उद्भावना भी की गई। नये अप्रस्तुतों की यह विशेषता है कि वे प्रायः व्यावहारिक जीवन क्षेत्र से चुने गये हैं। इसलिये प्रगाढ़ अनुभव से सिधत हैं। इससे सप्रेमणीयता एवं रसोद्बोधन में चमत्कारिक शक्ति आ गई है।

### (१) रूपक

रूपक जीवन—

वरपा रितु, रघुपति भगति, तुलसी सालि सुदास ।<sup>१</sup>

राम नाम के बरन जुग, सावन भादा मास ॥

उत्प्रेक्षा-लावानुभव—

विलोके दूरि ते दोउ वीर

मन अगड्डेड तन पुलकि सिधिल मयो नलिन नयन भरे नीर ।

गडत जोड मनो सकुच पक महे, कडत प्रेम बल घोर ।<sup>२</sup>

नगर व्यापि गइ बात सुतीछी । सुनत चढी जनु सब तन बीछी ॥<sup>३</sup>

### (२) उपमा-लोकजीवन

गाडी के स्वान की नाइ माया मोह की बडाई,<sup>४</sup>

छिनहिं तजत छिन भजत बहोरि हो ।

- × × ×

गुहहित कोटि उपाय निरन्तर करत न पाव पिराने ।

सदा मलीन पथ के जल ज्यों, कबहुँ न हृदय पिराने ॥<sup>५</sup>

ग्राम्य जीवन से ग्रहीत ऐसे असह्य अछूते तथा गूढार्थ व्यञ्जक साम्य विधान तुलसी के गभीर अन्वेषण एवं खिलखण काव्य प्रतिभा के परिचायक हैं।

### लोकमत का सत्कार

राम राग्य के रूप में जिस आदर्श समाज की कल्पना तुलसी ने की है उसमें न्याय, स्वतंत्रता और सौहार्द की पूरी प्रतिष्ठा है। वणव्यवस्था के समर्थक होने से वे समानता के फायल नहीं हैं, किन्तु अपने-अपने कतब्या के

१ रामचरितमानस, १।१६।

२ गीतावली, २।६६।

३ रामचरितमानस, २।४६-७।

४ विनयपत्रिका, २५८।

५ यही, २३५।

६ गीतावली, उ०।३६।

पालन में सबको समान रूप से भुविधा प्रदान करना वे शासन का मुख्य धर्म मानते हैं। यह सर्वत्रिदित है कि उनके उपास्य राम राजा थे और जिन युग में तुलसी स्वयं जी रहे थे, उसमें भी राजसत्ता का स्वरूप अधिनायकवादी ही था। किन्तु रामराज्य और मुगलशासन के आदर्शों में आकाश-नाताल का अन्तर था। प्रथम का उद्देश्य लोकपोषण था तो न्तीय का लोकशोषण, एक में लोकेच्छा का समादर था, तो दूसरे में पूर्ण अवहेलना। उस स्थिति में उहान प्रजा को अपने अधिकारों के प्रति सजग करने के उद्देश्य से राम द्वारा स्थापित प्रबुद्ध सामन्तीय व्यवस्था का आदेश प्रस्तुत किया।

अयोध्या के चक्रवर्ती साम्राज्य में संचालन में तुलसी ने महाराज दशरथ और उनके उत्तराधिकारी राम को विशिष्ट अवसर पर 'जनप्रतिनिधियों' और लोकवाणी को समुचित महत्त्व देने हुए लिखाया है। इसके अतिरिक्त उन्हें परंपरागत रामकथा में स्वतः ऐसे अनेक प्रसंग मिल गये जिनमें लोकमत को यथोचित महत्त्व दिया गया था—

### (१) राधाभिषेक का निषेध—

राम को अपना उत्तराधिकारी घोषित करने के पूर्व दशरथ गुरु मंत्रियों और मुनियों को बुलाकर परामर्श करते हैं। उनकी सम्मति प्राप्त करने के बाद ही तद्विषयक घोषणा की जाती है—

जो पाँचहि मत लागे नोका । बरहु हरपि हिय रामहि टीका ॥<sup>१</sup>

सुनहु सकल पुरजन मम वानी । कहहुँ न कुछ ममता उर आनी ॥

नहि अनीति नहि कछु प्रभुताई । सुनहु करहु जो तुम्हहि सोहाई ॥

राम प्रजा के साथ बैठकर आध्यात्मिक विषयों पर विचार-विनिमय करते हैं और निर्णय होकर अपने विचारों की आलोचना करने के लिए प्रोत्साहित करते हैं। रामराज्य में विचार स्वातंत्र्य किस सीमा तक था, यह उसका उदाहरण है—

जो अनीति कछु भापहुँ भाई । तो मोहि बरजहु भय प्रिसराई ॥<sup>२</sup>

### (२) अङ्गद को युवराज बनाना—

बालि बंध के अनन्तर सुग्रीव किष्किंधा के राजा बनाये जाते हैं, किन्तु अगद के प्रति स्थानीय जनता की व्यापक सहानुभूति देखकर, परम्परा से हटकर राम उन्हें युवराज बनाते हैं। यह काम राम ने अपने परम मित्र सुग्रीव की इच्छा के

१ रामचरितमानस, २।५३ ।

२ रामचरितमानस, ७।४३ ३,४,६ ।

विद्वद् किया था, इसकी पुष्टि अगद के निम्नांकित कथन से होती है—

कह अगद लोचन भरि बारी । दुहूँ भाति भई मृत्यु हमारी ॥  
पिता धधे पर मारत मोही । राखा राम निहोरन ओही ॥'

(३) सीता परित्याग—

सीता बनवास रामकथार की एक अत्यंत हृदयद्रावरु घटना है। राम ने अपनी परम प्रिया का त्याग, जिसने हरण पर 'महाविरही अनिकामी' की भाति अर्द्ध-विक्रित हो उहाने बनवीहड छान डाले थे और पता लगने पर समुद्र पर पुल बांधन जैसा असम्भव कार्य सम्भव कर लिखाया था, कितना अतर्दाह सहकर किया होगा। ऐसा आत्मघाती निणय उहोंने सीता के किसी अपराध या चारित्रिक दोष विषयक अपने अनुभव अथवा विश्वास के आधार पर नहीं किया। न इसके मूल में अयोध्या के नागरिकों या मन्त्रिपरिषद का ही किसी प्रकार का अनुरोध था। हुआ यह कि गुप्तधरा द्वारा दी गई सूचना पर, जिसका आधार एक सत्कारहीन प्रजा द्वारा अपनी स्त्री से झगडत समय कहे गये वाक्य थे। राम के समक्ष लोकमत नहीं प्रस्तुत हुआ। उनके कानों तक मात्र लोकध्वनि पहुँची थी :—

चरचा धरनि सा सुनि जान मनि रघुराइ,  
दूत मुख सुनि लोकधुनि घर धरनि बूझी आइ ॥<sup>२</sup>

राजतन्त्र की तो बात ही क्या, विश्व की किसी जनतात्रिक अथवा समाज-घाती शासन व्यवस्था में भी आज तक जनरव को इतना महत्त्व नहीं मिल सका है।

राम के इन अप्रत्याशित व्यवहार का औचित्य विचारशील जनता के गले क नीचे नहीं उतरा। लोकमानस में इसकी भयकर प्रतिक्रिया हुई। सीता के माध्यम से जन कवि ने अपने उद्गार प्रकट किये—मुत्र जम के उपलदय में अयोध्या को रोचन भेजते हुए उन्होंने नाई से सदेश कहलाया—

पहिल रोचन राजा दसरथ, दुसर कौसिला माई रे ।  
मउआ तिसर राचन लछिमन देवरा पपियवा न जानै  
अपरमी न जानै हो ॥

लोकप्रवाद के भय से राम द्वारा सीता के प्रति किए गये इस व्यवहार को तुलसीदास ने भी घोर अयाय माना है—

१ रामचरितमानस ४।२६ १,५ ।

२ गोतावाली, ७।२७ ।



वैरि बहु निसिचर अधम, तजे न भरे कलव ।  
झूठे अध सिय परिहरी, तुलसी साईं ससक ॥'

## लोक देवता के रूप में राम की प्रतिष्ठा

स्वामी रामानन्द तथा उनकी परंपरा के कनिष्ठ रामभक्तों ने व्यष्टि साधना में हनुमान का आश्रय लिया था और उनकी स्तुति में पदों की रचना की थी। किन्तु दास्यनिष्ठा के आदर्श रामभक्त के रूप में उनको जो महत्त्व रामचरित-मानस और हनुमानबाहुक ने प्रदान किया वह अभूतपूर्व था। सकटमोचन और बन्नीछोर हनुमान की पूजा का व्यापक प्रचार इसी का परिणाम था।

शिव अथवा रुद्रावतार होने से उनकी मूर्तियों की स्थापना के लिए देवालय निर्माण की अनिवार्यता नहीं थी, न विष्णु मंदिरों की भांति उनकी पूजा पड़ति का ही झमेला था। किसी भी चौराहे पर, निजन या घनी बस्ती के बीच, जंगल या खाटिका में अथवा सड़क के किनारे उनकी प्रस्तर मूर्ति रखकर पूजा की जा सकती थी। तुलसी ने स्वयं इसी प्रकार काशी में सकटमोचन हनुमान की स्थापना कर भागदशन किया था।

हनुमान शक्ति के देवता हैं। अतः उनके मंदिरों में साथ अखाड़ों की भी स्थापना हुई। जातीय जीवन में शौर्य के विकास के लिये इस प्रकार की व्यवस्था तुलसी के ही मानस की उपज हो तो कोई आश्चर्य की बात नहीं। समस्त इन्हीं से प्रेरणा प्राप्त कर समर्थ गुह रामानस ने अध्यात्मसाधना के लिये राममंदिरों और बलोपासना के निमित्त हनुमान मंदिरों का महाराष्ट्र में एक जाल सा बिछा कर जन-जागरण के सफल अभियान का सूत्रपात किया था। हनुमान तत्व में तुलसी ने शैव तथा शाक्त मिद्धातों का पयवसान कर उक्त साधनाओं में आस्था रखने वाले लोगों को भी रामभक्ति की ओर आवृष्ट किया। इससे उसका देश व्यापी प्रचार हुआ।

## लोकशिक्षा के सशक्त माध्यम रामलीला का प्रवर्तन

सांस्कृतिक तत्वों की गरिमा अधुण्ण रखने के लिये महापुरुषों की जीवनगाथा का रूपको या जन-नाट्यों द्वारा प्रदर्शन प्राचीन काल से ही लोकशिक्षा का एक सशक्त माध्यम रहा है। रामोपासना के क्षेत्र में इसकी परंपरा तुलसीदास के पहले से चली आ रही थी। 'भक्तमाल' में मानदास द्वारा विरचित एक नाटक

का उल्लेख है, जो संभवतः रामलीला के मचन की दृष्टि से ही लिखा गया था—  
सबद पत्तियाँ इस प्रकार हैं—

रामायन नाटक को रटस, उक्ति जुक्ति भाषा घरी ।

गोप्यकेलि रघुनाथ की, मानदास परगट करी ॥

किंतु जैसा इन पत्तियों से ही स्पष्ट है, उसका प्रतिपाद्य राम की श्रृंगारो लीला थी । भेरे विचार से यह रसिक राममत्तो की परंपरा में प्रचलित राम की रामलीला के प्रश्न के लिये लिखा गया था, जिसकी परंपरा उक्त शाखा में अत तक पाई जाती है । ऐश्वर्यपरक जीवनादश को लेकर संपूर्ण रामकथा पर आधारित रामलीला का प्रवर्तन तुलसी ने किया, अब तक प्राप्त सूत्रों में यह धारणा निर्भ्रान्त ठहरेती है । उत्तरी भारत के गाँवा, कस्बों और नगरों में आश्विन तथा कार्तिक मास में रामलीला की जो धूम दिखाई देती है, उसका मुख्य श्रेय तुलसी को ही है ।

### लोक सेवा का अत्यंत साधन—समन्वय भावना

भारत विभिन्न सस्कृतियों, धर्मों तथा संप्रदायों का देश है । उनके पारस्परिक मतभेद प्रायः स्प्लसघर्षों के कारण रहे हैं । अतः यहाँ के सामाजिक जीवन को सुख-शान्ति भय बनाये रखने के लिये समय-समय पर आविर्भूत महापुरुषों का प्रयत्न विभिन्नता में एकता तथा विषमता में समता के सूत्रों का अनुसंधान एवं उपस्थापन रहा है । राम, कृष्ण, बुद्ध, शंकराचार्य, रामानुज और रामानन्द उसी अखंड परंपरा के प्रकाशस्तम्भ हैं । तुलसी ने अपनी लोकोत्तर प्रतिभा तथा मैत्री भावना से उसे आगे बढ़ाया । इनकी समन्वय साधना का आधार बनी—रामभक्ति । सामाजिक, साम्प्रदायिक, धार्मिक, नैतिक, दार्शनिक, साहित्यिक आदि जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में व्याप्त सैद्धांतिक तथा ध्यावहारिक विरोधों के कारणों का सम्पन्न प्रकार से अध्ययन करके अपनी रचनाओं में उनके मयोचित समाधान प्रस्तुत किये । शैवों वैष्णवों, निर्गुणों मगुणा, लोक-देवताओं, कर्म-योग पान मार्गों के मापकों, द्वैत, अद्वैत तथा विशिष्टाद्वैत मतानुयायियों, ब्राह्मण-शूद्र आदि वर्गों के पारस्परिक द्वंद्वों के शमन के लिये उन्होंने अधिकारी पक्षों के प्रामाणिक विचारों की योजना की । इससे अनिरिक्त उन्होंने रामवत्त्व की व्याख्या एवं प्रस्तुति जिस विराट पत्र पर की उसके अंतर्गत चारों विरोध स्वतः विलीन हो गये । विच्छिन्न लोकजीवन को जोड़ने की यह प्रक्रिया समा दृष्टियों से उपकारक सिद्ध हुई । यह तुलसी की ही दीर्घनिश्चिता का प्रसादात् कि उत्तरी भारत में शिवकाँची विष्णुकाँची का दृश्य प्रस्तुत होने की नीव नहीं आई ।

ज्योतिर्मय आकाश को अपेक्षा जीव सकुल धरती, दिव्य माकेत की अपेक्षा अयोध्या को अधिक महत्व देकर तुलसी ने सगुण साधना के क्षेत्र में लोकवाणी विचारधारा को नई चेतना प्रदान की। मानव को विधाता की सर्वोत्तम सृष्टि, मानव जीवन को देशों के लिये भी स्पृहणीय और उसका कर्म क्षेत्र ससार तथा अपनी आविर्भाव भूमि भारत को बदनीय बनाकर उन्होंने लोकजीवन की महत्ता बढ़ाई। अद्वैतवाणी सत्यासिया<sup>१</sup> गोरक्षपथी योगियो तथा निगुणमार्गी सता ने जागतिक जीवन की विग्रहणा कर उसके प्रति जनता में जो विरक्ति की भावना फैलाई थी, तुलसी ने उसका जनव जैसे ग्रहविद्या के आचार्य द्वारा प्रतिवाद कराया और राम ऐसे नररत्न की क्रीडास्पली भवसागर का मुक्तकठ से गुणगान किया—

प्रमुदित हृदय सराहत भल भवसागर ।

जह उपजहि अस मानिक विधि बड नागर ॥

अनादि अनत परमात्मा की सृष्टि, ससार के सौंदर्य, माधुर्य और चिरतनता पर तुलसी स्वयं भी मुग्ध थे—

पल्लवत फूलत नवल नित ससार विटप नमामहे ।

“इसी भावना से प्रेरित होकर उन्होंने मलायतन कलियुग को भी मूर्धन्य स्थान दिया। लोकोद्धारक राम का सस्पश पाकर देशकाल सभी तर गये—

कलियुग सम जुग आन नहि, जो नर कर विस्वास ।

गाइ राम गुन गन विमल भव तरु विनहि प्रयास ॥

इस प्रकार लोकालय का महत्व प्रतिपादित कर उन्होंने समकालीन वातावरण में विपणन जनता के हृदय में लौकिक जीवन के प्रति अनुराग जगाया और स्वत्वो की रक्षा के लिये उसे प्रकारांतर से भौतिक परिस्थितियों से सघर्ष करने के लिये प्रोत्साहित किया—

जामु राज प्रिय प्रजा दुखारी, सो नृप अवसि नरक अधिकारी ॥

तुलसी की अपनी दृढ धारणा थी कि लोकसेवक का मुख्य कर्तव्य जनरक्षि का परिष्कार और उन्नयन होना चाहिये, अघानुसरण नहीं। लोक के रग में रँगजाने को वे अघ पतन की पराकाष्ठा मानते थे, कारण कि समूहानुगामी मनुष्य का ब्यक्तित्व अपना वैशिष्ट्य विलीन कर पशुत्व में परिणत हो जाता है।

१ झूठा है झूठा है झूठा सदा सब सत कहत जो अत लहा है ।

जानकी जीवन जानि न जायो तो जानि कहाय के जान्यो कहा है। कवि, ७।३६

२ जानकीमगल, ४७ ।

इसी से उन्होंने समकालीन लोकजीवन के विविध क्षेत्रों में व्याप्त लोकधर्म विरोधी प्रवृत्तियों, रीति रिवाज, आचार-विचारों तथा उनके पुरस्कर्ताओं की खोलकर आलोचना की। जैनश्रावक,<sup>१</sup> भगवान बुद्ध,<sup>२</sup> अद्वैतवादी समासी, नाथ पंथी मिद्ध,<sup>३</sup> अलखिया संत, सूफ़ी फकीर और निगुणियाँ संत,<sup>४</sup> पवन शासक और उसके गण, राजे महाराजे, दरबारी कवि,<sup>५</sup> ढोंगी साधु,<sup>६</sup> पढे ओर पुरोहित,<sup>७</sup> परोपदेशकुशल पंडित,<sup>८</sup> और यात दी भेटी करने वाले वक्ता प्रवक्ता, १० सब पर उनका निर्मम प्रहार हुआ। जो भ्रातृद्रोही तथा नैतिकताहीन सुप्रीव और विभीषण के पगधर अपने इन्द्रदेव की भी चुटकी लेने से नहीं चूका वह लोक प्रवचका का बस छोड़ सकता था। इस स्पष्टवादिता की उह भारी कीमत चुकानी पड़ी। विरोधियों ने उन्हें 'धूर्त', अवधूत, रजपूत, जोलहा, पाखंडी, नीच—बया-बया नहीं कहा। इतने से ही सतुष्ट न होकर उन्होंने तुलसी को दंड देने की योजना बनाई। वामदेव की पुरी इसी काशी में उह शारीरिक यातना दी गई। किन्तु इन सारे अपमानों का विषय सहर्ष पीत रहे। शातक की भाँति आराध्य के सारे अत्याचार मौन भाव से सहने में ही वे प्रेम की पुष्टि मानते थे। यह विषय स्थिति उनके अगाध लोकप्रेम की पराकाष्ठा व लिये सघटित हुई थी,

- १ इस सीस बिलसत विमल, तुलसी तरल तरंग,  
स्वान सरावग के कहे, लघुता लहे न गग । दोहावली ३८३ ॥
- २ अतुलित महिमा येव की तुलसी किये विचार ।  
जो निबत निबित भयो, विवित बुझ अबतार ॥ दोहावली ४६४ ।
- ३ पारव प्रगट प्रवचना, सिद्धिउ नाउ कलक ।
- ४ हम सखा हर्षहि हमार लख, हम हमार वे बोच ।  
तुलसी असखहि का लखसि, रामनाम जपु मोच ॥ दोहावली १६ ॥
- ५ साखी सबबो बोहरा, कहि कहिनो उपखान ।  
भगति निदरहि भगत कलि, निर्वाह वेव पुराम ॥
- ६ कीहैं प्राकृत जन गुनगाना ।  
सिर धुनि गिरा लागि पछिताना ॥ रामचरितमानस १ ।
- ७ बचक भक्त कहाइ राम के, किकर कचन कोह काम के ॥
- ८ तुलसीवान जे देत हैं जल में हाथ उठाइ ।  
प्रतिप्राही शीब नहीं दाता नरकाहि जाइ ॥ दोहावली ५३३ ॥
- ९ बचन वेप ते जे बने ते विगरेँ परिनाम ।  
तुलसी निज ते जे बने बनी बनाई राम ॥ दोहावली १५४ ।

२२६ रामकाव्यधारा—अनुसधान एव अनुचितन

ऐसा उनका भाव था—

बरखि परप पाहन पयद, पस करहु द्वय हक ।

तुमसी परी न चाहिए, चतुर चातकहि चूक ॥

इसके प्रसाद रूप में उन्हें मिला 'अखड अत सुख', विश्वारम भाव से वही 'सर्वान्त सुख' का शाश्वत स्रोत बन गया ।

## गोस्वामी तुलसीदास और हरिजन

गोस्वामी तुलसीदास के प्रति भारतीय लोक हृदय में जो सम्मान है, वह वदाचित् ही किसी देश में किसी कवि को प्राप्त हो। गत चार शताब्दियों से उत्तरी भारत की आध्यात्मिक विचारधारा के स्वरूप निर्माण में रामचरित मानस और विनय पत्रिका का विशेष हाथ रहा है। समाज का प्रत्येक वर्ग अपनी सामर्थ्य के अनुरूप तुलसी साहित्य की अर्चना में भाव पुष्प अर्पित कर वृत्तार्थ हुआ है।

द्वार स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् सामाजिक एवं आर्थिक भ्रातियों ने राष्ट्रीय जीवन में एक अजीब उपलब्ध-मुचल पैदा कर दी है। राजनीतिक क्षेत्र में पनपे हुए कुछ विदेशी 'वादों' ने परंपरागत सामाजिक मान्यताओं को ध्वस्त करने के साथ ही हमारे साहित्यिक दृष्टिकोण में भी आमूल परिवर्तन किया है। तुलसी का प्रतिभा दीप इस प्रबल झझावात में भी अखंड जलता रहा। बदले हुए साहित्यिक वातावरण में भी उनकी लोकभावना तथा काव्यधारा के अतल गाभीर्य की प्रशंसा हुई। राजनीति के क्षेत्र में युगपुरुष गांधी ने उनके द्वारा चित्रित रामराज्य के आदर्श को अपनाया और जीवमान क शोक-सताप को दूर करने वाली अकेली महोपधि राम नाम स्वीकार किया। इस घर्षणरिपेक्ष राज्य में राममक्त तुलसी की उत्तरोत्तर बढ़ती हुई लोकप्रियता कुछ सकुचित राजनीतिक दृष्टिकोण वाले 'यक्तियों' को खली। फलतः तुलसी और राम की जन्मभूमि होने का गौरव रखने वाले प्रदेश की विधान सभा में रामचरित मानस के कुछ आपत्तिजनक कहे जाने वाले अंशों को काट कर उक्त भावना का प्रतिनिधित्व करने वाले एक सन्स ने सतोप की सास ली। हमारी यह धारणा है कि ऐसे वृत्तियों के मूल में राजनीतिक स्वार्थों के साथ ही कुछ भ्रातियाँ भी होती हैं जो परिस्थिति एवं जीवन दर्शन की अनभिज्ञता के कारण अयवस्थित मस्तिष्क में घर कर लेती हैं और अनर्थ चिंतन से सिंचित होती रहती हैं। गोस्वामी तुलसीदास पर हरिजन द्वेष का जो कलक मत्त जाता है, वह ऐसी ही बुद्धि की उपज है।

हरिजनों के प्रति तुलसी के भाव क्या थे? ऊँच-नाच की उनकी परिभाषा

प्रसन्न हो बानो जन्मभूमि को सौट जाना ।

गुरु क इस अतीविक्र आचरण पर मुग्ध होकर देवीमापवर्णन पढ़ा

ऐउ प्रेम का बलि बाजै ।

नव विकल विदह मुनउहि

गाव ही को नाळै ।

साज परम उपाधा

नित कर्म ही नियो बाउ ।

तुँ मिथिल सोचन सज्जन

अति प्रेम ता पुनकाउ ।

करि पुनोत अथान ठाकुर

पूजिय को भाउ ।

र्यागि सो अनुराग पून

मुपच ही क पाउँ ॥

'दास' कन्मप प्रसित जोई

त कठठै नहि ठाउँ ।

याउ अब त्रि सरन गीजे

चरन छहज मुभाउ ॥

रामभूजा को छोड़कर 'मुपच' क चरणा का श्रद्धा करने वाले इस  
का हरिजन विरोधी व ही कह सकत है जिनके सांस्कृतिक मानस  
ओर तुलसी एक दृष्टिप्रस्त सामंतवादी परंपरा क प्रतीक रूप में ही प्रति  
हैं। भारतीय संस्कृति क आत्मा निर्माता इस महापुरुष का प्रकृत चिन्त  
औरों से ओझल ही रहेगा।

रामचरित मानस में, श्रीसंप्रदाय की वर्णोपम सर्वथी मान्यताओं को  
होकर, गोस्वामी जी ने शूद्र वर्ग क विषय में जा विचार व्यक्त किये हैं।  
निए तत्कालीन सामाजिक व्यवस्था ओर प्रबन्ध ऐसी भी काफी उत्तरदा  
इसके अतिरिक्त अधिकांश उन्नतयाँ जिनका दायित्व मासमस आलोचन  
पर समस्त हैं अथ रामायणा, पुराणा तथा भक्तिप्रार्थों से यथावत्  
उद्भूत हैं। फिर सवत् १६३१ वि० के पश्चात् की रचनाओं में तुलसी क स  
दृष्टिकोण में विशिष्ट परिवर्तन लभित होता है। छेद की बात है कि  
साहित्य के इस विकासोत्तम अध्ययन क अभाव में उम युग प्रवर्तक  
की 'महिमा भूगी' अपने कहे जाने वाले लोगों के ही यत्न बाणों क  
बन रही है।

बेनीमाधव दास ने एक ऐसी घटना का वर्णन किया है जिससे यह विदित कि उन्होंने उसे व्यावहारिक रूप भी दिया था। 'गोसाईं चरित' का प्रसंग तुलसी की हरिजनप्रियता का सर्वोत्कृष्ट उदाहरण है। कथा सक्षे प्रकार है—

तुलसीदास जी काशी में अस्सीघाट पर निवास करते थे। एक दिन स्नान करके अपने आभ्रम को लौट रहे थे कि रास्त में उन्हें एक भगीरथ वह झाड़ू का झाड़ू लिये हुए था। गोस्वामी जी से परिचित न होने से वह उन्हें देख कर भाग से हटा नहीं, बगल से ही निकल गया। कुछ अंतर पर किसी व्यक्ति द्वारा जब यह ज्ञात हुआ कि वे गोस्वामी तुलसीदास उसने तत्काल लौटकर अशिष्टता के लिए क्षमा याचना की। उसने निवेदन कि मैं काशी के लिए एक नवागतुष व्यक्ति हूँ इसलिए श्रीचरणों को नहीं सका, मेरी जन्मभूमि अयोध्या है। गोस्वामी जी के कानों में 'अयोध्या' शब्द पड़ा, प्रेमातिरेक से विह्वल हो उन्होंने उस स्वपंच हृदय से लगा लिया। बेनीमाधव दास ने इस स्थिति का बड़ा ही सजीव किया है—

गद्गद बानी शिथिल तन  
व्याकुल प्रेम अधीर ।  
पूछत आव न बचन तेहि  
पुनि पुनि पुलक शरीर ॥  
पुनि पुनि पुलक सरीर  
धीर निधि धीरज त्याग्यो ।  
उत्कठित चप नीर  
नाथ पद प्रेम नुराग्यो ॥  
प्रेमाहि रह्यो समाइ बिसरि  
जनु गो आपन पद ।  
सुपच हिए भरि भेटि सजल  
हू पुनि पुनि गद्गद ॥  
तेहि मिलि कठ लगाइ भले ।  
पुनि हाथ गहे सग ले जो चले ॥

स्वपंच स ही उन्हें ज्ञात हुआ कि ऋणभार से ग्रस्त होने के कारण उसे छाड़कर जीविका की खोज में काशी आता पड़ा है। गोस्वामी जाने लगे थे



प्रसन्न हो अपना जन्मभूमि को लौट आया ।

गुरु के इस अलौकिक आचरण पर मुग्ध होकर यनीमायवन्तस यहूत हैं—

एत प्रेम की बलि जाऊँ ।  
 नय विचल विदेह गुनतर्हि  
 गाँव ही को नाऊँ ।  
 साज परम उपाध्याय  
 निज कर्म ही दिया बाउ ।  
 हूँ गिहित सोचन सबस  
 अति प्रेम तन पुनकाउ ।  
 करि पुनाउ अघान ठागुर  
 पूजिय को भाउ ।  
 त्यागि सो अनुराग पूत्र  
 गुण ही के पाउँ ॥  
 'शम' कल्प प्रसिद्ध जोई  
 त परतुँ नहि ठाउँ ।  
 पाउ अब निज सल गीने  
 चल धरुन मुभाउ ॥

रामगुजा को छोड़कर 'गुण' के चरणों की बन्दना करने वाले इस तुलसी को हरिजन विरोधी व ही कह सकते हैं जिनके सोचण्यादस्य मानस में राम और तुलसी एक रुद्रिपस्त सामतवादी परंपरा के प्रतीक रूप में ही प्रतिष्ठापित हैं । भारतीय संस्कृति के आदर्श निर्माता इस महापुरुष का प्रवृत्त चित्र उनकी आँखों से ओझल ही रहेगा ।

रामचरित मानस में, श्रीसंप्रदाय की वर्णाश्रम सवधी मान्यताओं से प्रेरित होकर, गोस्वामी जी ने शूद्र वर्ग के विषय में जो विचार व्यक्त किये हैं, उसके लिए तत्कालीन सामाजिक व्यवस्था और प्रचलित दौली भी काफी उत्तरदायी है । इससे अतिरिक्त अधिकांश उक्तिवादी जिनका दायित्व नासमझ आलोचक तुलसी पर समझते हैं अन्य रामायणा, पुराणा तथा भक्तिग्रन्थों से यथावत् सदर्भ में उद्धृत हैं । फिर सवत् १६३१ वि० के पश्चात् की रचनाओं में तुलसी के सामाजिक दृष्टिकोण में विशिष्ट परिवर्तन लक्षित होता है । घेद की बात है कि तुलसी साहित्य के इस विकासात्मक अध्ययन के अभाव में उस युग प्रथमक महापुरुष की 'महिमा मृगी अपने कहे जाने वाले लोगो के ही वचन वाणो का शिकार बन रही है ।

बेनीमाधव दास ने एक ऐसी घटना का वर्णन किया है जिससे यह विदित होता है कि उन्होंने उसे व्यावहारिक रूप भी दिया था। 'गोसाइ चरित' का 'मुपच प्रसंग' तुलसी की हरिजनप्रियता का सर्वोत्कृष्ट उदाहरण है। कथा संक्षेप में इस प्रकार है—

तुलसीदास जी काशी में अस्सीघाट पर निवास करते थे। एक दिन गंगा स्नान करके अपने आश्रम को लौट रहे थे कि रास्ते में उन्हें एक भगी मिला। वह झाड़ू का झाड़ू लिये हुए था। गोस्वामी जी से परिचित न होने के कारण वह उन्हें देख कर भाग से हटा नहीं, बगल से ही निकल गया। कुछ आगे बढ़ने पर किसी व्यक्ति द्वारा जब यह बात हुआ कि वे गोस्वामी तुलसीदास हैं तो उसने तत्काल लौटकर अशिष्टता के लिए क्षमा याचना की। उसने निवेदन किया कि मैं काशी के लिए एक नवागत व्यक्ति हूँ इसलिए श्रीचरणों को पहचान नहीं सका, मेरी जमभूमि अयोध्या है। गोस्वामी जी के कानों में जैसे ही 'अयोध्या' शब्द पड़ा, प्रेमातिरेक से विह्वल हो उन्होंने उस स्वपक्ष को अपने हृदय से लगा लिया। बेनीमाधव दास ने इस स्थिति का बड़ा ही सजीव चित्रण किया है—

गद्गद बानी क्षिथिल तन  
 याकुल प्रेम अधीर ।  
 पूछत आव न बचन तेहि  
 पुनि पुनि पुलक शरीर ॥  
 पुनि पुनि पुलक शरीर  
 धीर निधि धीरज त्याग्यो ।  
 उत्कठित चप नीर  
 नाथ पद प्रम नुराम्यो ॥  
 प्रेमहि रह्यो समाइ बिसरि  
 जनु गो आपन पद ।  
 मुपच हिए भरि भेटि सजल  
 ह्व पुनि पुनि गद्गद ॥  
 तेहि मिलि कठ लगाइ भले ।  
 पुनि हाथ गहे सग लै जो चले ॥

स्वपक्ष से ही उन्हें बात हुआ कि ऋणभार से ग्रस्त होने के कारण उसे अयोध्या छोड़कर जीविका की खोज में काशी आना पड़ा है। गोस्वामी जाने उसे ऋणमुक्ति तथा जीवन निर्वाह के लिए पर्याप्त द्रव्य देकर पुनः अयोध्या भेज दिया। वह

बेनीमाधव दास ने एक ऐसी घटना का वर्णन किया है जिससे यह निश्चित होता है कि उन्होंने उस व्यावहारिक रूप भी लिया था। 'गोमाईं धरित' का 'गुपच प्रसंग' तुलसी की हरिजनप्रियता का सर्वोत्कृष्ट उदाहरण है। कथा सरोप में इस प्रकार है—

तुलसीदास जी काशी में अस्सीघाट पर निवास करते थे। एक दिन गंगा स्नान करने अपने आश्रम को सौट रूथ कि रास्ते में उन्हें एक भगी मिला। वह झाड़ू का झाड़ू लिये हुए था। गोस्वामी जी से परिचित न होने के कारण वह उन्हें देख कर भाग से हटा नहीं, बगल से ही निकल गया। कुछ आगे बढ़ने पर किसी व्यक्ति द्वारा जब यह बात हुआ कि वे गोस्वामी तुलसीदास हैं तो उसने तत्काल सौटकर अशिष्टता के लिए क्षमा याचना की। उसने निवेदन किया कि मैं काशी के लिए एक नवागत व्यक्ति हूँ इसलिए श्रीचरणों को पहचान नहीं सका, मेरी जन्मभूमि अयोध्या है। गोस्वामी जी के बाना में जैसे ही 'अयोध्या' शब्द पड़ा, प्रेमातिरेक से विह्वल हो उन्होंने उस स्वपच को अपने हृदय से लगा लिया। बेनीमाधव दास ने इस स्थिति का बड़ा ही सजीव चित्रण किया है—

गद्गद बानी शिथिल तन  
व्याकुल प्रेम अधीर ।  
पूछत आब न बचन तेहि  
पुनि पुनि पुलक शरीर ॥  
पुनि पुनि पुलक शरीर  
धीर निधि धीरज त्याग्यो ।  
उत्कण्ठित चप नीर  
नाथ पद प्रेम नुराग्यो ॥  
प्रेमहि रह्यो समाइ बिसरि  
जनु गो आपन पद ।  
सुपच हिए भरि भेंटि सजल  
ह्व पुनि पुनि गद्गल ॥  
तहि मिति कठ लगाइ भले ।  
पुनि हाय गहे सग ले जो चले ॥

स्वपच से ही उन्हें ज्ञान हुआ कि ऋणभार से ग्रस्त होने के कारण उसे अयोध्या छोड़कर जीविका की खोज में काशी आना पड़ा है। गोस्वामी जीने उसे ऋणमुक्ति तथा जीवन निर्वाह के लिए पर्याप्त द्रव्य देकर पुनः अयोध्या भेज दिया। वह

प्रसन्न हो अपनी जग्मभूमि को सौट आया ।

गुरु के दम अलौकिक आवरण पर मुग्ध होकर बेनीमापवनाम बहो है —

ऐग प्रेम का बनि जाऊँ ।

भय बिचन निह गुाउहि

गाव ही को नाऊँ ।

साज परम उतागा

नित बर्म ही नियो बाठ ।

हूँ निपिल सोषा सजम

अति प्रेम ता पुनजाठ ।

करि पुगीउ अमान ठापुर

पूजिय को भाठ ।

एयागि मो अनुराग पूजे

गुनष ही के पाठे ॥

'दास' बल्मप प्रसित जोई

त बतहुँ महि ठाठे ।

पाठे अब त्रि सरन श्रीजे

चरन सहज मुमाठ ॥

रामपूजा को छोड़कर 'गुणष के चरणों की बन्दना करने वाले इस तुलसी को हरिजन विरोधी के ही कह सकते हैं जिनके सोरपणाप्रस्त मानस में राम और तुलसी एक रुद्रिग्रत मानववादी परंपरा के प्रतीक रूप में ही प्रतिष्ठापित हैं। भारतीय सभ्यता के आदर्श निर्माता इस महापुरुष का प्रवृत्त चित्र उनकी आँसों से ओसल ही रहेगा।

रामचरित मानस में, श्रीसप्रणय की वर्णाश्रम संबंधी माण्यज्ञानों से प्रेरित होकर, गोस्वामी जी ने शूद्र वर्ग के विषय में जो विचार व्यक्त किये हैं, उनसे निष्कर्षित सामाजिक व्यवस्था और प्रणय दोषी भी काफी उत्तरदायी है। इसके अतिरिक्त अधिकांश उक्तियाँ जिनका दायित्व नासमझ आलोचक तुलसी पर समझते हैं अथवा रामायणा, पुराणा तथा भक्तिप्रणयों से यथावत् सदर्भ में उद्धृत हैं। फिर सवत् १६३१ वि० के पश्चात् की रचनाओं में तुलसी के सामाजिक दृष्टिकोण में विशिष्ट परिवर्तन लक्षित होता है। दोष की बात है कि तुलसी साहित्य के इस विवादात्मक अध्ययन के अभाव में उस युग प्रवृत्त महापुरुष की 'महिमा मुगी' अपने कहे जाने वाले लोगों के ही बचन वाणों का शिकार बन रही है।

## तुलसी का लोकानुभव

गोस्वामी तुलसीदास जनकवि के रूप में प्रतिष्ठित हैं। उनके 'रामचरित मानस' और 'विनयपत्रिका' शताब्दियों से उत्तरी भारत के लोकजीवन के मुख्य आध्यात्मिक सबल रहे हैं। साधर निरक्षर, धनी-निचन, नागर-गवार आदि समाज के विभिन्न वर्गों तथा मानसिक स्तर के लोगों द्वारा उनकी कृतियाँ वेदों की भाँति पूजी जाती रहीं हैं। दुःख में उनकी पंक्तियों का सहारा लेकर वे हृदय का भार हल्का करते हैं और सुख में उन्हें दुहरा कर द्विगुणित उत्साह के साथ कमक्षेत्र में उतरने की प्रेरणा प्राप्त करते हैं। तुलसी व राम के इस अद्भुत लोकाकर्षण का रहस्य क्या है? उसमें ऐसी कौन सी विशेषता है जिसके कारण सहृदय मात्र उनके 'मानस' में अपने मन का प्रतिबिम्ब देखते हैं और उनकी उक्तियाँ में अपनी हृत्तंत्री की प्रतिध्वनि सुनते हैं? मेरी समझ में इस सारी सफलता के मूल में गोस्वामी जी की लोकजीवन के प्रति गहरी संवेदना और उनका प्रगाढ़ लोकानुभव है। लोकजीवन के सूक्ष्मतम स्तरों तक बैठने और लोकप्रवृत्ति के विभिन्न रूपों के अवलोकन की उनकी एकता अद्भुत है। उनके व्यक्तित्व में ये तत्त्व किन मन स्थितियों तथा स्रोतों से संपादित, उनकी कृतियों में किस रूप में अभिव्यक्त और लोकभावना को किस सीमा तक परिष्कृत करने में सफल हुए हैं, यहाँ हम इसी पर विचार करेंगे।

तुलसी का आविर्भाव प्रारम्भिक काल हुमायूँ के समय में हुआ। उनके जीवन का अधिकांश अकबर के शासन काल में बीता, स० १६६२ में अकबर के दिवंगत होने पर वे १८ वर्ष तक जहाँगीर की हुकूमत में जीवित रहे। इस प्रकार मुगल सत्ता के उत्कृष्टतम काल की राज्यावस्था का उन्हें प्रत्यक्ष अनुभव प्राप्त करने का सुयोग भिठा था। अपनी रचनाओं में उन्होंने यत्र तत्र इसके बड़े ही मार्मिक विवरण दिये हैं।

शकत्त्र मुगल सम्राट का शासन सौबल पर आधारित था। प्रजा को अकारण दण्ड देकर आतंकित रखना उनकी नीति का मुख्य अंग था। उसने अपनी सत्ता को दृढ़ करने के लिए परम्परागत राज्यवशा को पदच्युत करके उनके

स्थान पर सस्कार तथा व्यक्तित्वहीन राजे नियुक्त कर रहे थे—

गोड गँवार नृपाल महि, यवन महा महिपाल ॥

साम न दाम न भेद फछु, केवल दड कराल ॥<sup>१</sup>

अधीनस्थ अमीर-उमरा तथा राजनमचारी उसवी इस नीति को बड़ी कठोरता से कार्यान्वित करते थे—

प्रभु ते प्रभु जन दुखद लखि, प्रजहि सभारे राउ ।

करत होत कृपान को, कठिन घोर घन घाउ ॥<sup>२</sup>

रावण के अत्याचारों का वर्णन करते हुए उनके मानस नेत्रों के सामने समकालीन मुगल शासन बरबस आ जाता था—

बरनि न जाइ अनीति, घोर निसाचर जो करहि ।

हिंसा पर अति प्रीति, तिनके पापहि कौन मिति ॥<sup>३</sup>

शासन तत्र के कणधारों के आचरण का वर्णन करते हुए यह भाव अधिक स्पष्ट हो गया है—

अस ध्रष्ट अचारा भा ससारा धम सुनिय नहि काना ।

तेहि बहु विधि त्रामह देस निकासइ जो कह वेद पुराना ॥

बाटे बहु म्ल चोर जुआरा । जे लपट परधन परदारा ।

मानहि मातु पिता नहि देवा । साधुन्ह सन करवावाहि सेवा ॥

जिनके अस आचरन भवानी । ते निसिचर जानेहु सब अपनी ॥

भारतीय सैन्य नीति के बाह्य के अथक प्रयोजना अयायी मुगलतत्र ने तत्कालीन जनजीवन में कितनी विस्फोटक स्थिति उत्पन्न कर दी थी इसका आभास तुलसी की निम्नांकित पंक्तियाँ से मिल सकता है—

कान तोपची तुपच महि, दारु अनय कराल ।

पाप पलीता कठिन गुरु गोला पुहुमी पाल ॥

हिंसा क साथ छल और प्रवचना का आश्रय लेकर मुगल शासन कभी हिन्दू राजाओं को आपस में ही लडाकर और कभी कपटपूर्ण मेल व्यवहार करके उन्हें आत्ममातृ कर लेता था—

१ दोहावली, छंद ५५६ ।

२ वही, छंद ५०१ ।

३ रामचरितमानस, १।१८३ ।

४ वही, १।१८३, १८४।१, २, ३ ।

५ दोहावली ५१५ ।

राजसमाज गाज कोटि षट्  
 फलमित क्लृप कुचाल नई है ।  
 साति सत्य सुम रीति गई षटि  
 बड़ी पुरीति षपट फलई है ॥१

शासको का आन्तरिक जीवन वैभव-विलासपूर्ण था । गुरा सुदरी के अक में सारटि भरते हुए इह प्रजाहित की चिन्ता नहीं थी, इससे आये दिन दुजन पुरस्वृत और राजन दडित होने रहते थे—

बहुरि सर सम बिनबौं तेही, संतत मुरानीक प्रिय जेही ॥२

× × ×

कलि कुचालि मुभगनि हरनि, सरलै दडे मरु ।

तुलसी यह निहमय भई, बाढी लेत न बरु ॥३

इस प्रकार हिन्दुओ को सभी सम्भव उपाया से प्रताडित करके ये उन्हें दास के रूप में रक्षना चाहते थे । इस स्वप्न को सार्थक बनाने में ही उनकी सारी शक्ति लगी रहती थी । राक्षण की निम्नांकित उक्ति में तत्कालीन शासकों की ही मनोभावना व्यक्त होती प्रतीत होती है—

छुपा घाम वामहीन रिपु, सहजहि मिलिहहि आइ ।

तब मारिहा कि राखिहौं, भली भाति अपनाइ ॥४

निरकुश राजतन्त्र अपनी ऐहिक वासनाओ की पूर्ति तथा हिंसात्मक नीति को कार्यावत करने के लिए अनेक अवाद्यनीय उपायो से घन एकत्र करता था—

मारग मारि महीसुर, मारि कुमारग कोटिक के घन लीयो ॥५

इस भौतिक आपत्ति के साथ ही दैवी प्रकोप से पडने वाले अकालो ने जनता की रीठ ही ताड दी—

कलि वारहि बार दुकाल परे । बिन अा दुखी सब लोग गरे ।

चतुर्दिक बढ़ती हुई भकारी और बेरोजगारी से बिलखती हुई जनता महात्रास की चपेट में आकर जीवन की आशा ही खो बैठी थी—

१ विनयपत्रिका, छद १३६ ।

२ रामचरितमानस, १।३।१० ।

३ बोहावली, छद ५३७ ।

४ रामचरितमानस, १।१८१ ।

५ कवितावली, ७।१७६ ।

खेतों न किसान को भिखारी को न भीख बलि,  
 बनिफ को बनिज न चाकर को चाकरी ।  
 जीविका विहीन लोग सीधमान सोचवस,  
 कहैं एक एकन सीं कहीं जाई का करी ॥  
 दारिद दसानन दवाई दुनी दीतवधु,  
 दुरित दहन दखि तुलसी हहा करी ॥<sup>१</sup>

नीचे दारिद्र्य, ऊपर दशानन वा ब्रूर शासन, यही धक्की के दो पाट थे, जिनके भीतर पड़े हुए असह्य मानव ककाल नृशसतापूर्वक पिसे जा रहे थे । उनका आत ब्रन्नन लोककवि तुलसी की घाणी में वैसे मुखरित न होना ?

आप धीती

समकालीन लोकजीवन तथा लोक स्वभाव के अध्ययन में तुलसी की जीवन-यात्रा की प्रारम्भिक परिस्थितियां बहुत सहायक हुई । बाल्यावस्था से ही आश्रयहीन हो जाने के कारण दर-दर की ठोकर खाते हुए उहे समाज को अत्यन्त निकट से देखने का अवसर प्राप्त हुआ था । अनाथ बालकों के प्रति बाल-उच्चे वाले जनसामान्य के तिरस्कारपूर्ण व्यवहार के वे शिकार हुए थे । इसकी गूज उनकी कृतियों में स्थान-स्थान पर सुनाई पड़ती है—

—घर घर मगि टूक पुनि भूपति पूजे पाय<sup>२</sup>

—बारे त ललात बिललात द्वारे द्वारे दीन,

जानत हा चारि फल चारि ही चनक को ।<sup>३</sup>

द्वार द्वार दीनता कही पाहि पाहि बार बार, परी न छार मुह धायो ।

महिमा मान प्रिय प्राण ते तजि खोलि खलन आगे को पेट खलायो ॥

—जाति के सुजाति के कुजाति के पेटागि बस

खाये टूक सबके विदित बात दुनी सो ।<sup>४</sup>

—चाटस रह्यो स्वान पातरि ज्या कवहूँ ने पेट भर्यो ।<sup>५</sup>

फिर्यो सलात विनु नाम उदरलगि, दुखहु दुखित मोहि हेरे ।<sup>६</sup>

१ कवितावली, ७।६७ ।

२ बोहायली, १०६ ।

३ कवितावली, ७।७३ ।

४ विनयपत्रिका, २७५।१ ।

५ कवितावली, ७।७२ ।

६ विनयपत्रिका, छब २२६।३ ।

७ वही, २२७।३ ।



इस सर्वप्राप्ती विपन्नता से तुलसी का उद्धार गुरुदेव के श्रीकरोँ द्वारा हुआ। उन्होंने ही इस अनाथ बालक को शिष्य रूप में स्वीकार कर अपने साथ सूकर खेत में ले जाकर सर्वप्रथम रामकथा सुनाई। सत्संग में इन्हें साधुसमाज की रीति नीति का प्रत्यक्ष ज्ञान प्राप्त करने का सुयोग प्रदान किया—

“परयो लोक रीति में पुनीत प्रीत रामराय

मोह बस बैठे तोरि तरकि तराफ हौं ।<sup>१</sup>

यौवनावस्था में ही गृहस्थाश्रम त्याग कर इन्हें पुन वैराग्य धारण करना पड़ा और फिर आजीवन यही वृत्ति रही। इन दोनों स्थितियों में जीवनयापन करते हुए इहे तत्कालीन लोकजीवन के विविध पक्षों के सूक्ष्मावेपण का अवसर प्राप्त हुआ। साधुवेश में इन्होंने देश के विभिन्न प्रदेशों का पर्यटन किया—

‘अगणित गिरि कानन फिरयो बिन आगि जरयो हौं ।<sup>२</sup>

पर्यटन में विर्घामियों द्वारा भ्रष्ट किये जात हुए हिन्दू तीर्थों और मन्दिरों की दयनीय स्थिति को देखकर इहे अपार कष्ट हुआ—

“तुलसी देवल देव के, लागे लाख करोरि।

काग विचारे हगि भरे, महिमा भई कि थोरि।<sup>३</sup>

यह तो हुई विर्घामिया की बात, स्वर्घामियों का आचरण और भी लज्जाजनक था। काशी में रहने हुए इनकी बन्ती शैवों एव पंडितों के विरोध का कारण बन गई, वे द्वेषाग्नि से जलने लगे। इन लोगों ने मौखिक विरोध करने तक ही सीमित न रहकर इन्हें शारीरिक यातना देने तक की धुष्टता की और इनके सबंध में नाना प्रकार के प्रवाद फैलाये—

गाँव बसत वामदेव मैं कबहूँ न निहोरे।

आधिभौतिक बाधा भई ते विकर तोरे।

बेगि बोलि बरजिए करतूति कठोरे।

तुलसी दलि रूप्यो चहैं सठसामि सिहोरे ॥<sup>४</sup>

साधु जाने महासाधु खल जाने महाबल

बानी झूठ सांची कोटि उठत हनुब है ।<sup>५</sup>

१ हनुमान बाहुक ४० ।

२ बिनयपत्रिका २६६।२ ।

३ बोहावली ३८४ ।

४ बिनयपत्रिका ८।३-४ ।

५ कबितावली, ७।१०८ ।

इन क्षमावातो का धैर्यपूर्वक सामना करते हुए इनकी साहित्य साधना का दीपक अमद प्रकाश बिछेरता रहा—इस विश्वास से कि अधिकार का अन्ततः नाश होगा और विरोधिया को अपनी करनी का पन मिलेगा—

“कासी के कटक जेत भये, त सबै फल पाइहैं थापनो कीयो ।

आडु की काल्हि परीं कि नरौं, सब जाहिगे घाटि दिवारी की दीयो ।”

इस प्रकार भूमिष्ठ होने के क्षण से लेकर अन्तिम काल तक विपरीत परिस्थितियों तथा समाजविरोधी तत्त्वों से सघष करते हुए उन्होंने लोकजीवन का यथाथ रूप देखा था । सजातीय और विजातीय, स्वजन और परजन—गँवार और नागर सबके स्वाथपूण आचरण से ऊबकर एक स्थान पर वे बहते हैं—

सहवाली काचो गिलाहि, पुरजन पाक प्रबोन ।

काल दोष केहि विधि बर्राहि, तुलसी खग मृग भोन ॥

गोस्वामी जी वीतराग महापुरुष थे । वे सासारिक मायाजाल से दूर रहकर उदासीन भाव से कालयापन करते थे । उनका स्वयं कथन है—

भागोरपी जलपान करौं अरु नाम राम को लेत नितै हौं ।

माको न लेनो न देनो कछु कलि भूलि न रावरी ओर चितैहौं ॥<sup>१</sup>

इतने पर भी समाजकल्याण के नामधारी ठेकेदार उन्हें तग करते थे, उन पर तरह-तरह की फस्त्रियाँ बसते थे, जिससे कभी-कभी वे तिलमिला उठते थे । आलोचकों की अभ्यथना में ये शब्द उनके मुँह से इही परिस्थितियों में निकले होंगे—

“घूत कहै अवघूत कहै रजपूत कहै जोलहा कहै कोऊ ।

काहु की बेटी सो बेटा न ब्याहब काहु की जाति बिगारि न सोऊ ॥”

अपनी तरह उन्होंने अथ अनेक सुकृतिया की महिमाभृगी खला के बावय-बाणो से विद्ध होती हुई देखी थी, अतः उनके द्वारा निरूपित लोकजीवन में लोकस्वभाव की यह विशेषता छूटने नहीं पाई ।

तात्विक दृष्टि से गोस्वामीजी ‘सीयराम मय सब जग जानी’ के समथक थे, समस्त चराचर जगत् को रामलीला में अन्तर्हित तथा समस्त जागतिक प्रपञ्चों में रामलीला का ही दर्शन करते थे किन्तु लोकव्यवहार में उसक सत् तथा असत् दो पक्षों का अस्तित्व स्वीकार करते हुए ‘राम’ और ‘रावण’ को उनका प्रतीक

१ कवितावली, ७।१७६ ।

२ बोहावली, ४०४ ।

३ ४ कवितावली, ७।१०२, ७।१०६ ।

मानत रहे। सृष्टिरचना में इनका अनिवार्य एव युगवत् अस्तित्व स्वीकार करते हुए एक सच्चे लोकसम्रही महापुरुष की भाँति व लोकमर्यादा की रक्षा में सतत सावधान दिव्याई देते हैं। उनका मत है—

जड चेतन गुनदोषमय, बिस्व कीन्ह करतार ।

सत हस गुन गर्हाहि पय, परिहरि वारि विकार ॥<sup>१</sup>

सुधा सुरा सम साधु असाधु । जननि एक जग जलधि अगाधु ॥<sup>२</sup>

‘जडचेतन का ज्ञान तुलसी ने भले ही शास्त्राध्ययन से प्राप्त किया हो किन्तु ‘साधु असाधु का परिचय उन्हें व्यापक लोक पर्यवेक्षण से मिला था। शास्त्रों में उनकी स्वभावगत विशिष्टताओं का जो विवरण पाया जाता है उसकी पुष्टि उन्होंने व्यक्त ससार को छुली आँखों से देखकर और उसके शीत उष्ण झकोरों का प्रत्यक्ष अनुभव करके की थी। उनकी कृतियाँ में समकालीन जनजीवन के जो सटीक तथा सजीव चित्र मिलते हैं वे इसी के परिणाम हैं। इन्होंने कहीं-कहीं प्राचीन कवियों तथा शास्त्राचार्यों की उक्तियाँ सामान्य हेर-फेर के साथ रख दी हैं। ऐसे स्थला को देखकर यह आशंका नहीं होनी चाहिए कि वे अनुभव का पूव पुरुषा के हैं तुलसी के अपने नहीं। हमारी धारणा है कि ऐसे प्रसंगों में तुलसी के अनुभव पूववर्ती महापुरुषों के अनुभवों से अभिन्न हैं।

इसके विपरीत इनकी रचनाओं में ऐसे भी प्रसंग आये हैं जहाँ इनके अपने अनुभव परम्परागत आदर्श से विलक्षण है। गोस्वामी जी के ऐसे कुछ अनुभव समसामयिक समाज में याज्ञ विषमता, अभाव, पीडा तथा प्रतारणा से सम्बद्ध हैं। मर्यादा पुरुषोत्तम के उपासक तथा आशवादी भक्त होते हुए भी वे जीवन के कठोर यथार्थ की ओर हमारा ध्यान बराबर आकर्षित करते रहते हैं—

सुनिय सुधा, देखिय गरल, सब करतूति बराल ।

जह तह काक उलूक बक, मानस सुदृत मराल ॥<sup>३</sup>

आज की तरह उनके समय में भी जनजीवन का मानसरोवर लोलुप तथा शकालु कौओं, अघकारधर्मा तथा बपटाचारी बगुला का अड्डा बन गया था। जो एकाध हस बच रहे थे वे लुभ छिपकर एकान्त साधे हुए जीवनयापन कर रहे थे। सारा वातावरण विषाक्त हो गया था। ऐसे युग में सञ्चना का तिरस्कार और दुष्टों का अभिनन्दन होना स्वाभाविक था—

१ रामचरितमानस, १।६।

२ वही १।५६।

३ बोहावली, ३४७।

सीधत साधु साधुता सोचति, खल बिलसत ह्वलसति खलई है ।<sup>१</sup>

जिस स्थिति में सामारिक क्षमेता से दूर रहने वाले तुलसी ऐम कीतराग सत के हृदय के ये उद्योग प्रकट हुए ये उम समय जनसामान्य की क्या दशा रही होगी, इसका अनुमान सहज ही लगाया जा सकता है। इस प्रकार की प्रगाढ अनुभवपूर्ण उक्तियाँ उनकी कृतियाँ में भरी पड़ी हैं, कहीं रामकथा और रामभक्ति निरूपण के प्रसंग में और कहीं स्वतन्त्र रूप में इनका प्रकाशन हुआ है। इनकी विवेचना तत्कालीन वैयक्तिक, पारिवारिक तथा सामाजिक जीवन के परिवेश में की जायेगी।

### व्यक्तिक जीवन

मनुष्य के व्यक्तित्व का निर्माण तीन तत्वा—शरीर, मन अथवा बुद्धि तथा आत्मा की सहति से होता है। आदर्श जीवन में इनका आनुपातिक विकास आवश्यक है। व्यक्ति समाज का भूलाधार है। उमक विकास पर ही समाज का उत्थान निर्भर होता है। गोस्वामी जी इसकी महत्ता से अवगत थे। इसलिए पारमार्थिक दृष्टि से मनुष्य जीवन को दणभगुर तथा मनुष्य के कार्यक्षेत्र ससार का मिथ्या बताया है—

तुलसिनाम सत्र विधि प्रपच जग जदपि झूठ श्रुति गावे ।<sup>२</sup>

झूठी है झूठी है झूठी सत कहत जे अत सहा है ।<sup>३</sup>

किंतु व्यावहारिक रूप में उन्होंने उसकी उपादेयता एवं चिरन्तनता स्वीकार की है—

पल्लवत फूलत नवल नित ससार विटप नमामहे ।

आराध्य की लीलामूर्ति भारत में जन्म लेने का उन्हें गर्व था—सत्कुल और स्वस्थ शरीर बड़े भाग्य से मिलता है, यह उनकी धारणा थी—

भलि भारत शुभि भले कुल जन्म समाज सरीर भलो सहि के ।<sup>४</sup>

मनुष्य कर्मानुसार स्वर्ग अथवा नरक में जाता है—साधन द्वारा मोक्ष की

१ दिनदपत्रिका, १३२।५।

२ दिनदपत्रिका, छब १२१।५।

३ कवितावली ७।३६।

४ रामचरित मानस ७।५।

५ कवितावली, ७।३३।

भी प्राप्ति इसी शरीर से होती है। जो इसे प्राप्त कर परलोक नहीं सुधारता वह अभागा है।

नरक स्वर्ग अपवर्ग निसेनी । ज्ञान विराग भगति सुख देनी ॥  
साधनधाम मोक्ष के द्वारा । जो न पाइ परलोक सँवारा ॥  
सो परत दुख पावई, सिर घुनि-घुनि पछिजाइ ।  
कालहि कर्महि ईश्वरहि, मिथ्या दोष लगाइ ॥<sup>१</sup>

विषयासक्ति मनुष्य के आत्मोत्थान में सर्वाधिक बाधक है। माया की शक्तिशाली सेना से पराजित जीव पराधीन होकर अपना स्वरूप भूल जाता है और नाना ससृति बलेश सहता है—

व्यापि रहेउ ससार मह, माया कटक प्रचड ।

सेनापति कामादि भट, द्वेष कपट पाखण्ड ॥

इनमें काम और क्षुधा सबसे प्रबल है। ये मनुष्य की अधा कर देते हैं—

तुलसी यहि जग आइके, कौन भयो समरत्प ।

कधन और मन पर कौन पसारयो हृत्य ॥<sup>२</sup>

पेट की माया अपरम्पार है। इसे ही भरने के लिए मनुष्य नाना प्रकार के उद्यम और निकृष्ट कर्म में प्रवृत्त होता है—

किसबी किसान कुल, बनिक भिखारो भाँट

चाकर, चपल नट, चोर, धार, चेट की ।

पेट को पढत, गुन गढत चढत गिरि

अटत महज बन अहन अक्षेट की ।

ऊँचे नीचे करम धरम अधरम करि

पेट ही को पचत बँचत बेटा बेट की ।

तुलसी बुझाइ एक राम धनस्याम ही ते,

आगि बडवागि ते बडी है आगि पेट की ।<sup>३</sup>

इनका अत्यन्तभाव असम्भव है, अतः परमार्थ साधक को उदात्तीकरण द्वारा विषयो-मुखी इंद्रियों को आराध्य की अचना में सलग्न करना चाहिए—

१ रामचरितमानस ७।१२०-१० ।

२ वही, ७।७१-क ।

३ कवितावली, ७।६६ ।

४ वही, ७।६६ ।

कामिहि नारि पियारि जिमि, लोभिहि प्रिय जिमि दाम ।

तिमि रघुनाथ निरंतर प्रिय लागहु मोहि राम ॥<sup>१</sup>

श्रवन कथा, मुख नाम, हृदय हरि सिर प्रनाम सेवा करि अनुसह ।

नबनन निरन्धि कृपा समुद्र हरि, अग जग रूप भूष सीता बह ॥<sup>२</sup>

इस दृष्टि से त्रिकाठ साधन में उपासना अथवा भक्ति का अवलम्बन ही सुलभ तथा श्रेयस्कर है । रामनाम का आश्रय लेकर अपनी प्रवृत्ति के अनुसार वह परमात्मा सगुण अथवा निगुण—किसी भी रूप की आराधना में प्रवृत्त हो सकता है—

बलि नाम काम तस राम को ॥

दलनि हार दारिद दुकाल दुख दोष घोर घनघाम को ॥

नाम लेत दाहिनो होत मन बाम विधाता बाम को ॥<sup>३</sup>

“अगुन सगुन विच नाम मुसाखी ।

उभय प्रबोधक चतुर दुभापी ॥<sup>४</sup>

भक्ति की प्राप्ति के लिए दो तत्त्व अनिवार्य हैं—श्रद्धा और विश्वास, उच्च शिक्षा, गान, अथवा बौद्धिक विकास नहीं । लोकजीवन में इसका प्रत्यक्ष रूप स्त्रियों द्वारा घृतोत्सवों पर की गई भीति पूजा में देखा जा सकता है—

अपनो ऐपा निजहया, तिय पूजहि निज भीति ।

फले सकल मन कामना, तुलसी प्रीति प्रतीति ॥<sup>५</sup>

साधना के क्षेत्र में भी अधिकारी साधकों का यह अनुभव है कि इन दोनों तत्त्वों के अभाव में सिद्ध महापुरुष भी अन्तस्व ईश्वर का दर्शन नहीं कर पाते ।

भवानीशकरी बदे श्रद्धाविश्वासरूपिणी ।

याम्यां विना न पश्यन्ति सिद्धा स्वान्तस्वमीश्वरम् ॥

समस्त वैयक्तिक जीवन के समय और सरलता, कष्ट सहिष्णुता, परोपकार, परदुःखकातरता, आदि वृत्तियों से प्रेरित कर्मों का महत्त्व निर्विवाद है । इससे आत्मिक शक्ति का विकास होता है । इनसे सुसज्जित सत्प्राचारी एवं आस्तिक

१ रामचरितमानस, ७।१३० ।

२ विनयपत्रिका, छंद २०५ ।

३ यही, छ० १५६ ।

४ रामचरितमानस १।२१।८ ।

५ बोहावली, छ० ४५४ ।

६ रामचरितमानस, मगलाचरण (बाल काण्ड) श्लोक २ ।

व्यक्ति के द्वारा ही पाशविक वृत्तियों का नियन्त्रण समभव है। ऐसा एक व्यक्ति अपने आत्मबल से बड़ी स बड़ी भौतिक शक्ति को पराजित कर सकता है।

महा अजय ससार-रिपु जीति सकइ सोइ धीर ।

जाके असरय होइ दृढ मुनहु सखा मति धीर ॥<sup>१</sup>

इस प्रकार उत्कर्ष लाभ कर लेने पर भी समाहित व्यक्ति को स्वार्थी सिद्धान्तहीन लोगो द्वारा की गई प्रशंसा तथा दिये गये सम्मान से सदैव दूर रहना चाहिए, अन्यथा ये उसके द्वारा अर्जित साधन संपत्ति को क्षण भर में नष्ट भ्रष्ट कर डालेंगे—

तुलसी भेडी की धँसनि, जड जनता सनमान ।

उपजत ही अभिमान भो, खोवत मूढ अपान ॥<sup>२</sup>

### पारिवारिक जीवन

अशस्वरूप जीव का तत्त्वदृष्टि से एकमात्र सम्बन्धी अशी अथवा बह्य है। परन्तु शरीर धारण करने के पश्चात् लोकजीवन में उसके अनेक सम्बन्धी हो जाते हैं। ससार मात्र में उसे इनके प्रति अपने कर्तव्य निभाने पडत है। तुलसी ने लोकजीवन की सफलता के लिए इन कर्तव्यों का पालन आवश्यक बताया है किन्तु यह कर्तव्यभावना जब आसक्ति अथवा मोह का रूप धारण कर लेती है तब कौटुम्बिक सम्बन्ध आत्मविकास में बाधक ही नहीं हो जाते—रागद्वेषमय बन कर नारकीय दृश्य उपस्थित करते हैं और यमपुर का द्वार खोल देते हैं—

—सुत बनितानि जानि स्वारथरत न करु नेह इनही ते ।<sup>३</sup>

—सुत बित दार भवन ममता निसि सोवत अति, न कबहुँ मति जागी ।<sup>४</sup>

—जाके प्रिय न राम वैदेही

तजिये ताहि कोटि बैरी मम जद्यपि परम सनेही ।

—अजन कहा आँखि जेहि फूँटे बहुतक वहाँ कहाँ लो ॥<sup>५</sup>

परिवार में सम्बन्ध के आधार पर कोई छोटा होता है कोई बडा। सबके

१ रामचरितमास, ६।८०-५ ।

२ घोहावली, ४६५ ।

३ विनयपत्रिका १६८ ।

४ यही, पृ० १४० ।

५ यही, पृ० १७४ ।

एक दूसरे से पृथक् सम्बन्धजनित कर्त्तव्य और अधिकार होते हैं। तुलसी ने समाज में लोगों को उत्तरोत्तर अधिकार प्राप्ति में मजग और कर्त्तव्य पालन में उसी अनुपात से शिक्षित होते हुए दखा था—

सास समुर गुरु मातु प्रभु, मयो चहैं सब कोय ।

होना दूजो ओर को सुजन सराहिय मोय ॥<sup>१</sup>

उनके समकालीन पारिवारिक जीवन में कितनी विश्रुत्वलता उत्पन्न हो गई थी इसका निरूपायन रामचरितमानस के उत्तर काण्ड के कलियुग वनन प्रसंग में किया गया है। इससे कौटुम्बिक सम्बन्ध के पारस्परिक व्यवहार-विषयक उनका सूक्ष्म निरीक्षण का पता चलता है—

पिता-पुत्र सुत भानहिं मातु पिता तबलों ।

अवलानन दीख नहीं जब लों ।

समुरारि पियारि लगी जबते ।

रिपु रूप कुटुम्ब भये तबते ॥

पुरुष कुलवति निकारहिं नारि सती ।

घर आनहिं चेरि निवेरि गती ।<sup>२</sup>

स्त्री गुन मदिर सुन्दर पति त्यागी ।

भजहिं नारि परपुरुष अभागी ।<sup>३</sup>

इस विश्रुत्वलता का मुख्य कारण था पारिवारिक जीवन के मूलाधार— सहानुभूति, प्रेम, त्याग आदि वृत्तियाँ का क्रमशः ह्रास और विधर्मी सस्कृति के प्रभाव से विलासिता एवं तज्जय चरित्रहीनता का विकास।

### सामाजिक जीवन

तुलसी ने समसामयिक समाज की पतनामुखी स्थिति का हृदयद्रावक दृश्य अनुभव नेत्रों से ही नहीं स्थूल चक्षुओं से भी देखा था। हिंदू जीवन के भेरुदण्ड वर्णाश्रम व्यवस्था का ह्रास हो चला था। लोक-वेद-भर्मादा को तिलाजलि देकर लोग स्वेच्छाचारी हो रहे थे—

“आश्रम धरन धरम विरहित जग, लोक वेद भरजाद गई है ।

प्रजा पतित पाखण्ड पापरत अपने अपने रग रई है ॥<sup>४</sup>

१ बोहावली, छ० ३६१ ।

२ रामचरितमानस, ७।१०१ ४, ५, ३ ।

३ वही, ७।१६ क, ४ ।

४ दिनपत्रिका, छ०



समाज के पयप्रदशक ब्राह्मण क्षत्रिय, सभी, अपने उच्च आदश से गिर चुके थे—

‘विप्र निरच्छर लोलुप कामी ।

निराचार सठ वृपली स्वामी ॥<sup>१</sup>

द्विज धृति बेचक भूप प्रजासन ।

कोउ नहि मान निगम अनुसासन ॥<sup>२</sup>

तथाकथित निम्न वण की जागृति से वर्ण विरोध की स्थिति उत्पन्न हो गई थी—

“बादाहि सूद द्विजन सन, हम तुमसे बछु घाटि ।

जानइ ब्रह्म सो विप्रवर, आंखि देखाबाहि डांठि ॥<sup>३</sup>

१६वीं शती के भङ्गित आन्दोलन के परिणामस्वरूप निगुण सम्प्रदाय में परिगणित तथा पिछड़ी जातियों के सत्ते का प्राधान्य हो चला था । ये गुरु रूप में ब्राह्मणों द्वारा भी पूजे जाने लगे थे—

जे बरनाश्रम तलि कुम्हारा । स्वपच किरात कोल कलवारा ।

ते विप्रन सन पाँव पुजावहि, उभय लोक निज हाथ नसावहि ॥<sup>४</sup>

इस गिरे हुए समाज में आचार तथा योग्यता की परिभाषा का बदल जाना स्वाभाविक था—

कलिकाल कराल किये मनुजा ।

नहि मानत कोउ अनुजा तनुजा ॥<sup>५</sup>

+ + +

मारग सोइ जा कह जो भावा ।

पडित सोइ जो गाल बजावा ॥

सोइ सयान जो परपन हारी ।

वरइ पखड सो बड आचारी ॥

जो कह झूठ मसखरी जाना ।

कलियुग सोइ गुनवंत बसाना ॥<sup>६</sup>

जीवन की सामान्य पगडडिया पर चलने वाले लोगों की तो बात ही क्या उस काल के तथाकथित दार्शनिकों तक की दृष्टि ब्रह्म से हटकर माया में रम गई थी—

१ रामचरितमानस ७।१०० क ८ ।

२ रामचरितमानस ७।६८ क-२ ।

३ यही, ७।६६ छ ।

४ यही, ७।१०० क ५ ७ ।

५ यही, ७।१०२ ३ ।

६ यही, ७।६८ ३, ५, ६ ।

“परतिय लपट कपट सयाने ।  
मोह द्रोह भमता लपटाने ॥  
तेह अभेदवादी ज्ञानी वर ।  
देखा मैं चरित्र कलियुग कर ॥<sup>१</sup>

जहाँ पढ़े लिखे लोगो की यह दशा थी वहाँ अनपढ़ हृदियस्त जनता भेडिया-घसान में कैसे न फँसती—अयोध्या और उसके निकटस्थ सूकर छेत में बसते हुए उन्होंने इस विवेकहीनता का नग्न दृश्य अपनी आँखों देखा था । बहराइच के सैम्यद सामार की दरगाह की जियारत करने वाली अघविश्वासी जनता के आचरण में—

“लही आँखि क्य आयरे, बाँझ पूत क्य पाम ।  
कव कोटी काया लही जग बहराइच जाम ॥<sup>२</sup>

इस काल की शिष्या का उद्देश्य ज्ञानार्जन न होकर अर्थोपाजन अथवा उदर-पोषण मात्र रह गयर था—

मानु पिता बालकहू बोलावहि  
उदर भरइ सोइ जतन सिखावहि ॥<sup>३</sup>

पेट ही को पढत गुन गढ़त चढत गिरि  
अटत गहन वन अहन अखेट की ।<sup>४</sup>

अतः शिष्यको की दृष्टि शिष्य की गाठ के पैसे पर अत्यधिक रहती थी, प्रथिमोचन अथवा शका समाधान पर कम—

“हरइ शिष्य धन सोक न हरई ।  
मो गुरु घोर नरक मैंह परई ॥<sup>५</sup>

सगुणमार्गी साधुओं की दशा और भी शोचनीय थी । उनमें वैराग्य वृत्ति का ब्रमशः ह्रास होता जा रहा था । एक घर छोड़कर अनेक घर बसाने के फर में पडकर वे विषयसेवन में मग्न हो रहे थे—

“बहु दाम सवारहि घाम जती ।  
विषया हरि सीन नही विरती ॥

१ रामचरितमानस, ७।१०० क-द १,२ ।

२ बोहावली, ४९६ ।

३ रामचरितमानस, ७।९९,८ ।

४ कथितावली, ७।९६ ।

५ रामचरितमानस ७।९९-७ ।

समाज के पथप्रदशक ब्राह्मण क्षत्रिय, सभी, अपने उच्च आदर्श से गिर चुके थे—

‘विप्र निरच्छर लोलुप कामी ।

निराचार सठ वृपली स्वामी ॥<sup>१</sup>

द्विज श्रुति वेचक भूप प्रजासन ।

कोउ नहिं मान निगम अनुसामन ॥<sup>२</sup>

तथाकथित निम्न वर्ण की जागृति से वर्ण विरोध की स्थिति उत्पन्न हो गई थी—

“बार्दाहिं सूद द्विजन सन, हम तुमस कछु घाटि ।

जानइ ब्रह्म सो विप्रवर, आंखि देखार्वहिं डाटि ॥<sup>३</sup>

१६वीं शती के भक्ति आन्दोलन के परिणामस्वरूप निगुण सम्प्रदाय में परिगणित तथा पिछड़ी जातियों के सत्ता का प्राधान्य हो चला था । ये गुरु रूप में ब्राह्मणों द्वारा भी पूजे जाने लगे थे—

जे बरनाश्रम तेलि कुम्हारा । स्वपच किरात कोल कलवारा ।

ते विप्रन सन पाँव पुजावहिं, उभय लोक निज हाथ नसावहिं ॥<sup>४</sup>

इस गिरे हुए समाज में आचार तथा योग्यता की परिभाषा का बदल जाना स्वाभाविक था—

कलिकाल कराल किये मनुजा ।

नहिं मानत कोउ अनुजा तनुजा ॥<sup>५</sup>

+ + +

मारग सोइ जा कह जो भावा ।

पडित सोइ जो गाल बजावा ॥

सोइ सयान जो परधन हारी ।

करइ पखड सो वड आचारी ॥

जो कह झूठ मसखरी जाना ।

कलियुग सोइ गुनवत बखाना ॥<sup>६</sup>

जीवन की सामान्य पगडडियों पर चलने वाले लोगों की तो बात ही क्या उस काल के तथाकथित दार्शनिकों तक की दृष्टि ब्रह्म से हटकर माया में रम गई थी—

१ रामचरितमानस ७।१०० क ८ ।

२ रामचरितमानस ७।६८ क-२ ।

३ यही, ७।६६ ख ।

४ यही, ७।१०० क ५ ७ ।

५ यही, ७।१०२ ३ ।

६ यही, ७।६८ ३, ५, ६ ।

“परतिय लपट कपट सयाने ।  
मोह द्रोह भमता लपटाने ॥  
तेइ अभेदवादी जानी बर ।  
दखा में चरित्र कलियुग फर ॥<sup>१</sup>

जहाँ पढ़े लिखे लोगों की यह दशा थी वहाँ अनपढ़ रुढ़िग्रस्त जनता भेडिया-  
घसान में बेसे न फँसती—अयोध्या और उसके निकटस्थ सूकर खेत में बसते हुए  
उन्होंने इस विवेकहीनता का नग्न दृश्य अपनी आँखों देखा था। बहराइच के  
सैय्यद साम्राज्य की दरगाह की जियारत करने वाली अघबिश्वासी जनता के  
आचरण में—

“लही आँखि कज आधरे, चाँस पूत कब पाय ।  
कब कोढ़ी काया लही जग बहराइच जाय ॥<sup>२</sup>

इस कान की शिखा का उद्देश्य ज्ञानार्जन न हाकर अर्थोपाजन अथवा उदर-  
पोषण मात्र रह गया था—

मातु पिता बालकह बोनाबहि  
उदर भरइ सोइ जतन सिखाबहि ॥<sup>३</sup>

पेट ही को पडत गुन गढ़त चढत गिरि  
अटत गहन वन अहन अखेट की ।<sup>४</sup>

अतः शिक्षा की दृष्टि शिष्य की गाँठ के पैसे पर अत्यधिक रहती थी,  
प्रथिमोचन अथवा शका समाधान पर कम—

“हरइ शिष्य धन सोक न हरई ।  
सो गुरु घोर नरक भँह परई ॥<sup>५</sup>

सगुणमार्गी साधुओं की दशा और भी शोचनीय थी। उनमें वैराग्य वृत्ति  
का क्रमशः ह्रास होता जा रहा था। एक घर छोड़कर अनेक घर बसाने के फेर में  
पडकर वे विषयसेवन में मग्न हो रहे थे—

“बहु दाम सवारहि धाम जती ।  
विषया हरि लीन नही विरती ॥

१ रामचरितमानस, ७।१०० क-घ १,२ ।

२ बोहावली, ४६६ ।

३ रामचरितमानस, ७।६६,घ ।

४ कवितावली, ७।६६ ।

५ रामचरितमानस ७।६६-७ ।

तपसी धनवत दरिद्र गृही ।

कलि कौतुन तात न जात कही ॥<sup>१</sup>

निगुण धारा के सत प्राचीन आध्यात्मिक मार्गों को छोड़कर नये नये पथों के प्रवर्तन में लीन थे—

कलिमल ग्रसे धर्म सब, सुत भए सदग्रय ।

दभिन्ह निजमत कल्पकरि प्रकट क्रिय बहुपय ॥

आचारहीन योगी तथा अपौरुषणियों की सिद्ध रूप में पूजा की जाती थी—

अमुम बेप भूपन धरे, भदयाभन्य जे खाहि ।

तेह जोगी तेह सिद्ध नर, पूज्य ते कलिजुग माहि ॥<sup>२</sup>

समाजिक जीवन के सभी क्षेत्रों में व्याप्त दुर्व्यवस्था को देखकर तुलसी ऐसा साहसी तत्वज्ञानी भी किक्तव्यकिमूढ हो गया था—

कासा कीजे रोप दोष दीजे काहि ? पाहि राम

कियो कतिकाल सब खलल खलक ही ।<sup>३</sup>

### धार्मिक जीवन

दिल्ली सल्तनत के स्थापन काल में ही यवन शासन व्यवस्था का मुख्य उद्देश्य इस्लामी सस्कृति तथा धर्म का प्रचार था । तीन सौ वर्षों के इस विधर्मी शासन के अत्याचारों ने पिसते हुए हिन्दुओं के धार्मिक आचार-विचार लुप्त हो गये थे । जब वेद-पुराण का कथन-श्रवण ही दडनीय अपराध हो—ऐसे युग में धार्मिकता का विरोद्धित हो जाना स्वाभाविक था । रावण द्वारा स्थापित राक्षसी राज्य व्यवस्था के वणन में प्रकारान्तर में तुलसी ने इस ओर सकल किया है—

अस भ्रष्ट अचारा भा ससारा धर्म मुनिय नाहि माना ।

तेहि बहुविधि श्रासह देस निकामह जो कह वेद पुराना ॥<sup>४</sup>

इस काल में व्यक्तिगत रूप से इतना चारित्रिक पतन हो गया था कि ब्रह्म-पान बधारने वाले ढोंगी कौडी के लिए गुरु तथा ब्राह्मणों की हत्या करने में नहीं हिचकते थे—

१ रामचरितमानस, ७।१००-१ ।

२ वही, ७।६७ क ।

३ वही, ७।६८ क ।

४ कवितावली, ७।६८ ।

५ रामचरितमानस, १।१८३।

ब्रह्मज्ञान बिनु नारि नर, करहि न दूसर बात ।

कौडी लागि लोभ बस, करहि विप्र गुध घात ॥<sup>१</sup>

हिन्दू धर्म के भीतर प्रचलित विविध मतमतान्तर पारस्परिक विद्वेष तथा स्वार्थ साधन में ही व्यस्त थे । चारों ओर पाखण्ड और उच्छृंखलता का ही साम्राज्य था—

दभ सहित कलि घरम सब, छल समेत व्यवहार ।

स्वारथ सहित सनेह सब, रुचि अनुहरत अचार ॥<sup>२</sup>

### लोकाचार

इसी प्रकार लोकरीति तथा लोकाचार के वर्णन में गोस्वामी जी का दृष्टि-कोण पूणतया यथार्थवादी रहा है । ऐसे स्थलों पर उन्होंने आदर्श तथा मर्यादावाद के नियम ढाल कर लोकमानस का बड़ा ही आकर्षक स्वरूप चित्रित किया है । प्रकृत्या वीतराग होते हुए भी सामाजिक जीवन के रागरजित कोनों तक उनकी अतर्भेदिनी दृष्टि पहुँची थी । गारी को नई रोशनी के लोग अशिष्टता का प्रतीक मानते हैं किन्तु बाबा जी ने भागलिक अवसरों पर उसका आयोजन एवं प्रयोग लोकजीवन के लिए आनन्द विषायक तथा श्रेयस्कर बताया है । उनके मत में क्रोध तथा द्वेष की प्रेरणा से प्रयुक्त गालियाँ ही हानिकर हैं । हृदय से निकली हुई गालियाँ सजीवनी सुरा हैं, जिनका श्रवणपुटों से पान करके मुरझाये हृदय खिल उठते हैं, पोपन और क्षुरिया से भरे गालों पर सेब की लाली दौड़ जाती है । इनका रसास्वादन अत्यन्त उच्च चारित्रिक धरातल के सुसंस्कृत लोग ही कर सकते हैं, तथाकथित सम्य लोच नही—यह उनका स्पष्ट अभिमत है—

“अभिय गारि गारेउ गरल, गारि कीह करतार ।

प्रेम वैर की जननि जुग, जानहि बुध न गवार ॥<sup>३</sup>

ये अमृत रससिक्त गालियाँ मुण्डन, विवाह आदि के अवसर पर गाई जाती हैं ।

रामलला नहछू में इसका ये एक नमूना दे गये हैं —

“गावहि सब रनिवास दाहि प्रभु गारी हो ।

रामलला सकुचाहि देखि महतारी हो ॥<sup>४</sup>

१ रामचरितमानस ७।६६ क ।

२ दोहावली, ५४८ ।

३ दोहावली, ३२८ ।

४ रामलला नहछू, १८ ।

काहे राम जिव साँवर लखिमन गोर हो ।  
कीघो रानि कौसिलहि परिगा भोर हो ॥<sup>१</sup>

राम विवाह के अवसर पर बारातिया समेत महाराज दशरथ जनकपुर में भोजन के समय भाई जाने वाली गालियों का रसास्वादन करते हैं—

“जेवत देहि मधुर पुनि गारी ।  
ले ले नाम पुरष अरु नारी ॥  
समय सुहावन गारि विराजा ।  
हसत राउ सुनि सहित समाजा ॥”<sup>२</sup>

कवितावली में विनोदवश उन्होंने लकाहन के अवसर पर रागसियों द्वारा हनुमान को दी गई गालियाँ को लोकजीवन में सम्बन्धियों के सम्मान में आयोजित होने वाली भोजन के समय की गाली का ही रूप दिया है—

तुलसी निहारि अरि नारी दे दे गारी कहै  
बावरे मुरारि वैर कीहों रामराय सो ।<sup>३</sup>

इसी प्रकार लोकरीति विषयक उनके अनुभव एवं आस्था का भी एक नमूना देना असंभव न होगा । प्रसंग जानकी भगल था है । विवाह के समय दूल्हा का भाई ‘लावा परछता’ है, सीता के कोई भाई नहीं था, इस लोकरीति को पूरा बौन करे । गोस्वामीजी ने परम्परागत मर्यादा की रक्षा के लिए सीता के भाई भूमिपुत्र भगल का उक्त अवसर पर अवतरण कराया—

प्रिय भ्राता के समय भौम सह आयउ ।  
दुरी दुरा करि नेम सु नात जनायउ ॥

ग्राम गीता में आवश्यकतानुसार इस प्रकार पात्रों के सन्निवेश की परम्परा बहुत है । विवाह में दूल्हा को बहन को गाली भाई जाती है । सालियों और सरहजों का निशाना यही बनती है । प्रचलित रामकथा में राम के बहन नहीं थी, इस रिक्राना की पूर्ति प्रशांत स्वभाव के भाई राम की बहन ‘शान्ता’ की सृष्टि

१ रामसप्तमहच्छ, २१ ।

२ रामचरितमानस, १।३२६-६,७ ।

३ परवर्ती रामायणों में लक्ष्मीनिधि सीता के भाई कहे गये हैं । ये महाराज जनक (सीरध्वज) के भाई कुशध्वज के पुत्र थे ।

४ जानकीभगल, १६६ ।

५ वाल्मीकि रामायण के बाकिनात्य पाठ में शांता दशरथ की पुत्री कही गयी

करके की गई। राम बलेवा के प्रसंगों में इसका उल्लेख मिलता है—

“बहिन तुम्हारे कहिए साता, सा मुनि सग सिधारी, हमारे राम लया ।  
तुम्हें गारी मैं बेहि विधि देऊँ, रसिया राम लला ॥”

### लोक स्वभाव

लोक स्वभाव से उनका कितना गहरा परिचय था, उसकी प्रकट और अप्रकट छवियों का कितनी पैनी दृष्टि से उन्होंने निरीक्षण किया था, इसका अनुमान उनकी कृतियों में प्राप्त निम्नांकित उदाहरणों से लगाया जा सकता है—

(१) प्रेम और वैर दाना मनुष्यों को अघा बना देते हैं। इनका प्रकर्ष उनकी बाहरी ही नहीं आन्तरिक आँसों की भी ज्याति समाप्त कर देता है—

तुलसी वैर सनेह दाउ, रहित बिलोचन चारि ।

मुरा सवरा आदरहि, निर्दाहि मुररारि चारि ॥<sup>१</sup>

(२) मात्र आकस्मिक वेष, लोहकव्यक्तित्व और मधुर वाणी से लोगों को प्रभावित करके जो लोग समाज में प्रतिष्ठा प्राप्त कर लेते हैं अथवा धान जमा लेते हैं, कालान्तर में अन्त परिष्कार के अनाव से उनका पतन अवश्य होता है—

वचन वेष ते जो बने, सो बिगरे परिनाम ।

तुलसी निज ते जो बने, बनी बनाई राम ॥<sup>२</sup>

(३) ससार में हीनवृत्ति वाले निठले आलोचकों की कमी नहीं है, एक उक्ति है—

ठाढो द्वार न दे सकैं, तुलसी जे जन नीच ।

निर्दाहि निभिहरिषद को का बियो करन दधीच ॥<sup>३</sup>

(४) लोग मानसिक अथवा शारीरिक व्याधियों से ग्रस्त होने पर आरम्भ में उपचार के लिए मामान्य कष्ट नहीं सहते, उचित आलोचना पर ध्यान नहीं देते, समय रहते सुधारना पसंद नहीं करते, वही रोग शाने शाने

है। किन्तु वायु, हरिबश, तथा मत्स्य आदि प्रसंगों में इन्हीं स्तोत्रपादों को कन्या माना गया है ।

१ लोकगीत

२ दोहावली, ४१२ ।

३ वही, १५४ ।

४ वही, ३८२



बदलकर असाध्य हो जाता है और तब मरीज को अपने साथ से हूबता है—

सोवसेनि पूटी सदै, आंजी सदै न बोय ।

जा सुसगी आंजी गदै तौ पूटा नहि होय ॥<sup>१</sup>

प्रकृति विद्या का कामा नहीं करता ।

### ध्यायहारिक दृष्टिकोण

भक्तिगत रूप से कुनगी सन स्वामावातुल्ल शान्ति नाति के अनुयायी ये मर्याद भगद्रे म पढ़ना उह पमन् न था—

मुमनि विचारहि परिहर्छह, दल मुमनहु सभाम ।

सकुन गए तनु बिनु भये सासी जालौ काम ॥<sup>२</sup>

रिन्दु असाधार का सीमा पार करत दमकर सोरभमन के लिए ये यन्-यन् शोध का प्रयत्न और आत्मयत्ना पढ़ने पर शक्ति का प्रयोग आवश्यक मानत था—

गठ गन विनम बुद्धिम मन प्रीती । सहज कृपण सन सुदर नीती ॥

ममता रग सन ज्ञान बहाना । अरु कामिहि सन विरति बगानी ॥

बोधिहि सम कामिहि हरिबधा । ऊयर बीज बए फल जया ॥<sup>३</sup>

जहनि मर्याद पुर्यातम क रसभाव म शोध के इग सोरोपकारी स्वल्प का धरा हा मत्रय विन प्रस्तुत किया है—

गतिमर बान गरागर आतू । सोगी वारिधि विमिल कृमानू ॥

× × ×

विनय म माना जमपि जह गये तीन नि बोजि ।

मूड आर मागे मरी बिनु मय हाय न प्रीति ॥<sup>४</sup>

### साहित्यिक आरता

कुनगी की साहित्यिक मायगार उक्त रिन्दु शान्तानुभव से पूजायका प्रमा

१ दोहावली ४०३ ।

२ दोहावली ५१९ ।

३ रामचरितमानस ५।३८ ७ ३, ४ ।

४ कवी २।३८ १ ।

५ कवी २।३७ ।

वित हैं। उनकी दृष्टि में साहित्य रचना का मूल उद्देश्य ही लोकहित साधन है—

“कीरति भनिति भूति भल सोई।

सुरसरि सम सबकर हित होई ॥”

इसीलिए उन्होंने परम्परा से अध्यात्मविद्या तथा तत्त्वज्ञान निरूपण के प्रतिष्ठित माध्यम सस्कृत भाषा को छोड़ कर लोकभाषा ब्रजी तथा अवधी में काव्य रचना की।

सस्कृतज्ञ होते हुए भी दुलभ ‘कुमाव’ का त्याग कर सबसेलभ ‘कामरी’ को अपनाने वाला कवि हृदय ही लोकमानस को प्रभावित कर सकता है—

का भाषा का सस्कृत, प्रेम चाहिए साच।

काम जो आवै कामरी, का ल करै कुमाच ॥<sup>१</sup>

लोककवि की विभिन्नता को ध्यान में रखते हुए उन्होंने अपने पूर्व तथा समकालीन साहित्य क्षेत्र में प्रचलित सभी प्रमुख शैलियों में आराध्य का गुणगान किया। इसके साथ ही प्राचीन परिपाटी के लोगों के परितोष के लिए रामचरित मानस के काण्डों के प्रारम्भ में सस्कृत के श्लोकों की भी योजना की।

वे-शास्त्र की निन्दा करने वाले निबूरा पद्यी सतो तथा प्रेमाख्यानकार सूफी कवियों का रवेया उहे देश के परम्परागत सांस्कृतिक आदर्शों के प्रतिकूल लिखाई पडा। इसीलिए उन्होंने उसका डटकर प्रत्याख्यान किया—

साखी सबदी दोहरा कहि, किहनी उपखान।

भगति निरूपहि भगत कलि, निर्दाहि वेद पुरान ॥<sup>२</sup>

एक स्थान पर तो वे इसी वग के एक ‘अलख’ जगाने वाले साधु को फटकारते और रामनाम जपने का उपदेश देते हुए देखे जाने हैं—

“हम लखि लखहि हमार खलि, हम हमार के बीच।

तुलसी अलखहि का लखै, रामनाम जपु नीच ॥

इन सामान्य विरोधों के बावजूद उत्तरी भारत में राम-कथा उस समय भी व्यापक रूप से कही और सुनी जाती थी। सस्कृत और परिनिष्ठित ब्रज तथा अवधी में ही नहीं ठेठ लोकभाषा में भी स्त्री-मुरूप रामचरित गाकर परिस्थितिया से झुझने के लिए नई शक्ति और नई प्रेरणा प्राप्त करते थे—

१ रामचरितमानस, १।१४ क ६।

२ दोहावली, १६।

३ रामचरितमानस १।१० ख।

४ दोहावली १६।

“स्थाम सुरभि पय विसद् अति, करहि गुनद सब पान ।

गिरा ग्राम्य सियराम जस, गार्वाहि मुनिहि मुजान ॥<sup>१</sup>

किन्तु इससे लोकहृदय में उस एकात्मनिष्ठा की स्थापना नहीं हो पाती थी जो उन्हें राम में अनुरक्त कर उनकी प्रवृत्ति को एक नया मोड़ दे सके। तुलसी को यह देख कर दुःख होता था कि लोग रामायण पढ़ते तो थे, किन्तु आचरण में महामारत से ही प्रेरणा प्राप्त करते थे। उनकी कथनी और करनी में महान् अन्तर था—

रामायन अनुहरत सिख जग मयो भारत रीति ।

तुलसी सठ की को सुने, कलि कुचालि पर प्रीति ॥<sup>२</sup>

लोग परात्पर ब्रह्म के अवतार रावणातक राम में श्रद्धा रखन हुए भी आमुरी प्रवृत्ति और आमुरी शासन से आक्रान्त हो रहे थे। स्वयं तुलसी ऐसा स्थितप्रज्ञ एवं अडिग विश्वासी भी परिस्थिति का इस करालता को दखकर निराश हो चला था—

राम मुजस कर चहुँ गिसि होत प्रचार ।

अमुरन कहू लखि लागत जग अधियार ॥<sup>३</sup>

### लोकनायक तुलसी का सदेरा

अपने समकालीन वैयक्तिक, पारिवारिक, सामाजिक तथा राजनीतिक जीवन में व्याप्त इस अधकार से मुक्ति पाने का एकमात्र साधन तुलसी की दृष्टि में मर्यादा पुण्योत्तम राम की सवतीमात्रेण धारणागति थी। उन्हीं का लोकपावन चरित मानव-जीवन के इन सभी पक्षों का अनुकरणीय आदर्श प्रस्तुत कर निराश, हीनभावग्रस्त और क्लिप्तव्यविमूढ जनमानस में आशा तथा उत्साह का संचार कर सकता था और इस प्रकार आत्मिक विकास के साथ ही सामाजिक उत्थान, तथा राजनीतिक परिवर्तन संघटित करने में वह प्रेरणाप्रद सिद्ध हो सकता था। अपनी वृत्तियाँ में उन्होंने बार बार रामचरित के इस लोकोद्धारक स्वरूप की ओर पाठकों का ध्यान आकृष्ट किया है—

मगल करनि कलिमल हरनि तुलसी कथा रघुनाथ की ॥<sup>४</sup>

१ रामचरितमानस, १।१०ख ।

२ बोहावली, ५४५ ।

३ बरव रामायण, ५।३८ ।

४ रामचरितमानस १।१० ।

रघुबसभूपनचरित यह नर कर्हिहि सुनहि जे गावही ।  
कलिमल मनोमल धोइ विनु श्रम राम धाम सिधावही ॥<sup>१</sup>  
ऐसेऊ कगल कलिकाल म कृपाल तेरे

नाम के प्रभाव न त्रिताप तन दाहिए ।<sup>२</sup>

कृपय कुतक कुचालि कलि, कपट दम पाखण्ड ।

दहन राम गुन ग्राम जिमि, इधन अनल प्रचड ॥<sup>३</sup>

कहने को जहागीर किन्तु वास्तव म नूरजहाँ के शासन मे अपने अन्तिम दिन व्यतीत करने वाले इस महाप्राण सन्त ने उसी निष्ठा के आधार पर मुगल-शासनाज्ञा की उपेक्षा कर एकमात्र सीता को ही "साहिबिनी" माना—

'भरो साहिबिनी सदा सीस पर विलसन ।

देवि । क्या न दास को देखाइयत पायजू ॥<sup>४</sup>

और बड ही दृढ स्वर मे आतनायी मुगलतंत्र के विनाश की भविष्यवाणी की—

'राज करत विनु काज ही, करें कुचालि कुसाज ।

तुलसी ते दसकष ज्या जेहैं सहित समाज ॥

इस प्रकार सर्वग्रामा शासन तंत्र से आत्रान्त लाकजीवन का अन्तरग परिचय प्राप्त करने के बाद ही वे ऐसे रामरसायन के निर्माण म समथ हुए जिसके सबन से राजरायस्न राष्ट्र स्वस्थ हा विघर्मी शासन और सस्कृति से आत्मरक्षा करने मे सफलता प्राप्त कर सका ।

उन्होंने रामभक्ति के ऐसे स्वरूप की प्रतिष्ठा का जिसमे लोकमानस को अधविश्वास, हीनभाव तथा रूढ़िवाद से मुक्त करने का सामथ्य था—

कृपिन दइ पाइअ परो, विन साधन सिधि हाइ ।

सीतापति सनमुख समुक्ति, जो कीजे सुम साइ ॥

नखत मुहूरत जोग बल, तुलसी गनिय न काहि ।

राम भये जत्र दाहिन सबै दाहिने ताहि ॥

और जिसमे कलियुग का सतयुग मे बदलन की क्षमता था—

१ रामचरितमानस, ७।१३०-२

२ कवितावली, ७।७६ ।

३ बोहावली, ५६५ ।

४ वही, ७।१३६ ।

५ बोहावली, ५१६ ।

६ रामान्ता प्रश्न ४।३ ।

कलियुग सम युग आन नहिं, जो नर कर विस्वास ।

गाइ राम गुन गन विमल, भव तर बिनिहिं प्रयास ॥'

जनसामाय मे राममक्ति का प्रचार करने के लिए उन्होंने रामलीला की लोकरजन पद्धति का आश्रय लिया और स्थान-स्थान पर हनुमान मन्दिरा की स्थापना की। रामोपासना में हनुमान तत्त्व को प्रमुखता देकर उन्होंने अध्यात्म साधना के साथ ब्रह्मोपासना का माग प्रशस्त किया और जनमानस में यह भावना बूट बूटकर भर दी कि सभी प्रकार की आपत्तियां से त्राण सकट-मोचन केसरी नान ही दिला सकते हैं—

दुजन का काल सो कराल पाल सज्जन का

सुमिरत हरनहार तुलसी की पीर को ।

सौम्यसुखदायक, दुलारा रघुनायक को

सेवक सहायक है मुवन समीर को ॥'

तुलसी की अगाध निष्ठा और साधना का बल पाकर महावीर हनुमान लोक-दवता बन गये और दशम्यसुत राम लाकब्रह्म। उनके इष्टदेव, जनमत की ता वात ही क्या जनरव तक का आदर करने वाले थे। उन्होंने मात्र लाकध्वनि के आधार पर अपनी अग्नि परीक्षित साध्या स्त्री सीता को भी वनवास दे दिया था—

चरचा चरनि सौ मुनि जानमनि रघुराइ ।

दूत मुख मुनि लोकधुनि घर घरनि ब्रूभी आइ ।<sup>१</sup>

भूठे अघ मिय परिहरा तुलसी स्वामि ससक ।<sup>२</sup>

लोकवय महापुरष राम की भक्तिवीथी को तुलसी ने राजमार्ग के रूप में परिणत कर लिया। यह एसा प्रशस्त तथा निरापत् पथ बन गया जिस पर धना निधन, गृहस्थ विरक्त निगुण-सगुणोपासक, पडे-आपत्, छोटे-बडे समाज के सभी वर्गों तथा स्थितियों के लोग सब समय बेलटके चल सकते थे। उनके गुरुद्व ने इस माग की महत्ता की ओर इगित मात्र किया था—

गुरु कह्या राम भजन नाको

मोहि लम्यो राज डगरा सौ ।

१ रामचरित मानस, ७।१०३ क ।

२ कवितावली (हनुमान बाहुक) छ० १० ।

३ गीतावली, ७।२७ ।

४ दाहावली, छ० १६६ ।

५ विनयपत्रिका, १७३।५ ।

काल प्रवाह में तुलसी की यह मान्यता उत्तरोत्तर प्रतिष्ठित होती गई और आराध्य के प्रति उनके अन्तस्तल से निकले अचना के स्वर लोकहृदय के हार बन गये ।

लाकमानस की मूहमतम प्रवृत्तियों के गहन अध्ययन और लोकजीवन की अन्तर्धाराओं के प्रगाढ परिचय के आधार पर ही भगवान् बुद्ध की भाँति उन्होंने जन-सामाय को लौकिकता तथा आध्यत्मिकता के अतिरेक से बचा कर मध्यममार्गी आचार-पद्धति अपनाने का उपदेश दिया और राम के चरित में उस आदर्श की पराकाष्ठा दिवा कर उनकी भक्ति में ही मानव जीवन की साधकता प्रतिपादित की । निव्यसाकेत के स्थान पर 'रामपुर' की प्रतिष्ठा कर उन्होंने एक प्रकार से आदर्श की अपेक्षा यथाथ को अधिक महत्व दिया था—

घर कीन्है घर जात है, घर छोड़े घर जाइ ।  
तुलसी घर बन बीच रहू, रामप्रेमपुर छाइ ॥

गोस्वामी जी की यह ध्यार्थवादा दृष्टि जीवन के अन्य क्षेत्रों में भी लक्षित होती है । समाज में प्रतिष्ठाप्राप्त उच्च वर्ग के धनीमानी व्यक्तियों को शापक और विषाक्त प्रवृत्तियों के प्रसारक तथा अभावग्रस्त और परिश्रमशाल किसान-मजदूरों को लोकपोषक एवं लोकहित साधक बताकर उन्होंने जिस आपार संवेदनशील हृदय और अलभेदिनी दृष्टि का परिचय दिया है, वह आज की समाजवादी व्यवस्था का मूलाधार कहा जा सकता है । तुलसी का अपना अनुभव इन पक्तियों में कितनी स्पष्टता से व्यक्त हुआ है ।—

अति ऊँचे भूधरन पर, भुजगन को अस्थान ।  
तुलसी अति नीचे सुखद, अन्न ऊँच आ पान ॥

मानवता के लिए इस क्रान्तदर्शी महाकवि का यहाँ सदस्य था और इसी में उसके लोकानुभव की सार्थकता थी ।

## मीराबाई के रामभक्तिपरक पद

वैष्णव भक्ति आन्दोलन की यह एक उल्लेखनीय विशेषता थी कि उसने समस्त पूर्ववर्ती साधना पद्धतियों को आत्मसात् कर श्रद्धा विश्वास पुरस्सर उपासना का नवीन रात्रपथ निर्मित किया, जिसमे शास्त्र अथवा परोक्ष ज्ञान की अपेक्षा अनुभव अथवा प्रत्यक्ष ज्ञान को अधिक महत्त्व दिया गया था। यही कारण था जिससे विभिन्न धर्मों, सम्प्रदायों, जातियों, भाषाओं और आधार-विचार वाले इस विशाल देश के एक छोर से दूसरे छोर तक उसके सिद्धान्तों का समारोह हुआ और कालान्तर में वैष्णवमत लोक धर्म के रूप में प्रतिष्ठित हो सका। अद्वैतियों का ब्रह्मवाक्य, कौशो तथा सहजयानी सिद्धों की गुह्य साधना, नाथ पण्डितों का कायायोग तथा सूफियों की विरहासक्ति सबको यूनानिख मात्रा में भागवत धर्म के इस कालजयी प्रवाह में मयोचित समादर एवं प्रतिनिधित्व प्राप्त हुआ। इसका मुख्य श्रेय स्वामी रामानन्द के उदार दृष्टिकोण, समन्वयवादी विचारधारा तथा युग प्रवर्तक व्यक्तित्व को है। मध्यकालीन निगुण तथा सगुण भक्तिधारा उसी विराट स्रोत से प्रवाहित हुई। नीच-ऊच की भावना का त्याग साधना में स्त्री पुरुषों के समानाधिकार की घोषणा,<sup>१</sup> अथ देवोपासकों के प्रति द्वेष भावना का त्याग,<sup>२</sup> अहिंसा व्रत का पालन<sup>३</sup> जैसे लोकोपयोगी सिद्धान्तों के प्रचार से उद्धाने सामाजिक जीवन में सौहार्द तथा सदाचार के प्रसार का द्वार उन्मुक्त कर दिया। तत्कालीन परिस्थितियों को देखते हुए यह निश्चय ही एक क्रान्तिकारी कदम था। इसी का परिणाम था कि उनके द्वारा प्रवर्तित तथा शिष्य प्रशिष्यों द्वारा सर्वद्वित रामभक्ति और रामनाम मध्यकाल की निगुण तथा सगुण दोनों शाखाओं के अतगत् विकसित विविध सम्प्रदायों में व्यापक रूप से यूनानिख मात्रा में ग्राह्य हुआ।

हिन्दी में वैष्णव भक्ति का प्राथमिक उद्रेक नामदेव की रचनाओं में मिलता

१ वैष्णव मताभ्यामाणकर—स० भगवद्वाचाप, छ० १५०।

२ वही, छ० १५०।

३ वही, छ० १८२।

४ वही, छ० ११३, ११४, ११५, १८२।

है। रामनाम जप का माहात्म्य,<sup>१</sup> राम की भक्तवत्सलता, दशरथपुत्र राजा रामचन्द्र का शरण्य रूप में वर्णन,<sup>२</sup> राम के प्रति कांतासक्ति,<sup>३</sup> रामभक्तों के माला-तिलक तथा मुद्रा-युक्त वेप में निष्ठा,<sup>४</sup> श्रीरग और श्रीराम में अभेद भाव की स्थापना विषयक पद उन्हें आलवारा और श्रीवैष्णव सम्प्रदाय के आचार्यों द्वारा प्रवर्तित रामभक्ति की प्रवृत्त धारा का साधक सिद्ध करत हैं। एक स्थान पर वे 'वैरागी' को सम्बोधित करते हुए रामनाम गान का सवत्प व्यक्त करते हैं। कहना न होगा कि यो तो वीतराग या वैरागी साधको की चर्चा रामानन्द के पूर्व लिखी गयी कृतियों में भी मिलती है किन्तु रामोपासक वैरागियों का एक सम्प्रदाय रूप में संगठन सर्वप्रथम रामानन्द ने ही किया था जिसके फलस्वरूप आगे चलकर 'वैरागी' शब्द मात्र रामभक्त विरक्त सत का बोधक माना जाने लगा। मौलाना रशीदुद्दीन ने 'तज्जिख्तिरतुलफुकरा' में इसकी चर्चा की है।<sup>५</sup> 'दविस्तानुस तवारीख' नामक मध्यकाल के एक अत्य ऐतिहासिक ग्रन्थ में रामानन्द द्वारा स्थापित वैरागी सम्प्रदाय के नामकरण कारण, पूजापद्धति, तीर्थटिन तथा वेप के अलगत तुलसीमाला और तिलक का वर्णन करत हुए कबीरदास को उनमें सर्वाधिक प्रसिद्ध बताया गया है।<sup>६</sup> नामदेव पर स्वामी रामानन्द के सिद्धान्तों का इतना गहरा प्रभाव उनमें किसी स्तर पर निकट सम्पक का व्यजक है। डा० मोहनसिंह ने उनके बीच गुरु शिष्य सम्बन्ध की चर्चा की है और अपनी इस उपपत्ति के

१ नामदेव के हिबो पत्र, पृ० ७६, ११६, १२०

२ वही, पृ० ११८, १६६

३ हिबो को मराठी सतो की बेन, पृ० २५३,

४ वही, पृ० २५५

५ वही, पृ० २५२, २५४

६ वैरागी रामहि गाऊगी-वही, पृ० ११४

७ भागवत सम्प्रदाय, प० बलदेव उपाध्याय, पृ० २५५

८ 'वैराग्य युगल में तलब के मानी होते हैं। यह तारिक बुनिया होते हैं। इनकी इबादत में वह अशमार होते हैं जो विष्णु की तारोळ में कहे जाते हैं। विष्णु के भजाहिर राम और क्रिशन और उहीं की तरह और बूसरे हैं। इनके अशमार को विष्णुपत्र कहा जाता है और विष्णु के ओ मुकद्वबस मुकामात इनसे ममसूब हैं, यहाँ जाते हैं। तुलसी की तसबोह गरबन में लड काते हैं और उसको माला-तुलसी कहते हैं हिन्दू मुसलमान जो भी चाहे इस तुलसी को अस्तियार कर सकता है इन धरागियों में सबसे ज्यारा शहरत कबीरदास को हासिल हुई।

क-दविस्तानुस तवारीख पृ० १५७-१५८

(मुसलमान हुक्मरानों की मजहबो रवाशारी—सय्यद सबाहुद्दीन अब्दुल रहमान, पृ० १५७-१५८ पर उद्धृत)



समर्पन मे स्वामीजी के शिष्य अनन्तानन्द क अन्तेवासी गणेशानन्द द्वारा १५५२ ई० मे मथुरा में लिखी गयी एक पुस्तक का उल्लेख किया है ।<sup>१</sup> अपेक्षित प्रमाणो के अभाव मे रामानन्द को नामदेव का गुरु स्वीकार करने में आपत्ति हो सकती है किन्तु दोनों के प्राय समकालीन होने से रामानन्द ऐसे लोकसंग्रही तथा विचरणशील महापुरुष से नामदेव का सम्पर्क लाभ असंभव नहीं कहा जा सकता ।

परम्परागत वैष्णवभक्ति साहित्य में अद्वैतमूल रामोपासना के तत्त्व परवर्ती निगुणमार्गी तथा वृष्णोपासक भक्तों को रिवध मे प्राप्त हुए । सतों की निगुण रामभक्ति के स्वरूप का विवेचन शोध तथा आलोचनात्मक ग्रन्थों में विस्तारपूर्वक हो चुका है । यहाँ 'गिरिधर गोपाल' की अनयोपासिका मीराबाई की राम निष्ठा पर उनके कुछ नवप्राप्त पदों क प्रकाश में विचार किया जायगा । इसके पूर्व कि उक्त पदों के प्रतिपाद्य विषय का विश्लेषण किया जाय, उनके निर्माण में प्रेरक परिस्थितियों का आकलन कर लेना समीचीन होगा ।

मीरा के आविर्भावकाल तक राजस्थान में नाथपंथ का एकाधिकार समाप्त हो चला था । स्वामी रामानन्द के प्रशिष्य श्रीवृष्णनाथ पयहारी ने अपनी असौ किक सिद्धियों और योगबल से तारानाथ योगी को पराजित कर उसकी रहीं सही प्रतिष्ठा समाप्त कर दी । आमेर के राजा पृथ्वीसिंह ने पयहारीजी का शिष्यत्व ग्रहण कर लिया । पयहारीजी की उपस्थिति से गलता गद्दी मुख्य आचार्यपीठ बन गया । उनके २४ शिष्यों ने उत्तरी भारत मे घूम-घूम कर रामभक्ति के प्रचार-केन्द्र स्थापित किये किन्तु इनका मुख्य कार्य क्षेत्र राजस्थान ही रहा । रामभक्ति में रसिक शाखा के प्रवर्तक अग्रदास और उनक प्रसिद्ध शिष्य भक्तमालकार नाभादास का साधनास्थल जयपुर क निकट रैवासा नामक आचार्यपीठ था । अग्रदास पयहारीजी के शिष्य थे । इनके ज्येष्ठ गुरुभाता कीर्तहनास पयहारीजी के बाद गलता गद्दी के अधिकारी हुए । उत्तरी भारत के रामभक्तों की अधिकांश परम्पराएँ इन्हीं दोनों गद्दियों से सम्बद्ध हैं ।

### मीराबाई और रामानन्द सम्प्रदाय

सोलहवीं शती मे राजस्थान की इस सर्वाधिक सशक्त तथा व्यापक रामभक्ति धारा से मीरा के प्रगाढ़ परिचय के अनेक प्रमाण मिलते हैं । एक स्थान पर वे गुरु रामानन्द का श्रद्धापूर्वक स्मरण करते हुए कहती हैं—

१ हिन्दी की मराठी सतों की देन—डा० विनय मोहन शर्मा पृ० १०५ ।

२ मीरा वृहद् पद्य संग्रह—स० पद्मावती शबनम, पृ० २२२ ।

रामजी पधारे घनि आज की घरी ।  
 आज की घरी वो भाव रो भरी ॥  
 गुरु रामानन्द अर माधवाचार्य' नीमानन्द' विसनहरी ।  
 मीरा के प्रभु हरि अविनासी पशुहि पीवी प्याला प्रेम हरी ॥  
 उपसंख्य साध्य के अनुसार मीरा के आविर्भाव के बहुत पहले ये तीनों महा-  
 पुरुष दिवगत हो चुके थे। अतः इनसे यह निष्कप्य निष्कर्षना कि मीरा ने इस पद  
 में उनके अपने घर पधारने का वर्णन किया है, मुक्ति संगत न होगा। मीरा ने  
 अपनी वृत्तियों में कई स्थलों पर श्रद्धेय पुरुषों, सतगुरु तथा इष्टदेव के स्वप्न दर्शन  
 का वर्णन किया है। उपर्युक्त पद उसी भावना से प्रेरित प्रतीत होता है।  
 मीरा द्वारा स्वामी रामानन्द की गुरु रूप में चर्चा का एक महत्वपूर्ण सूत्र  
 इष्टर प्रकाश में आया है, जिसका आधार डॉ० प्रभात की आमेर क 'अगत  
 शिरोमणि मंदिर' के पुजारी पं० गिरिधारी साल द्वारा दी गयी सूचना है। उसके  
 अनुसार उसम स्थापित गिरिधर की मूर्ति वही है जो मीरा की पमहारी श्री-  
 कृष्णदास के शिष्य देवाजी से प्राप्त हुई थी और उमे देवाजी को स्वयं स्वामी  
 रामानन्द ने दी थी। देवानन्द और स्वामी रामानन्द के बीच तीन पीढ़ियों का  
 अन्तर है—रामानन्द, अनन्तानन्द, श्रीकृष्णदास पमहारी, देवानन्द। इस दीर्घ-  
 कालिक व्यवधान को देखते हुए रामानन्द का देवाजी को स्वयं मूर्ति प्रदान करना  
 सामान्यतया समभव नहीं जान पड़ता। मेरी धारणा है कि उक्त सूचना केवल इस  
 रूप में विषयसनीय मानी जा सकती है कि देवाजी को रामानन्द द्वारा समाहृत  
 'गिरिधर' की मूर्ति गुरु परम्परा से प्राप्त हुई थी। रामानन्द सम्प्रदाय में  
 श्रीकृष्ण की प्रतिष्ठा कितनी थी, इसका अनुमान श्री वैष्णव-मताब्ज भाटकर ने  
 कृष्ण जन्माष्टमी पत्र' के विधि विधान की व्याख्या तथा उनका प्रशिष्य और

- १ ये ब्रह्म भाष्यकार सायणाचार्य के ज्येष्ठ भ्राता थे—मीराबाई—डॉ० प्रभात,  
 पृ० १६६।  
 २ ये स्वामी रामानन्द के समकालीन सत थे।  
 ३ वही, पृ० १६५-१६६।  
 ४ मीराबाई (डॉ० प्रभात), पृ० १६०।  
 एक बार देवाजी गाड़ी में बैठकर उस मूर्ति को ले जा रहे थे। रास्ते में  
 बिस्तीर में ठहरे। वहाँ मूर्ति स्थापित की। मीरा वहाँ थीं। उन्होंने वाली  
 को भेजा। मीरा उस मूर्ति को महलों में ले गयीं।  
 ५ वैष्णव मताब्ज भाटकर (सं० भगवदाचार्य) श्रीकृष्ण जन्माष्टमी-पत्र प्रकरण  
 पृ० १२८-३०।

देवाजी के गुरु के श्रीकृष्णदास नाम से ही लगाया जा सकता है।

देवाजी चित्तौडगढ़ के पुरोहित थे। मीरा स उनकी भेंट चित्तौड में ही हुई थी। वे अपने समय के प्रसिद्ध सत थे। नाभादास ने 'देवाहित सित केस प्रतिज्ञा राखी जन की' लिखकर उनके भगवत्कृपापात्र होने का संकेत दिया है। प्रियादास ने इस सूत्र को पल्लवित कर चित्तौडगढ़ चतुर्भुजा जी द्वारा अपने केशो को श्वेत करने और राणा को दशन न करने की आज्ञा दण्डस्वरूप देने की घटना का उल्लेख किया है। चित्तौड पर विजय के बाद महाराज मानसिंह गिरिधर की यह मूर्ति आमेर ले आये और महल में भीतर मंदिर बनवा कर उसे स्थापित कर दिया। मानसिंह अग्रदास के शिष्य थे अतः गुरु परम्परा में समाहत श्री विग्रह की सेवा-पूजा के लिये उन्होंने अग्रदास जी के गुरुभाई और उस मूर्ति के पुराने पुजारी देवाजी को चित्तौड में आमेर से बुला लिया।<sup>१</sup>

रामानन्द सम्प्रदाय से मीराबाई का सम्बद्ध होने का एक अन्य स्रोत उनके द्वारा सत रैदास का अनेक स्थलों पर गुरु रूप में उल्लेख भी है—

मीरा ने गोविन्द मिल्या जी गुरु मिल्या रैदास।

म्हारो गुरु रैदास है, सजनी म्हारो है।<sup>२</sup>

गुरु मिल्या रैदास जी दीनी ग्यान की गुटकी।

मीरा सरणै राम क म्हाने गुरु मिलिया रैदास।<sup>३</sup>

कुछ समालोचक काल के आधार पर मीरा का रैदास से दीक्षा लेना संभव नहीं मानते और जिन पदों में ऐसी पंक्तियाँ हैं उन्हें प्रक्षिप्त घोषित करते हैं। मीरा की सगुण तथा रैदास की निगुण साधना पद्धति में सैद्धांतिक विरोध बता कर वे अपने मत का समर्थन करते हैं। किंतु थोड़ा ध्यान देने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि मीरा तथा रैदास की रचनाओं में परम्परागत सत मत की हठयोग, भाव-भक्ति, अनुभव पथ, सगुण-निराकार तथा विष्णु के विभिन्न अवतारों के नाम आदि के प्रति समान रूप से जो आस्था व्यक्त की गयी है और सगुण साकाराश्रित भक्ति के प्रतिपादक होते हुए भी सगुण निगुण से परे प्रियतम की जिस अलौकिक छवि का वर्णन उनकी रचनाओं में मिलता है, वह साम्प्रदायिक कृष्णोपासकों की अपेक्षा निगुणिया सतों तथा सूफी फकीरों की प्रेमपद्धति के

१ श्री भक्तमाल—रूपरत्ना पृ० ४३०।

२ मीराबाई—डा० प्रभात पृ० १६५।

३ मीरा बृहद् पत्र सग्रह—पद्मावती शबनम पृ० ८।

४ मीराबाई की शब्दावली और जीवन, बेलवेडियर प्रेस पृ० २०।

५ मीरा बृहद् पत्रावली, पद्मावती शबनम पृ० ६।

अधिक निकट है । ऐसी स्थिति में परम्परया प्रतिष्ठित रैदास और मीरा के गुरु-शिष्य सम्बन्ध को सहसा अमाय नहीं ठहराया जा सकता ।

मीरा का नव प्राप्त निम्नांकित पद इस समस्या के समाधान में सहायक हो सकता है—

आजि म्हारे पाँवणीया वैरागी जी । जनम मुघारण सतगुरु आया जी ॥  
 आजि सखि म्हारे मुपनौ री आयो । सत बघाई कोई ल्याया जी ॥  
 ऊँची खडि हू जोवण लागी । म्हारा सतगुर नजर पराया जी ॥  
 प्रेम के धारे उतरत देखा । आण पिया राजन आया जी ॥  
 भगवामा कपडा कर में डोरी ॥ दरसण की बलिहारी जी ॥  
 भाव भगति सूं करूं रसोई । प्रीति की झारी भर त्याऊँजी ॥  
 आज सखी हूँ तो हरब फिरू छूँ । सतगुर काई म्हाने बगसे जी ॥  
 शील सतोप क्रिपा करि दीहा । मो उर आनद कीम्हा जी ॥  
 पण परसाधी म्हाने सतगुरजी दीन्ही । मो उपरि किरपा कीन्ही जी ॥  
 प्रीति करे न राम पद रज लेस्यु । म्हारो सीस चरणा सर देख्यु जी ॥  
 चरण घोह चरणामुल लेस्यु । म्हारा पाप बिनै होह जासीजी ॥  
 कर जोड्या रामजी अरज करूं छूँ । म्हारो जनम मुघारो सतगुर स्वामीजी ।  
 मीरा कहै प्रभुहरि अविनासी । जनम-जनम की मैं दासीजी ।<sup>१</sup>  
 इससे कुछ महत्वपूर्ण तथ्य प्रकाश में आये हैं—

- १ मीरा ने स्वप्न में वैरागी वेप मे सतगुर का दर्शन किया ।
- २ उनका अवतरण प्रेम धारा के माध्यम से हुआ ।
- ३ मीरा ने भाव भक्ति रूपी भोजन तथा प्रीतिजल से उनका स्वागत सत्कार किया ।

४ सद्गुरु ने प्रसन्न हो उन्हें शील सतोप का वरदान और टैक निमाने का आशीर्वाद प्रसाद रूप में दिया ।

५ मीरा ने चरणोदक लिया जिससे सारे पाप नष्ट हो गये ।

६ प्रस्थान करते समय गुरु रूप में पधारें हुए रामजी से मीरा ने जीवन मुधारने के लिये हाथ जोड़कर प्रार्थना की और उनके साथ अपने अम-अमान्तर के सम्बन्ध का स्मरण दिलाया ।

इससे यह स्पष्ट होता है कि मीरा ने स्वप्न मे जिस सतगुरु का दर्शन किया वह वैरागी वेप में था । उसका स्वागत सत्कार भी उन्होंने रामभक्तों की

१ भारतीय विद्या मन्दिर (बीकानेर) के हस्तलेख संग्रह से सकलित ।

परम्परानुमोदित पद्धति से किया।<sup>१</sup> यह सद्गुरु 'रामजी' रहे हों, 'रामानन्द' या रैदास, कोई फर्क नहीं पडता। इसमें देशकाल का कोई प्रतिबन्ध नहीं है।<sup>२</sup> अयन 'ब्रजनाथ' के साथ मीरा ने अपने 'स्वप्न-परिणय' का उल्लेख भी किया है—

माई म्हातो सुपना मां परण्यां दीनानाथ ।

छप्पन कोट्या जन पघार्यां दूल्हो सिरी ब्रजनाथ ॥

मुपना मां म्हातो परण गया पावां अचल मुहाग ।

मीरा रो गिरधर मिल्या दु ख जनम जनम रो भाग ।<sup>३</sup>

रामभक्ति के प्रवर्तक आलवारों तथा आचार्यों द्वारा सेवित श्रीरगनाथ ऐश्वर्या-कुओं के इष्टदेव थे। साम्प्रदायिक साहित्य में इनका मुक्तकण्ठ से गुणगान हुआ है। श्रीरगनाथ लक्ष्मीनारायण के प्रतिरूप हैं।<sup>४</sup> मीरा का एक पद इनकी प्रशस्ति में मिलता है—

श्रीरगजी की नार देखो घाने साँवरो सेठ बुलावे ॥

आज की रन वसाँगाँ समदन हरदे ग्यान विसैखो ।

कोकिल भास भरे लक्ष्मी जी मधुर वैन गवरी को ॥

मीरा कहै मिथुलायन घोसर धय भाग केवरी को ॥<sup>५</sup>

श्रीरगनाथ की साम्प्रदायिक सगुण रामभक्ति परम्परा के बाहर भी, अपार प्रतिष्ठा थी। यह मीरा के उपयुक्त पद के अतिरिक्त नामदेव के निर्मांकित पद से भी विदित होता है—

१ वैष्णव मताञ्ज भाष्कर—श्लोक १५२ ।

२ वैष्णव भक्तों में 'स्वप्नगुरु' की परम्परा प्रचलित होने के अनेक प्रमाण मिलते हैं। उन्नीसवीं शती के प्रसिद्ध रामभक्त महारमा बनाबास की अयोध्या में साधन करते हुए गोस्वामी तुलसीदास ने स्वप्न में दर्शन बेकर रामकाव्य रचना की प्रेरणा भी थी। इस घटना का विवरण वेते हुए ये लिखते हैं—

मिले हैं स्वप्न माहि कृपा करि दीने वर बड़पो अनुराग सुने सुम बानी है ।  
बनाबास गुर भाव माने है गोसाईं विधे ताने मति मेरी विनुवाम ही विकानी है ।

—उभय प्रबोधक रामायण, गुरुचण्ड पृ० २१

३ मीरा पदावली—(बाकोर प्रति) पद्य ३६ ।

४ तुलसीदास ने भी भगवान श्रीरग का आदरपूर्वक स्मरण किया है और उन्हें राम का प्रतिरूप माना है—

बार बार बर माँगउ हरपि देहु श्रीरग ।

पद सरोज अनपायनी भक्ति सदा सतसग ।

—रामचरितमानस, उत्तर० १४ (ख)

५ रा० शो० स० चौपासनी जोधपुर, हस्तलेख सख्या—१०५७ ।

मैं बहुरो मेरा राम भतार । रचि रचि ताकळ करळें सिंगार ॥  
 भले निदळ भले बदळ लोगु । तनु मनु राम पियारे जोगु ॥  
 वाद विवाद काटू सिठ न कीजे । रसना राम रसायन पीजे ॥  
 असतुति निंदा करे वरु कोई । नामे श्रीरग भेटल सोई ॥<sup>१</sup>

श्रीरग अथवा राम क प्रति नामदेव की यह आसक्ति मीरा और कबीर के सद्रिपयक उद्गारों के सवषा मेल में हैं ।

मीरा के रामभक्ति सम्बन्धी पद प्रतिपाद्य विषय के विचार से निम्नांकित शीर्षकों में रखे जा सकते हैं—

१ रामचरित २ रामकी भक्तवदसलता ३ आरम प्रबोधन ४ रामशरणागत  
 ५ कैकर्य निष्ठा ६ रामभजन ७ रूपासक्ति ८ माधुर्य भाव ९ विरह निवेदन ।

आलोच्य पदा का अनुशीलन करने से यह विदित होता है कि मीरा के अठ-  
 र्जगत में राम के प्रति गूढ आसक्ति थी जो समय-समय पर विभिन्न प्रसंगों और  
 विविध रूपों में व्यक्त होती रही । वैष्णवभक्ति के जो सत्कार उहे पितृगृह  
 मेढता में चतुभुज विष्णु के अनमोपासक अपने बाबा दूदाजी से प्राप्त हुए थे ।  
 उनकी प्रेरणा से वैध-य और राणा द्वारा दी गयी घोर यज्ञणाओं को झेलते हुए  
 वे सत्सग, पूजा और कीर्तन में लीन रही । भाव समाधि में परम तत्त्व से एका-  
 त्मता स्थापित कर लेने पर श्रीरग, राम, और गिरिधर गोपाल का बाह्य  
 स्वरूपगत भेद जाता रहा । उनके पदों में राम, रघुवर और रघुनाथ के साथ  
 गिरधरनागर गोविन्द, श्याम और हरि के अभेद भाव से उल्लेख का मही रहस्य है ।

मीरा के कृष्णभक्ति काव्य में, आराध्य को छोड़कर, कृष्णकथा के अन्य  
 किमी का पात्र नाम नहीं आया है, यहाँ तक कि राधा का भी नहीं । किंतु राम-  
 भक्ति विषयक उनकी रचनाओं में राम, सीता, और लक्ष्मण के साथ रावण तथा  
 मदीदरी की भी चर्चा है । यह इस बात का प्रमाण है कि कृष्णोपासना में एकात्मिक  
 भाव को महत्व देने हुए भी रामभक्ति के क्षेत्र में वे उसकी परम्परानुमोदित  
 दार्शनिक मान्यताओं तथा लोकसप्रही प्रवृत्ति की रक्षा में सजग रही हैं । तत्त्व-  
 त्रय—ब्रह्म जीव तथा जगत् के प्रतीक राम, लक्ष्मण और सीता के प्रति श्रद्धा की  
 अभिव्यक्ति एव विश्व परितापी रावण की कदर्यना इसी का द्योतक है ।<sup>२</sup> ●

१ नामदेव के हिंदी पद—स० ४१ ।

२ द्रष्टव्य—मीराबाई के रामभक्तिपरक पद (परिशिष्ट) ।

## रामभक्ति साधना में योग-तत्त्व

योग अध्यात्म साधना का एक अनिवार्य तत्त्व है। ज्ञाता तथा श्रेय अथवा साधक एव साध्य का तादात्म्य उसके अभाव में हो ही नहीं सकता। यही कारण है जिससे विश्व की सभी धर्म साधनाओं तथा आस्तिक दर्शनों में उसका महत्त्व स्वीकार किया गया है और उनकी अध्यात्म-धर्मा में किसी-न किसी रूप में उसको ध्याति पायी जाती है। भारत की वैदिक तथा अवैदिक दोनों प्रकार की विचार धाराओं से प्रभावित शैव, शाक्त, वैष्णव, बौद्ध जैन आदि मतों ने योग साधना के विभिन्न तत्त्वों को विविध रूप में अपनाया है। तात्पर्य यह कि भारतीय अध्यात्म चेतना अनादि काल से योग के प्रकाश-स्तम्भ से प्ररपक्ष अथवा परोक्ष रूप में पथ-निर्देश प्राप्त करती रही और अपने दीर्घकालीन इतिहास के किसी भी युग में उसकी उपेक्षा न कर सकी। यह उसके सर्वानिर्णायी प्रभाव का ही परिणाम था कि त्रिकाण्ड साधना के सभी अंगों ने उसे अपना कर अपनी प्रतिष्ठा बढ़ाई और कर्मयोग, भक्तियोग तथा ज्ञानयोग के प्रवाह से सम्पूर्ण भारतीय सस्कृति आप्लावित हो गयी।

मध्यकालीन वैष्णवमत में भक्ति को सर्वोपरि मानकर कर्म तथा ज्ञान को उसका साधन स्वीकार किया गया था। ज्ञान प्राप्ति का प्रमुख उपादान होने से योग भी एक परिसीमित साधन के रूप में उसमें स्थान पा सका। परिसीमित इसलिये कि योग का स्वतंत्र अथवा ग्राह्य मानकर चलने वाले योगिनी-कौल-मतानुयायी तथा सहजयानी एवं वृक्षयानी बौद्ध सिद्धों द्वारा धर्म के क्षेत्र में फैलाये गये अनाचार और पाखण्ड से समाज में निरोहित होनी हुई धर्म भावना का ये वैष्णव भक्त प्रत्यक्ष अनुभव कर चुके थे। गोरक्षनाथ द्वारा प्रवर्तित नाथ-पथ ने आरम्भ में अपने उच्च भौगिक आत्माओं से इस पतनो-मुख स्थिति को बहुत कुछ संभाला था। गोरक्षनाथ के योग में हठयोग और राजयोग दोनों सम्मिलित थे। किन्तु परवर्ती नाथ सम्प्रदाय में हठयोग का एकाधिकार सा हो गया। वह ध्यान, धारणा तथा समाधि के अत्यन्त उपादेय तत्त्वों से विरहित हो गया, जो नाथ साधना के लिये उपयुक्त आधार प्रस्तुत करते थे। धमत्कार प्रदशन में फँस-

कर वे योग शक्ति का प्रयोग लोक सम्मोहन के लिये करने लगे । इससे समाज में योग के प्रति व्याप्त श्रद्धा का स्थान भय और आतंक में ले लिया । इस प्रकार मध्यकाल के आरम्भ में योग-मूलक सार पूर्ववर्ती सम्प्रदाय अपने आदर्शों से गिर कर निर्जीव हो गये थे । उनमें उस चेतना तथा स्फूर्ति प्रदायिनी शक्ति का स्पन्दन समाप्त हो चला था, जो इस्लामी शासन तथा सस्कृति के प्रबल आक्रमण का प्रतिरोध करता और पतनोन्मुख समाज का उपयुक्त मार्ग-दर्शन कर नवीन आशाकामनाओं का संचार करता ।

वैष्णवभक्ति आन्दोलन के प्रथम उदय के समय तक प्रतीत होता है कि इन दुबलताओं के बावजूद समाज में योग-साधना को पर्याप्त समादर प्राप्त था । संभव है, इसका कारण उस काल तक पर्याप्त सत्यता में उच्चकोटि के योगियों की उपस्थिति रही हो, जिनके विचारों तथा आचार-यथहार से समाज का बृहदश आध्यात्मिक प्रेरणा ग्रहण करता रहा हो ।

उत्तरी भारत में वैष्णव भक्ति आन्दोलन के पुरस्कर्ता स्वामी राघवानन्द और उनके लोक विभ्रत शिष्य स्वामी रामानन्द की उपलब्ध रचनाओं से यह पता चलता है कि उन्होंने अपने युग में लोक धर्म के रूप में प्रचलित नाथ सम्प्रदाय की योग प्रवृत्ति का सत्कार कर रामभक्ति साधना में उसे महत्वपूर्ण स्थान दिया ।

### आरम्भिक रामभक्ति काव्यों में योग

रामभक्ति साधना में योग तत्त्व का समावेश सस्कृति में रचित आरम्भिक रामभक्ति काव्यों में ही हो गया था । इसका विस्तृत माक्ष्य भृशुण्डि रामायण में उल्लेख है । आचार्य रामानुज द्वारा प्रवर्तित श्रीवैष्णव सम्प्रदाय ने अतद्यत विद्वत्-सिद्ध भक्ति-परक रामकथा नाट्यों में भृशुण्डि रामायण प्राचीनतम है । इसके पूर्व खण्ड में सीता' को योगिनी परमाकला कहा गया है,<sup>१</sup> लक्ष्मण को यागी के रूप में प्रस्तुत किया गया है, ज्ञानयोग की महिमा प्रतिपादित है,<sup>२</sup> यागियों की वैराग्यवृत्ति का राम के चरित्र में उत्कर्ष दिखाकर राम के वैराग्य गुण का वर्णन किया गया है,<sup>३</sup> योग और तंत्रों में मान्य 'सहजा शक्ति' के ध्यान का

१ भृशुण्डि रामायण, पूर्व खण्ड ४७।४९ ।

२ वही, ५४।१८ ।

३ वही, ४१३।५७ ।

४ वही, ४१९ ।



उसके पश्चिम खण्ड में योग, कर्म और ज्ञान साधनाओं में योग श्रेष्ठता प्रतिपादित है।<sup>1</sup> उत्तर खण्ड में ब्राह्मण कर्मों के द्वारा शरीर और उसके बाद मानसी भक्ति या मानसी सेवा का विधान है।<sup>2</sup> इतना उल्लेख किया गया है कि सहस्रार-भेदन का भी उल्लेख किया गया है। मूलक ग्रंथ होने के कारण इसमें रचयिता ने योग के मूल आधार को उसकी स्वमत अनुकूल व्याख्या की है। उसने योग के दो भेद किये हैं—प्रायश्चित्त और पराश्रय। स्वाश्रय योग ज्ञान है और पराश्रय योग भक्ति। समत्व की साधना का सूत्र है। यह समत्वयोग ही महायोग है।<sup>3</sup> रामायण पर शाक्त तंत्रों तथा महायान बौद्ध धर्म की परवर्ती शाखाओं का प्रभाव पड़ा है। सीता को तारा देवी से अभिन्न माना गया है। यह भी राम भक्ति का ही एक मुख्य उपजीव्य है। इसमें यह स्पष्ट हाता और योग साधनाओं का समावेश रामभक्ति धारा में बहुत पहले ही हुआ है।

राम रामायण मुख्यतः वेदान्त का प्रतिपादन करता है किंतु इसमें भी शाक्त तत्त्व पर्याप्त रूप में विद्यमान हैं। मुनि अगस्त्य ने राम को गंधु को लक्षण बनाये हैं, वे सबके सब योगियों के हैं। इस लक्षण में गुणा का भी उल्लेख है। यहाँ निर्विवाद रूप से योग के आठ अंगों का उल्लेख किया गया है। अगस्त्य मुनि कहते हैं—‘सत्संग में जो लोग सम्पन्न हो जायें, सृष्टि रहित, पुत्रवित्ति की इच्छाओं से रहित इन्द्रियां करने वाले, शांतचित्त, आपके भक्त, सम्पूर्ण कामनाओं से शून्य, इष्ट की प्राप्ति में समान रहने वाले, सङ्गहीन, समस्त कर्मों का त्याग करने, सवदा ब्रह्म परायण रहने वाले, धर्म आदि गुणों में सम्पन्न तथा जो ज्ञान उसी में मग्न रहनेवाले होते हैं, वे ही साधु हैं। बालकाण्ड

६१४।

पश्चिम खण्ड, पृष्ठ ६८।

उत्तर खण्ड, पृ० १६।

पृ० २१।

खण्ड रामायण, उत्तर खण्ड, पृ० २१।

(सीता सहस्रनाम) पृ० ४६।२६।

राम रामायण, अरण्य काण्ड, श्लोक ३६ ३६, पृ० १२०।

के आरम्भ में अपने अवतार की घोषणा करते हुए भगवान् स्वयं सीता को 'योगमाया' कहकर सम्बोधित करते हैं।<sup>१</sup> अरण्य काण्ड में भगवान् राम, लक्ष्मण को मोक्ष के साधन का उपदेश देते हुए कहते हैं—ब्राह्म और आंतरिक शुद्धि रखना, सत्कर्मों में तत्पर रहना, मन वाणी और शरीरिक सयम करना, विषयो में प्रवृत्ति न होना" ज्ञान प्राप्ति के साधन हैं। ये विशेषताएँ योग साधना के अटगत् आती हैं। इसी क्रम में आगे चलकर उन्होंने स्पष्ट कहा है—जो पुरुष मेरी सेवा में अनुरक्त-चित्त, निर्मल हृदय, शांतात्मा, विमल ज्ञान सम्पन्न और मेरे परम भक्त योगिजना का सग अनन्य बुद्धि से मवदा उनकी सेवा में तत्पर रहकर करता है, मुक्ति उसके करतलगत रहती है।<sup>२</sup> उत्तरकाण्ड में लक्ष्मण का गान का उपदेश देते हुए भगवान् राम ने ध्यान और समाधि योग की उत्कृष्ट स्थितियों का उल्लेख किया है। उन्होंने लक्ष्मण को समझाया है कि आरम्भ में तन करनेवाले पुरुष को चाहिये कि एकांत देश में इन्द्रिया को उनके विषयो से हटाकर और अत करण को अपने अधीन करके बैठे तथा आत्मा में स्थित होकर और किसी साधन का आश्रय न लेकर शुद्ध चित्त हुआ केवल गान दृष्टि द्वारा एक आत्मा की ही भावना करे। < X X समाधि प्राप्त होने के पूर्व एमा चित्तन करे कि सम्पूर्ण चराचर जगत् केवल ओकार मात्र है। इसी काण्ड में माता कौशल्या को उपदेश देते हुए भगवान राम ने मोक्ष प्राप्ति के साधन रूप 'कर्मयोग', 'ज्ञानयोग और 'भक्तियोग' का उल्लेख किया है। भक्तियोग के सम्बन्ध में उन्होंने कहा है कि जिस प्रकार गंगाजी का जल समुद्र में लीन हो जाता है उसी प्रकार जब मनोवृत्ति मेरे गुणों के आश्रय से मुझ अनंत गुणधाम में निरन्तर लगी रहे तो वही मेरे निगुण भक्तियोग का लक्षण है।<sup>३</sup> इस प्रकार अध्यात्म रामायण से योग साधना के तत्वों को महत्त्व देने के अनेक प्रसंग उद्धृत किये जा सकते हैं। यह अवश्य है कि अध्यात्म में 'योग' के तात्त्विक रूप—चित्त को शुद्ध, विकार रहित, द्वाद्वातीत और समत्वबोधयुक्त करनेवाले स्वरूप—को ही महत्त्व दिया गया है।

१ अ० रा० बालकाण्ड, सर्ग २, श्लोक २८, पृ० २७।

२ अध्यात्म रामायण, अरण्यकाण्ड, सर्ग ४, श्लोक ३३।

३ अध्यात्म रामायण, अरण्यकाण्ड, सर्ग, ४ श्लोक ५५।

४ वही उत्तर काण्ड, सर्ग ५, श्लोक ४६-४८।

५ अध्यात्म रामायण उत्तर, काण्ड सर्ग ७, श्लोक ६४, ६५।

अध्यात्म रामायण के वात् रामभक्ति परम्परा में साधना-तत्त्व एव पूजा विधि की दृष्टि से 'अमरत्य सहिता' एक महत्वपूर्ण ग्रन्थ है। इसमें परात्पर तत्त्व का ज्योति रूप में ध्यान करने का उल्लेख है।<sup>१</sup> सत्शिव सहिता में कणिका युक्त सहस्रार ताम्र महापद्म के मध्य सीता सहित (शक्ति रूप सीता) राम के रत्न सिंहासन पर स्थित होने की बात कही गयी है और यह भी बताया गया है कि राम के इसी रूप का ध्यान रामभक्तों के लिये विहित है। 'सत्शिव सहिता' उपलब्ध नहीं है, किंतु इगका कुद्ध अश रामचरणवास जी ने 'रामनवरत्नसार सग्रह' में उद्धृत किया है। ऐसा पतीत होता है कि जिनना अश रामभक्तों के लिये अत्यंत महत्वपूर्ण था वह स्मृति परम्परा में जीवित रह गया। इन माध्यमों से यह प्रमाणित होता है कि रामभक्ति साधना एव तत्सम्बन्धी साहित्य में तत्र एव योग साधना के तत्त्वों का समावेश हिंदी रामभक्ति की परम्परा के आरंभ होने से पहले ही हो चुका था और रामभक्तों के सामने उनके उपजीव्य ग्रन्थ पढ़ने से विद्यमान थे।

### साम्प्रदायिक रामभक्ति काव्य में योग

भक्ति साधना का उद्भव दक्षिण के तमिल प्रदेश के आलवार भक्तों से स्वीकार किया गया है। इन भक्तों में गठतोप आलवार को रामभक्त अपना प्रथम आचार्य मानते हैं। इनसे पूर्व चार आलवार विष्णु के उपासक थे। 'शठकोर' का तमिल नाम 'नम्म आलवार' है। नम्म आलवार ने 'आमा की उपलक्षि के चिय योगसाधना का महत्त्व स्वीकार किया है। उनका कहना है कि आत्मा अनिर्वचनीय तत्त्व है जिसे योग द्वारा ही पहचाना जा सकता है। नम्म आलवार ने ही 'सहस्रगीति' की रचना करके सत्रह पहल रामभक्ति को साम्प्रदायिक आधार प्रदान किया था। नम्म आलवार को मधुर भक्ति का प्रवर्तक माना जाता है। इससे प्रकट है कि मधुर भाव की भक्ति का साथ ही योग को उसमें समाविष्ट किया गया था। इसी परंपरा में आगे चलकर राघवान् दृष्ट। इहाँ उत्तर भारत में थाकर रामभक्ति का प्रचार किया। राघवान् की विचार-धारा पर नाययोग का प्रभाव स्पष्ट है। इधर स्वामी राघवान् रचित मिद्धोत्त पत्र-

१ अमरत्य सहिता पत्र ८६।

२ सत्शिव सहिता (रामनवरत्नसार सग्रह में उद्धृत)।

३ A History of Indian Philosophy Vol III S N Das Gupta  
Page 80

मात्रा' नामक एक छोटी-सी पुस्तिका दान घाटी, गोवर्द्धन के हनुमान मंदिर के महंत एक रामानुज सम्प्रदाय के साधु श्री रामशरणदाम जी से प्राप्त हुई है। पुस्तिका नागरी प्रचारिणी समा, काशी मे सुरन्तित है। इसकी पुष्पिका में लिखा है—“इति श्री राघवानन्द स्वामी की सिद्धांत पंचमात्रा संपूर्ण” यह पुस्तिका राघवानन्द के समय की नहीं है। हमने कबीर का उल्लेख है। किंतु यह निश्चय ही उन्ही की साम्प्रदायिक परम्परा के किसी साधु की रचना है। इसके अनुसार स्वामी राघवानन्द का साधना माय योग और प्रेम का समन्वित रूप है जो सनत्कुमार आदि ब्रह्मा के चार मानस पुत्रों द्वारा चलाया गया था।

सनक सनन्दन सनत्कुमार । ओग चलायो अपरमपार ॥

प्रेम सुन सनकादिक चार गुरु भाई । डड कमण्डल जोग चलाई ॥

पीता मे राखे जोगेशुर मतबाला । उपजे जान ध्यान प्रेम रस प्याला ।<sup>१</sup>

इस पुस्तिका में सिद्ध होता है कि राघवानन्द की योग-माधना में पूण गति थी। इसमें 'सुन' 'गगन' 'झुनकार' (अनाहन नाद) आदि योग सम्बन्धी पारिभाषिक पदा का भी प्रयोग हुआ है। इसका रचयिता हठयोग की प्रक्रिया और उद्देश्य दोनों से पूण परिचित है। वह कहता है—

चंद्र सुरज जमो असमांत तारा मडल भये प्रकास ।

अधुन जोगी यह झनकार ॥

सुन गगन मे ध्वजा फलाई, पुछो सबद भयो प्रकासा ।

सुन लो सीधो सबद का वामा ।<sup>२</sup>

नामादास की परंपरा में वैष्णवदास के शिष्य मिहीलाल (अनुमानत १७वां शती में विद्यमान) ने अपने 'गुरु प्रकारी' नामक ग्रंथ में राघवानन्द को 'अधून वैषधारी' बताया है—

धनि धनि सा मेरे भाग श्रीगुरु आये हैं ।

श्री अबधून वैष को धारे राघवानन्द सोई ।

तिनके रामानन्द जग जाने कलि कल्याण मई ॥

इसमें भी राघवानन्द पर योगमत के गहरे प्रभाव की सूचना मिलती है।

राघवानन्द के शिष्य और उत्तरी भारत में रामभक्ति के उद्भावक स्वामी रामानन्द की जो हिंदी रचनाएँ प्राप्त हुई हैं, उन्हें देखने से प्रतीत होता है कि ये योगविद्या में पारंगत थे। 'रामरक्षा' नामक अपनी छोटी सी रचना में

१ रामानन्द की हिंदी रचनाएँ, परिशिष्ट, पृ० ४२ ।

२ वही पृ० ४४ ।

उन्होंने चराचर में व्याप्त श्रीनाथ निरजन तैव को नमस्कार किया है। उनकी रचनाओं से कुछ ऐसे पद नीचे उद्धृत किये जा रहे हैं जो योग मत के गहन ज्ञान के साक्षी हैं—

रामरक्षा

समदिष्टि सम धर आणी प्राण आन ।  
उदान व्यान मिलि अनहद शब्द की बर पाई ॥

क्षिल मिला ज्योति रणकार क्षलकता रहे,  
नाद बिंद मिल भया रगरेला ।

× × ×

निरति सो निरति मिनि निरति लागी रहे,  
सुरति सँ भुरति मिलि सुरति आवै ।

× × ×

चित्त सो चित्त मिलि चित्त चेतन भया,  
उनमुनी तिष्टि सो भाव देखै ।

× × ×

कुण कुणी रणरणी क्षुमा क्षुरमी नाद,  
सुपमना काछके साज साजा ।

चाचरी भूचरी पेचरी अगोचरी उमुती,  
पाँच मुदा साधते सिद्ध राजा ।

रामानन्द की यह योग साधना उनकी भक्ति साधना का अग मात्र थी। अपने 'भगति जोग ग्रन्थ' में वे कहते हैं कि भक्ति योग के लिये सबसे पहले सब कुछ त्याग कर हृद वैराग्य धारण करना चाहिये और इष्टदेव के प्रति पूण विश्वास प्राप्त करना चाहिये। इन्द्रियो पर विजय प्राप्त करना चाहिये फिर चाहे घर में रहे चाहे बनवास करे।<sup>१</sup> माया-मोह, आशा-तृष्णा कण्ठ-कामिनी को त्याग कर समचित्त होकर अनन्य भाव से निरजन देव की मानसी पूजा करनी चाहिये। इस मानसी-पूजा-विधि की आर सकेत करते हुए वे कहते हैं—

ग्यान दीप ल आरती उतारे । घट अनहद सम्द उचारे ॥

तन मन सकल अरपन करहो । दीन होइ फुनि पायन परहो ॥

१ तुलसीदास ने भी प्रवारातर से इसकी पुष्टि की है—

घर कीहँ घर जात है, घर राखे घर जाय ।

तुलसी घर बन ओध रह, रामप्रेमपुर धाय ॥

ज्यु पतिश्रता रहै पीष पासा । यू माह्वि के डिग रहै दासा ॥

कोउ देस भूषि मति जावो । पतिवरताऊ पति ले निरबावो ॥

स्पष्ट है कि श्री रामानन्द ने योग को वैराग्य वृत्ति एवं समचित्तता प्राप्ति के लिये आवश्यक माना था और आराध्य के प्रति दृढ एवं अनन्य प्रेम की साधना के लिये इसे साधन रूप में स्वीकार करके योग और भक्ति का अद्भुत समन्वय स्थापित किया था ।

### हिंदी निगुण रामभक्तिधारा मे योग

रामानन्द के बाद हिंदी साहित्य में निर्गुण और सगुण भक्तिधाराओं का विकास हुआ । रामानन्द दोनों के प्रेरणा स्रोत कहे जा सकते हैं । निर्गुण धारा के प्रख्यात सत 'कबीर' में भक्ति के साथ योग का पूरा समन्वय है । उन्होंने भी 'राम' को अपना आराध्य माना है । परमात्मा के अनेक नामों की खर्चा करते हुए वे अतः 'राम' को ही महत्त्व देते हैं । वे बार बार राम रस पीने और राम से मिलकर 'एकमेव' होने की बात कहते हैं । उन्होंने योगियों के बाह्याङ्ग्य का विरोध भले किया हो, किन्तु योग के तात्त्विक रूप को पूणत स्वीकार किया । मन के उमन होने, जप के अजपा में समाते, सुरति के विरति में लीन होने सहज समाधि लगाने, और शिव-शक्ति के मिलने की बात कहकर योग को पूणत समर्पण दिया है । कबीर के पूर्ववर्ती सतों में नामदेव का महत्त्वपूर्ण स्थान है । कबीर ने उनका श्रद्धापूर्वक नामदेव का स्मरण किया है । नामदेव, रामानन्द के समकालीन माने जा सकते हैं । नामदेव या तो बिट्टल भगवान् के उपासक थे, किन्तु उनके कई पत्रों में 'राम' के प्रति श्रद्धा निवेदन का भाव स्पष्ट अंकित होता है । अपने एक पद में ये कहते हैं कि रे मन ! राम के सम्मुख ताव और योग एवं वैराग्यवृत्ति धारण करके ज्ञान-चिन्तन कर । राम के सम्मुख ब्रह्मा, इन्द्र, सूर्य, चन्द्र, शंकर, काल, नारद, तैत्तिरीया बरोड देवता आदि सभी नावते हैं । उन्हें विश्वास है कि मन की समर्पित करके राम के सम्मुख कर देने पर परमपद की प्राप्ति होगी । अपने अनेक पत्रों में उन्होंने रामनाम की श्रेष्ठता का उद्घोष किया है । वे बार बार कहते हैं कि हे सती ! रामनाम के तुल्य कोई नहीं है । वे स्पष्ट रूप से घोषित करते हैं कि मैंने रामनाम की सजीवनी बूटी प्राप्त कर ली है—

पायी मैं राम सजीवनि भूरी । गुह मिल्यो वेद विषा गई दूरी ॥<sup>१</sup>

१ सत नामदेव की हिंदी पद्यावली, पृष्ठ १३० ।

२ वही, पृष्ठ १६८ ।

इसके अतिरिक्त उनके द्वारा की गई श्रीरग बन्दना,<sup>१</sup> श्रीवैष्णव वेप का वणन<sup>२</sup> दशरथ पुत्र रामचंद्रजी की स्तुति,<sup>३</sup> रामनाम महामंत्र को जप तथा प्रपत्तिनिष्ठात म एकांतनिष्ठा श्री वैष्णव सम्प्रदाय से उनके घनिष्ठ सम्बन्ध आदि के साक्षी हैं।

अतः सत नामदेव को भी रामभक्तों में स्थान दिया जा सकता है। कहना न होगा कि नामदेव की साधना में भक्तिरत्नत्व की प्रधानता होते हुए भी योग की स्वीकृति है। सत नामदेव धारकरी सम्प्रदाय के सत हैं। इस सम्प्रदाय के प्रवर्तक सत नानेश्वर नाथ सम्प्रदाय की परम्परा के अंतिम महान् साधक थे। हिंदी निगुण सत परम्परा में रामभक्ति धारा का अजस्र स्रोत प्रवाहित हुआ है। कबीर के बाद निगुण मतों में मवाधिक प्रभावशाली मानक ने भी 'अनिम राम' की भक्ति की है और उनकी यह भक्ति योगकी तात्त्विक विशेषताओं से युक्त है।<sup>४</sup> इधर मीरा के भी रामभक्तिभावित कुछ पद प्राप्त हुए हैं।<sup>५</sup> अन्य अनेक मतों ने भी रामकथा का निगुण भावपरक प्रतीकात्मक मत प्रकट करत हुए अपनी रामभक्ति का परिचय दिया है। इनमें गरीबदास, धनीदास, रज्जव सुंदरदास, यारी साहब जगजीवन साहन, पलटूदास दरिया साहब, तुलसी साहन देवकी नन्दन साहब, रघुनाथ दास रामसनेही, नवनिधि, लाला शिवदयाल मिह, शिवप्रतलाल, जगन्नाथदाम, भगवान बत्सदाम, शारदा राम उदासीन आदि प्रमुख हैं। इन सतों में कई ने उसकी योग परक व्याख्या की है। इस प्रकार निगुण रामभक्ति धारा में न केवल योग साधना का समावेश है, धरन रामकथा की योग परक प्रतीकात्मक व्याख्या भी की गयी है। निगुण सतों में कई ने षट रामायणों की रचना की है। इन रामायणों की सृष्टि विश्वय ही योगदृष्टि के आधार पर की गयी है। कुछ परवर्ती सतों ने तो रामकथा के पौराणिक सगुण रूप को भी स्वीकार कर लिया है। इनमें मन्नूकान्तम, जगजीवनकान्तम, शिवनारायण साहब, देवकी नन्दन साहन, रघुनाथदास राम सनेही विशेष उल्लेखनीय हैं। इन सभी सतों ने भक्ति के साथ योगसाधना को भी

१ सत नामदेव की हिंदी पदावली, पद २५५।

२ हिंदी साहित्य को मराठी सतों को देन, पृ० ३५४।

३ यही, पृ० २५३।

४ सत नामदेव की हिंदी पदावली, पृ० ३६।

५ नानक की योगनिष्ठा के लिये दे० नानक याणी, पृ० ५६४।

६ रामभक्ति परम्परा और साहित्य, पृ० १०५।

महत्त्व किया है। तात्पर्य यह कि त्रिगुण सतों की साधना में योग-भावना अनिवार्य रूप में उद्युक्ती एक तात्त्विक विशेषता के रूप में समाविष्ट है और इस प्रकार व 'राम' भक्ति से प्रत्यक्ष जुड़े हुए हैं।

### रसिक रामभक्तिधारा में योग

रसिक रामभक्तिधारा में योग का महत्त्व निर्विवादरूप में भाव्य है। या तो रसिकभक्ति का उद्देश्य नम्मालवार से ही स्वीकार किया जाता है, किंतु उत्तरी भारत में रसिक भाव की भक्ति को एक व्यवस्थित साधना-पद्धति के रूप में प्रवर्तित करने का श्रेय अग्रदास को है। अग्रदासजी ने भक्त नम्मालवार से लेकर वृष्णगणपतिप्यहारी तक रसिक भक्ति साधना के बिखरे मूत्रा को संयोजित कर उसे एक व्यवस्थित साधना पद्धति का रूप दिया। नाथ सिद्धों में साधनदेह के रूप में योग देह की कल्पना की गयी है। अग्रदासजी ने उस ही साधनदेह भावदेह अथवा वैश्वदेह के रूप में मानसी ध्यान का मुख्य उपादान निश्चित किया और इसी विषय साधना, शरीर को पत्रभावोपासना का आधार माना। गोरक्षसिद्धान्त सग्रह में भी इस देह का स्पष्ट निर्देश है—

दरैरपि न लभ्यत योगदेहो महाबल ।

छन्दवर्धेविमुक्ता सो नानाशक्ति धर पर ॥ (पृ० ५१)

यदाऽऽकाशस्तथा देह आकाशदपि निर्मल ।

सूक्ष्मात्सूक्ष्मतरौ देह स्थूतात्स्थूलौ जडाज्जड ॥

(गोरक्ष सिद्धान्त सग्रह पृ० ५३)

इतना ही नहीं, इस शरीर के द्वारा श्रेय युगल तत्त्व भी योग धारा का ही प्रसाद है—

आकार विन्दु संयुक्त नित्य ध्यायति योगिन ।

तस्मिन् मध्य स्थित तत्त्व प्रदशयति सद्गुरु ॥

(गो० सि०, स० पृ० २७)

अग्रदासजी से पहले रसिक परम्परा में अनन्तानन्दजी उल्लेख्य हैं। युगल-प्रियाजी ने रसिक-प्रकाश-भक्तमान में उनकी रसिक समाधि का वर्णन करते हुए लिखा है—

आसू चलत समाधि में अद्भुत गति विरही लहे ।

शिव्य किये बहू विरति रति तिनके गुन गा का बहे ।<sup>१</sup>



यह समाधि, योग युक्त भक्ति साधना का ही परिणाम है। अंतिम पक्ति में अनेक विरक्ति में रति करने वाले शिष्या को दीक्षा देने की बात कही गयी है, जिसका सीधा संकेत योग साधना की ओर ही है।

अनंतानंद के शिष्य कृष्णदास परमहारी थे। 'रसिक प्रवाश भक्तमाल' के अनुसार इनकी रामोपासना सारय योग समर्पित थी।<sup>१</sup> इनकी एक छोटी सी रचना 'राजयोग प्राप्त हुई है। इसमें शुद्ध स्थान पर बैठकर एकाग्रचित्त से प्राणायाम प्रक्रिया द्वारा अतर्ज्योति दशन की अनुभूति का प्रभवद्वय एव सागोपाग ध्यान किया गया है।

स्पष्ट है कि योगियों ने जहाँ शिव स्थान मानकर शिव रूप परमतत्त्व में लीन होने वा ब्रह्मलीन होने की बात कही है, वहाँ रसिक भक्तों ने अपने इष्टदेव राम को प्रतिष्ठित कर उनके स्वरूप में लीन होने की अनुभूति की है।

कृष्णदास परमहारी के शिष्य अप्रदासजी थे। अप्रदासजी की 'ध्यान मञ्जरी रसिक रामभक्तों का एक भाग्य ग्रन्थ है। इसमें महत् महोपास के मध्य में सर्वदेव शिरोमणि भगवान राम को साता सहित शोभित बताया गया है और रसिक भक्तों के लिये उनके इसी रूप का ध्यान विहित माना गया है। अप्रदासजी ने ध्यान मञ्जरी की रचना 'सदाशिव संहिता के आधार पर की है, जो तत्र शास्त्र का एक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ है। अप्रदासजी की 'ध्यान मञ्जरी'<sup>२</sup> की एतद्विषयक कुछ पक्तियाँ नीचे उद्धृत हैं—

स्वणवैदिका मध्य तहाँ एक रत्न सिंहासन ।

सिंहासन क मध्य परम अति पदुग सुजासन ॥

ताके मध्य सुदेश कणिका सुंदर राजै ।

अति अद्भुत तह तेज बह्लि सम उनमा भ्राजै ॥

ता मयि शोभित राम नील इंदीवर ओभा ।

अखिल रूप अमोधि सजल धन तन की सोभा ॥

यस राजत रघुवीर धीर आसन मुमकारी ।

रूप सच्चिदानंद वामनिसि जनक कुमारी ॥

अप्रदासजी के बाद उनके शिष्य प्रशिष्यो तथा रसिक भक्तिधारा के अन्य सभी भक्ता ने इस 'ध्यान पद्धति' का स्वीकार करके अपनी साधना में योग एव प्रेम का सामंजस्य स्थापित किया।

१ २० प्र० भ०, पृ० १३ ।

२ लेखक के पिता हस्तलेख सग्रह से ।

### मर्यादावादी रामभक्ति में योग

रामभक्ति परम्परा मे राम के ऐश्वर्य रूप के उपासक मर्यादावादी भक्त तुलसीदास ने भी योग को महत्व दिया है। गीतावली मे जनकजी के व्यक्तित्व की विशेषता का उल्लेख करते हुए विश्वामित्र कहते हैं—

रागऊ विराग, योग-योग जोगवत मन,  
जागी जागवलिक प्रसाद सिद्धि लही है।  
साते न तरनि त न सीरे सुधाकरहू तें,  
सहज समाधि निरुपाधि निरवही है।<sup>१</sup>

अयोध्या काण्ड के आरम्भ मे शंकर की वन्दना के बाद राम के जिस स्वरूप की वन्दना तुलसीदास ने की है, वह योगियों के समतत्त्व की धारणा के अनुभूत हैं। तुलसी ने सुख-दुःख में एकरस या समरस रहने वाली राम की मुखश्री की वन्दना की है।

प्रसता या न गताभिपेकतस्तथा न मन्ले वनशास दुःखत ।

मुखाभ्युजश्री रघुनदनस्य मे सदास्तु सा मजुल मगलप्रदा ॥<sup>२</sup>

यह समाधिनीन योगी की मन स्थिति के सवया अनुकूल है—

गभिजानाति शीतोष्ण न दुःख न सुख तथा ।

न भानं भापमान च योगयुत समाधिना ॥

लकाकाण्ड के मगलाचरण मे राम की वन्दना करते हुए उह तुलसीदास ने योगीन्द्र कहा है। मानस के ही उत्तरकाण्ड मे ज्ञान तत्व निरूपण करते हुए उहाने ज्ञानपीपक की जिस अल्पज्योति की बल्पना की है, वही अल्पज्योति योगियों द्वारा ध्यय है—

सोहमस्मि इति धृति अखडा । दीपसिखा सोह परम प्रचडा ॥<sup>३</sup>

स्पष्ट है कि भक्ति के प्रबल समर्थक होते हुए भी तुलसीदास, योग साधना के तात्त्विक महत्व को स्वीकार करते हैं।

तुलसीदास के बाद राम के ऐश्वर्य रूप के उपासक केशवदास ने भी योग-तत्व का महत्व का स्वीकार किया है। 'राम' के जाकपुर पहुँचने पर महाराज जनक जो स्वयं राजा और योगी दोनों थे, उनके जिस स्वरूप को देखते हैं वह योगियों के चित्त में निवास करावाना समाधि दशा मे अनुभूत परम तत्व ही है। वे कहते हैं—

१ तुलसी प्रयागवली, ना० प्र० स०, पृ० ३१४ ।

२ मानस, अयो० का०, श्लोक—२ ।

३ मानस, उ० का०, पृ० ६८४ ।

सिद्ध समाधि सजें अजहूँ न कहूँ जग जोगिा देखन पाई ।

केशव गाधि के नद हर्मै वह ज्योति मो मूरनिवन दिखाई ।<sup>१</sup>

आधुनिक रामभक्ति कायो म भी योग साधना के बीज विद्यमान हैं । राम चरित चिंतामणि में रामचरित उपाध्याय ने राम राज्य का वर्णन करते हुए लिखा है कि राम के राज्य में लोग इन्द्रिया पर नियंत्रण रखते थे ।

जहा इन्द्रियो को दगात समी थे,

प्रजा को न राजा सतान कभी थे ।<sup>२</sup>

निराला' ने राम की शक्तिपूजा में राम को योग साधनारत लिखाया है । अन्तर्लिंग राम का मन पटवर्ण को भेदकर महसूसार तक पहुँचता है । वह समाधिस्थ होते हैं और इसी स्थिति में वे शक्ति की आराधना करते हैं । योगी की उच्चतम भूमि पर पहुँचकर ही राम शक्ति का दृष्ट आराधन करने में समर्थ होते हैं ।

इस प्रकार हम देखते हैं कि आरम्भिक रामभक्ति कायो से लेकर आधुनिक युग क राम कायातक म योग-साधना क तत्त्व अबाधगति से प्रवाहित निहित हैं ।

वस्तुतः भारतीय धर्म साधनाओं के मूल में ही योग की मत्ता विद्यमान है । ये समस्त साधनाएँ अन्तरायलम्बित हैं । सभी का लक्ष्य जीवात्मा को परमात्मा में लय कर देना है । यह स्थिति चित्त की एकाग्रता और मन की अतमुखता पर ही निर्भर है । भक्ति साधना भावमूलक है । किन्तु भावात्मक तादात्म्य भी एक प्रकार का याग प्रक्रिया ही है । वैष्णव मत के आधार ग्रन्थ 'भागवत' में भी योग को भक्ति साधना में सहायक स्वीकार किया गया है । भक्ति सिद्धान्तों का सूक्ष्म अध्ययन करने में उसमें योग तत्त्वा का समावेश स्पष्ट लक्षित होता है । वैधी भक्ति के पाँच अंगों—उपासक, उपास्य, पूजाद्रव्य, पूजाविधि और मंत्र-जप पर विचार करी से यह तथ्य स्पष्ट हो जायगा । उपासक के लिये हृदय शुद्धि और शरीर-शुद्धि दोनों ही आवश्यक हैं । शरीर शुद्धि के लिये स्नान, तिलक, भाला, आसन, पादुका इत्यादि की आवश्यकता पडती है, हृदय-शुद्धि के लिये प्राणायाम गायत्री जप आदि की । इनमें प्राणायाम और गायत्रीजप योग की ही प्रक्रियाएँ हैं । रसिक सम्प्रदाय में प्रभु प्राप्ति के लिये जिन साधनों का विधान किया गया है, उनमें योग की स्वीकृति स्पष्ट है । इस साधना में पाँच उपायों से प्रभु प्राप्ति संभव मानी गई है—१ कर्म, २ ज्ञान, ३ भक्ति, ४ प्रपत्ति

१ रामचन्द्रिका, छठवाँ प्रकाश पृ० ७६ ।

२ रामचरित चिंतामणि, २३ सर्ग, पृ० २१२ ।

और ५ आचार्याभिमान । इनमें कर्म साधना के अतगत यज्ञ, दान, तप, हवन, सयम, अध्ययन, सध्यापासना, जप, पवित्रता, चातुर्मान्य व्रत, अष्टांग योग, उपवास, अर्घ्य, वाद्य, तपण, तीर्थाटन आदि का विधान है । इस प्रकार रसिक रामभक्तों के लिये अष्टांगयोग की साधना प्रथम आवश्यकता है । शुभ कार्यों के अनुष्ठान में ही ज्ञान का प्रकाश सम्भव है । ज्ञान का प्रकाश होने पर साधक को अपने मानस में त्रि-सिंहासन पर आसीन मणिमय कम्प्राभूषणा से अलङ्कृत युगलस्वरूप का ध्यान करना चाहिये । यह भक्तिमय ध्यान, योग तथा ज्ञान साधना का सहकारी है ।

भारतीय साधनाओं का विकास-क्रम कुछ इस प्रकार का है कि एक साधना में विकृति आने पर दूसरी साधना उसके मूल एवं तात्त्विक स्वरूप को आत्मसात् करके अपने को विकसित करती है या अपने तात्त्विक आधार को इतना व्यापक बना लेती है कि अत्य समानांतर प्रतिष्ठित साधनाओं के उपयोगी एवं अनिवाय तत्व उसकी सीमा में आ जाते हैं । इसीलिये हम देखते हैं कि भक्ति साधना में योग, कर्म और ज्ञान और साधनाओं का बीज समिहित हैं । रामभक्ति धारा में यह विशेषता विद्यमान है । योग एक ऐसी प्रक्रिया है जिसके तात्त्विक महत्त्व का कभी भी अस्वीकार नहीं किया जा सकता । इसीलिये रामभक्ति-साधना में उसका समर्पण सर्वत्र लक्षित होता है । 'मारुत जगाया जोग भगनि भगायो लोग, निगम निवाग सा सा कनि ही छरो सोहै — बानी तुलसी की उक्ति का आधार पर कुछ लोग रामभक्ति को योग साधना का विराधी समझते हैं । किन्तु वे यह भूल जाते हैं कि प्रकृत सत्त्व में गाम्वासी की आरोग वाग साधना के तत्कालीन विकृत रूप के प्रसारक योगिया पर है, परंपरया प्रतिष्ठित योग-दशन पर नहीं ।

## तुलसी विषयक शोध का मूल्यांकन

तुलसीदास के व्यक्तित्व और रूढ़ित्व का व्यापक प्रभाव उनके जीवनकाल में ही समाज पर पड़ने लगा था। इमने बाल्य प्रमाण तो उपलब्ध है ही, तुलसी साहित्य में भी ऐसे अनेक आरमोल्लेख हैं जो कवि की एतद्दिपयक सजगता दानित करते हैं। जहाँ तक व्यवस्थित अनुशीलन का प्रश्न है तुलसी सम्बन्धी वैज्ञानिक अनुसंधान का सूत्रपात निश्चय ही पश्चात्य विद्वानों द्वारा हुआ, जिसमें पहला नाम एच० एच० विल्सन का है। विल्सन ने सन् १८३१ (स० १८८८) में 'ए० स्केच आव दि रेलिजस सेनटस आव दि हिन्दूज नामक निबन्ध ऐशियाटिक रिसर्चेंज में प्रकाशित कराया था। इस निबन्ध में तुलसी की जाति जन्म स्थान, कार्यभार गुरु-परम्परा, जन्म तिथि, मृत्यु तिथि और रचनाओं पर प्रकाश डाला गया था। एनी मूचनाओं का आधार सम्भवतः नामादास का छाप्य उस पर प्रियदास का टीका तथा अन्य अनुश्रुतियाँ थी। हिन्दी साहित्य के इतिहास की सर्वप्रथम रूपरेखा प्रस्तुत करने वाले पासीगी विद्वान् गाली तासी ने 'इस्त्वार लि ला लितरेत्योर इन्दुइ ए इन्दुस्तानी के प्रथम खण्ड (सन् १८३८ ई०) में तुलसीदासजी का जो जीवन परिचय दिया है वह बहुत कुछ विल्सन की सूचनाओं पर ही आधारित है। उस क्रम में एफ० एस० ग्राउज का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। ग्राउज ने सन् १८७६ से लेकर १८८१ तक अथक परिश्रम करके रामचरितमानस का अंग्रेजी अनुवाद प्रस्तुत किया था। इस अनुवाद में पश्चात्य दशा में तुलसी के काव्य-गौरव का प्रसार हुआ। इसकी भूमिका में तुलसीदास का जो जवाब परिचय दिया गया है उसमें विल्सन द्वारा प्रस्तुत सामग्री का विवेकपूर्ण उपयोग करने हुए उनकी भूला की ओर भी कुछ संकेत हैं।

तुलसी सम्बन्धी अनुसंधान, काय में युगांतर उपस्थित करने वाले विद्वान् जाज ए० प्रियसन हैं। सन् १८८५ ई० में उन्होंने वेन की अंतर्राष्ट्रीय आरियण्टल कांग्रेस में 'हिन्दुस्तान का मायवाली साहित्य विशेष रूप से तुलसीदास शोधक महत्वपूर्ण निबन्ध पढ़ा था। तब से लेकर सन् १८९१ ई०

तक वे बराबर तुलसी विषयक अनुसंधान में प्रवृत्त रहे। पहली बार उन्होंने ही कवि के जीवन-वृत्त एवं रचनाओं के निर्माण काल से सम्बद्ध तिथियों की व्योत्पत्ति के माध्यम सिद्धांत के आधार पर गणना कराई, कृतियों की प्रामाणिकता पर विचार किया, कवि के जीवन-वृत्त से सम्बंधित अनुश्रुतियों का संग्रह किया, उसके आभासद्वारा की ऐतिहासिक परीक्षा की, कवि और सुधारक रूप का मूल्यांकन किया और 'रामचरितमानस' की मौलिकता का प्रतिपादन कर विद्वानों का ध्यान उस ओर आकृष्ट किया। इस प्रकार पश्चात्य विद्वानों में विल्सन के आरम्भिक प्रयास को प्राच्यविद् ग्रियसन ने पराकाष्ठा पर पहुँचा दिया।

भारतीय विद्वानों में तुलसी के जीवन-वृत्त तथा कृतियों के अनुसंधान का सुरुवात करने वालों में श्रीमद्देशदत्त शुक्ल और श्रीशिर्वांसिंह सेगर उल्लेखनीय हैं। इनसे पूर्व नामानुसंधान के भक्तमाल, उसकी विविध टीकाओं तथा सस्कृत-हिन्दी के अनेक कृतियों द्वारा किये गये प्रशस्तिपरक उल्लेख तुलसी के व्यापक प्रभाव के साक्ष्य होने पर भी आधुनिक ऐतिहासिक-वैज्ञानिक अध्ययन की कोटि में नहीं आते। श्री सेगर ने सन् १८७७ में अपने 'सरोज' में कवि के संक्षिप्त जीवन-वृत्त और रचनाओं का उल्लेख करने के साथ ही पसका (जिला गाँवा) निवासी बेनीमाधवदास रचित 'गोसाइचरित' की सूचना दी और इस प्रकार तुलसी के जीवन-वृत्त के प्रति जिज्ञासा उत्पन्न की। सन् १८८५ ई० से 'रामचरितमानस' के सम्पादन का इतिहास आरम्भ होता है। श्री भागवतदास खत्री ने सन् १९६४ ई० और १७०५ ई० की हस्तलिखित प्रतियों के आधार पर 'रामचरितमानस' का सम्पादन किया। सन् १९०२ में चिन्तामणि घोष ने प० सुधाकराद्विवेकी, बाबू राधाकृष्णदाम, बाबू श्यामसुन्दर दास, बाबू कार्तिक-प्रसाद खत्री और बाबू अमीरसिंह द्वारा सम्पादित कराकर विस्तृत भूमिका के साथ उसका प्रकाशन कराया। कृतियों के बावजूद यह संस्करण एक महत्वपूर्ण प्रयास के रूप में समाहित है।

उत्तमवी शती के अन्त तक तुलसी सम्बंधी अनुसंधान की मुख्यतः तीन दिशाएँ थी—(१) जीवन-वृत्त का अनुसंधान, (२) व्यक्तित्व का मूल्यांकन और (३) कृतियों की प्रामाणिकता का निश्चय तथा पाठ-शोध। तुलसी की टीकाओं को परम्परा का आरम्भ बहुत पहले ही हो चुका था। इन टीकाओं से तुलसी की निष्ठा का अध्ययन में सहायता मिलती है। टीकाकारों ने तुलसी की कृतियों की व्याख्या करने हुए उनके मूल मन्त्रों को प्रकाशित करने का दावा किया है। प्रमुख टीकाकार निम्नलिखित हैं—

- (१) महात्मा रामचरणदास—'आनंद लहरी' टीका, १८२१ ई०
- (२) सतसिंह पंजाबी—भाव प्रकाश टीका, १८२१ ई०
- (३) शिखराल पाठक—श्रीम मानस अमिप्रायणीपत्र
- (४) काण्ठजिह्वा स्वामी—मानस परिचया १८६८ ई०
- (५) ईश्वरी प्रसाद नारायण सिंह—मानस परिचया परिशिष्ट, १८६८ ई०
- (६) सीतारामाय हरिहरप्रसाद—रामायण परिचया परिशिष्ट प्रकाश, १८८८ ई०
- (७) नाना सतसिंह—१८८८ ई०
- (८) बैतनाथ ब्रूमवशी—'मानस भूषण', १८६० ई०
- (९) प रामेश्वर भट्ट—१८६६ ई०
- (१०) धारू श्यामसुंदर दास—१९०२ ई०
- (११) मुशी शुक्लदास लात—१९१२ ई०
- (१२) प० विनायक राव—'विनायका टीका', १८१४ ई०
- (१३) प० महावीरप्रसाद माथीय—१९२५ ई०
- (१४) अजमानन्दन शरण—मानस पीयूष टीका १९३४ ई०
- (१५) प० विजयानन्द त्रिपाठी—विजया टीका
- (१६) हनुमानप्रसाद पादार—गीता प्रेस, मानसाक टीका, १९४० ई०
- (१७) श्रीकांतशरण—सिद्धांत निलक, १९४४ ई०

इन प्रयासों के बाद तुलसीदास और उनकी रचनाओं के सम्बन्ध में सुनियोजित अनुशीलन नियोजित हुआ जिससे फलस्वरूप विभिन्न दिशाओं में अब तक शनाधिक अध्ययन किये गये हैं। सुविधा के लिये इन्हें निम्नलिखित वर्गों में रखकर विचार किया जा सकता है—

- (१) प्रेरणा स्रोतों का अध्ययन, (२) जीवन-वृत्त का अध्ययन (३) रचनाओं की संख्या, लिपिबद्ध और प्रामाणिकता का अध्ययन, (४) धर्म और साधना का अध्ययन, (५) विचारधारा का अध्ययन (६) काव्य-शास्त्रीय मूल्यांकन, (७) भाषा-शास्त्रीय अध्ययन, (८) मनोवैज्ञानिक अध्ययन और 'यत्किं त्वं प्रकृतः', (९) पाठालोचन, (१०) अथानुसंधान और टीकापरक अध्ययन, (११) तुलनात्मक अध्ययन, (१२) साम्प्रतिक अध्ययन, (१३) प्रभावपरक अध्ययन, (१४) समग्र अध्ययन और (१५) आधुनिकता के संरक्षक के रूप में किये गये अध्ययन।

स्रोतों के अध्ययन में सबसे अधिक विचार और अनुशीलन रामचरित मानस का लेकर किया गया है। इस सम्बन्ध में थाशकुमार वृत्त 'मानस बालकाण्ड के स्रोत (१९५७ ई०), शार्लोत वॉन्डेल वृत्त 'तुलसीदास रचित रामचरितमानस

का मूलाधार व रचना विषयक समालोचनात्मक अध्ययन' (१९५६ ई०) तथा श्री सीताराम कपूर द्वारा 'रामचरितमानस के साहित्यिक स्रोत' आदि उल्लेखनीय प्रयास हैं। मानस के अतिरिक्त तुलसी की अथ वृत्तियाँ में विनय पत्रिका, गीतावली आदि के आधार ग्रन्थों का भी अध्ययन हो सकता है। किन्तु इस दिशा में कोई महत्वपूर्ण प्रयास अभी तक देखने में नहीं आया।

जीवन-वृत्त सम्बन्धी अनुसंधान में विद्वानों ने अपेक्षाकृत अधिक उत्साह दिखाया है। इस सन्दर्भ में आरम्भिक प्रयासों के अतिरिक्त इन्द्रदेवनारायण, सिंह, शिवनन्दन सहाय, रामकिशोर शुक्ल, बाबू श्यामसुन्दर दास, रामनरेश त्रिपाठी, प० रजनीकान्त शास्त्री, रामबहोरी शुक्ल, डा० माताप्रसाद गुप्त, प० चन्द्रवली पाण्डेय, प० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, रामदत्त भारद्वाज, डॉ० भगवतीप्रसाद सिंह तथा डॉ० गोवर्द्धननाथ शुक्ल के अध्ययन महत्वपूर्ण हैं। किन्तु इन अनुशीलनों में तुलसी के जन्म एवं गुरुभूमि के निर्धारण में जितना धम किया गया है, उतना उनकी जीवनी के अन्य तत्वों एवं घटनाओं की प्रामाणिकता को जांच में नहीं। इनसे तुलसी के जीवनवृत्त सम्बन्धी अनेक महत्वपूर्ण तथ्य प्रकाश में आये हैं तथापि कतिपय विशिष्ट प्रसंगों में उत्तरोत्तर उलझाव बढ़ता ही गया है। मात्र जन्मभूमि के विषय में देखा जाय तो अयोध्या, काशी, हाजीपुर (चित्रकूट), हस्तिनापुर (गडमुक्तेश्वर के पास), राजापुर, तारी, सोरा (रामपुर) और बलिया जैसे अनेक स्थानों का उनके पक्षधरों द्वारा गौरव प्रदान करने की चेष्टा की गयी है। भविष्य में और कौन सा स्थान इसका दावेदार हो जायेगा, नहीं कहा जा सकता। यही स्थिति उनकी आध्यात्मिक शिक्षास्थली की भी है—सूकरखेत (गोण्डा) और सोरा दोनों ही उन्हें अपनाते में सक्रिय हैं। जीवन-वृत्त सम्बन्धी अन्य तथ्यों में जन्म-सवत् जाति और आस्पद, माता-पिता, मूल नाम, वचन, गुरु और शिक्षा, गृहस्थ जीवन, वैराग्य, गुरु परम्परा, विरक्त जीवन, निघन-निधि आदि के निणय का प्रयत्न किया गया है, किन्तु इनमें से किसी के भी सम्बन्ध में सर्वसम्मत निणय नहीं हो सका है। इस सन्दर्भ में तुलसी के पर्यटन और उस क्रम में अनेक व्यक्तियों से उनके सम्पर्क तथा विशिष्ट स्थानों में उनके टिकने के प्रमाण भी मिलते हैं। सम्बन्धित कागजपत्रों तथा जनश्रुतियों की जापक जाँच होनी अभी शेष है।

जीवन-वृत्त की भाँति ही तुलसी की कृतियों व अनुसंधान की ओर भी विद्वानों का ध्यान आरम्भ से ही रहा है। कृतियों की संख्या, रचना तिथि, रचनाक्रम तथा प्रामाणिकता सम्बन्धी अनेक अनुसंधान हुए हैं, जिनमें डॉ० प्रियर्सन, प० रामगुलाम द्विवेदी, मिश्रवधु प० रामनरेश त्रिपाठी, सद्गुरुशरण अवस्थी, डा०



रामकुमार वर्मा डॉ० भाजाप्रसाद गुप्त आदि के अध्ययन महत्वपूर्ण हैं। इस सम्बन्ध में मनभेन के बावजूद तुलसी की ६ कृतियाँ—रामचरितमानस, जानकी मंगल, पार्वतीमंगल, गीतावली, कृष्ण गीतावली, विनय-गनिका, दोहावली, बरखे रामायण तथा कवितावली की प्रामाणिकता सर्वमाय है और तीन कृतियाँ—वैराग्य सन्नीपनी, रामायण रामयना नहलू की प्रामाणिकता बहुमाय है। 'तुलसी सतसई' को अल्प प्रामाणिक माना गया है। इन कृतियाँ व रचनाक्रम एवं रचना-विधियों में सम्बन्ध में पर्याप्त मतभेद है और अन्तिम निष्पत्ति आज तक नहीं हो सका है।

तुलसीदास की विचारधारा व अध्ययन को मुख्यतः दो वर्गों में रगकर देना जा सकता है—(१) दार्शनिक विचारधारा और (२) सामाजिक नैतिक विचारधारा। दार्शनिक विचारधारा में सम्बन्धित अध्ययनों में डॉ० बलदेवप्रसाद मिश्रकृत 'तुलसी दशन (१९४८), डॉ० उष्यभानुसिंह कृत तुलसीदास की मोमांसा (१९६१ ई०), श्रीराजकुमार कृत 'रामचरितमानस का उत्तर दशन' रामदास भारद्वाज-कृत 'तुलसी दशन (१९७१ ई०) आदि प्रथम महत्वपूर्ण हैं। कुछ विद्वानों ने स्पष्ट निष्कर्षों में तुलसी के दार्शनिक विचारों का अध्ययन किया है। इनमें प० गिरधर शर्मा चतुर्वेदी का नाम विशेष रूप में उल्लेखनीय है। तुलसी के दार्शनिक विचारों के सम्बन्ध में अभी तक अंतिम रूप का कुछ नहीं कहा जा सका है। कुछ विद्वान् उनकी कृतियों में अद्वैतवाद की व्याप्ति बताते हैं किन्तु बहुमत उन्हें विशिष्टाद्वैतवादी मानता है। कुछ लोगों ने उन्हें शार्शनिकसमन्वयवादी भी कहा है। इधर तुलसी को एकारमवादी भी सिद्ध किया जा रहा है। यह मतभेद जहाँ एक ओर तुलसी व चिन्तन की गहराई और अध्ययन की व्यापकता प्रमाणित करता है वहीं दूसरी ओर अध्येताओं के अध्ययन की सीमा को भी रेखांकित कर देता है। अन्ततः तुलसी के दशन की व्याख्या किसी पूर्वागत सिद्धान्त की सीमा में नहीं की जा सकती। उसके स्वतन्त्र अनुसंधान की आवश्यकता है।

तुलसी की सामाजिक, नैतिक विचारधारा सम्बन्धी अनुसंधानों में महेशप्रसाद चतुर्वेदी कृत 'तुलसी का समाज दशन (१९६१ ई०), श्री विष्णुशर्माकृत 'तुलसी का सामाजिक दशन (१९६२ ई०) श्रीवैजनाथसिंह कृत मानस का सामाजिक दशन' (१९६४ ई०) श्रीमती जानकी विवेकी कृत 'तुलसीदास की दृष्टि में नारी (१९६७ ई०) तथा श्री चरणानंद शर्मा कृत तुलसी के काव्य में नैतिक मूल्य (१९७१ ई०) उल्लेखनीय हैं। इन अध्ययनों में कहीं कहीं आधुनिक सामाजिक आशों का आरोपित करने की चेष्टा भी मिलती है जो बहुत उचित नहीं

हैं। ये अध्ययन इस तथ्य के साक्षी हैं कि तुलसीदास लोककल्याण की भावना से समग्र जीवन दृष्टि अपनाकर साहित्य-रचना में प्रवृत्त हुए थे।

‘धर्म एव साधना’ की विवेचना करने वाले शोधग्रन्थों में जे० ए० कार-पेण्टर कृत ‘धियोलाजी आव तुलसीदास’ (१९१८ ई०), जे० एम० मैक्फीकृत ‘दी रामायण आव तुलसीदास’ (१९३० ई०), डा० सत्य नारायण शर्मा कृत ‘रामचरितमानस में भक्ति’ (१९७० ई०) डॉ० वचनदेवकुमारकृत ‘तुलसी के भक्त्यात्मक गीत’ विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। इनके अतिरिक्त श्रीराम अवतार कृत ‘राम भक्ति और हिन्दी साहित्य में उसकी अभिव्यक्ति’ (१९६० ई०) तथा श्री रामनिरजन पाण्डेय कृत ‘राम भक्ति शाखा (१९६० ई०) जैसे अध्ययन भी इस दृष्टि से उपादेय हैं। इनमें तुलसी की भक्ति को पर्याप्त महत्त्व दिया गया है। आनुपंगिक रूप से तुलसी की धर्मभावना एवं भक्तिभावना का अध्ययन प्रस्तुत करने वाली कृतियाँ अनेक हैं। इन ग्रन्थों के ऐतिहासिक तथा शास्त्रीय व्योरे को अलग करके देखा जाय तो सबका प्रतिपाद्य प्रायः एक सा ही है। सभी ने यह निष्कर्ष देने की चेष्टा की है कि तुलसी को व्यक्ति और लोक धर्म की सच्ची पहचान थी और उन्होंने उसके मर्यादावादी, शास्त्रमन्मत एवं उदार स्वरूप की प्रतिष्ठा की है। तुलसी की भक्ति भावना उसी सम अर्थशोध दृष्टि का परिणाम है और उन्होंने सभी प्रकार के विरोधों में सामंजस्य स्थापित करने की चेष्टा की है।

तुलसी की कृतियों के काव्यशास्त्रीय अनुशीलन दो प्रकार के हैं। प्रथम प्रकार के अध्ययन वे हैं, जिनमें काव्यशास्त्र के विशिष्ट अंग अथवा पक्ष-विशेष को सामने रख कर तुलसी की कृतियों का मूल्यांकन किया गया है। दूसरे प्रकार के अध्ययनों में तुलसी की कृतियों के आधार पर उनके काव्य-सिद्धांतों को विवेचित करने की चेष्टा की गयी है। प्रथम वर्ग में डॉ० राजकुमार पाण्डेय कृत ‘राम-चरितमानस काय का शास्त्रीय अध्ययन’ (१९६३ ई०), डॉ० माण्यवती सिंह कृत ‘तुलसी की काव्य कला (१९६२ ई०)। डॉ० रागेय राघव कृत ‘तुलसी का कथा शिल्प, डा० विनयकुमार कृत ‘तुलसी का प्रगीत काव्य (१९६२ ई०), डा० हरिहरनाथ हुक्कू कृत ‘रामचरितमानस की काव्य कला’ (१९७३ ई०), श्री नरेन्द्र-कुमार कृत ‘तुलसी की अलंकार योजना और डा० अम्बाप्रसाद ‘सुमन’ का रामचरितमानस वाग्भैव’ विशेष उल्लेखनीय हैं। द्वितीय वर्ग में डॉ० राम-लाल सिंह कृत ‘तुलसी काय-शान, डा० यागेन्द्रप्रसाद सिंह कृत ‘हिन्दी वैष्णव भक्ति-काव्य काव्यादर्श तथा काव्य सिद्धान्त’ प्रमुख हैं। जैसे इनका सम्बन्ध पूरे भक्ति काल से है फिर भी इनमें तुलसी की रचनाओं के सम्बन्ध में पर्याप्त विचार किया गया है।

उपयुक्त कृतियों ने अतिरिक्त आनुपगिक रूप से तुलसी की रचनाओं का काव्यशास्त्रीय विवेचन प्रस्तुत करने वाली निबन्धात्मक कृतियाँ अगणित हैं। अध्येताओं ने यह प्रतिपादित किया है कि तुलसीदास को काव्यशास्त्र का पूरा पान था और उन्होंने 'कवित्त विवेक एक नाहि मोरे की घोषणा के बावजूद सूक्ष्मतर एव पूरा काव्य-विवेक का परिचय दिया है।

हिन्दीतर रामकाव्यों में तुलसी की कृतियों के तुलनात्मक अध्ययन की परम्परा बहुत पहले से चली आ रही है। सन् १९११ ई० में श्री एल० पी० ट्रेसीटरी ने 'रामचरितमानस और वाल्मीकि रामायण की कथा का तुलनात्मक अध्ययन' प्रस्तुत किया था। इधर यह प्रवृत्ति बढ़ी है। इस सम्बन्ध में डा० रमानाथ त्रिपाठी कृत 'कृतिवास का बगला रामायण और रामचरितमानस का तुलनात्मक अध्ययन' (१९५७ ई०) श्रीमती कमला साहत्यायन कृत 'महाकवि आनुमत्त के नेपाली रामायण और तुलसीदास के रामचरितमानस का तुलनात्मक अध्ययन' (१९५९ ई०), श्री शिवकुमार शुक्ल कृत 'रामायणोत्तर संस्कृत काव्य और रामचरितमानस का तुलनात्मक अध्ययन' (१९६१ ई०), श्री जगदीश-नारायण कृत 'रामचरित्रा और रामचरितमानस का तुलनात्मक अध्ययन' (१९६२ ई०), श्री एम० जाजकृत 'तुलसीदास और रामभक्ति सम्प्रदाय के प्रसिद्ध मलयालम कवि एडुनच्छन का तुलनात्मक अध्ययन (१९६२ ई०), डा० राम-प्रकाश अग्रवाल कृत 'वाल्मीकि और तुलसी का साहित्यिक मूल्यांकन' (१९६६ ई०), श्रीमती विद्या मिश्र कृत 'वाल्मीकि रामायण और रामचरितमानस का तुलनात्मक अध्ययन' (१९६३ ई०), श्रीमती तुलसी मिश्र कृत 'वाल्मीकि रामायण, अध्यात्म रामायण और रामचरितमानस के नारी पात्रों का तुलनात्मक अध्ययन' आदि कृतियाँ उल्लेखनीय हैं। इन विस्तृत तुलनात्मक अध्ययनों के अतिरिक्त तुलसी का मूल्यांकन प्रस्तुत करने वाली अन्य कृतियों में भी कथावृत्त, विचारधारा, भाव सौंदर्य प्रसंग कल्पना, चरित्र-चित्रण आदि का विवेचन करते हुए प्रसंगवश तुलसी कृत रामायण की अन्य रामकाव्यों से तुलना की गयी है। इस प्रकार के अध्ययनों से तुलसी की भक्तिवादिता, काव्यमर्मज्ञता, समवय-शक्ति, रामनिष्ठा एव नाटकीय प्रसंगा की उद्भावनाशक्ति उभर कर सामने आयी है और प्रकारान्तर से वह अध्येताओं के हृदय में आलोच्य कवि के प्रति आदर भाव की वृद्धि में सहायक हुई है।

तुलसीदास के काव्य का अनुसंधानपरक मनोवैज्ञानिक विवेचन तथा उनके व्यक्तित्व का विश्लेषण अभी बहुत कम हुआ है। इस सम्बन्ध में श्री अदिकाप्रसाद वाजपयी की तुलसीदास के काव्य का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण' (१९६२ ई०),

डा० श्रीधर सिंह की 'तुलसीदास की कारयित्री प्रतिमा (१९६६ ई०) और देवेन्द्रसिंह की 'तुलसी का अन्तजगत' उल्लेखनीय वृतियाँ हैं। इनके अतिरिक्त डा० हरद्वारीलाल शर्मा और डॉ० रामदत्त भारद्वाज ने भी स्फुट निबन्धों में तुलसीदास के काव्य के मनोवैज्ञानिक पक्ष का विश्लेषण किया है। तुलसी सम्बन्धी शोध का यह क्षेत्र अभी तक अपेक्षाकृत उपेक्षित रहा है। 'विनयपत्रिका', 'गीतावली' और 'कवितावली' के गम्भीर मनोवैज्ञानिक अध्ययन की आवश्यकता है। तुलसी की कथा-योजना, पात्र-परिकल्पना, सौन्दर्य-चित्रण, सवाद-योजना तथा अन्य सभी काव्योत्कर्ष विधायक तत्त्वों का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण अपेक्षित है। मध्ययुग के इस सर्वश्रेष्ठ मत्त कवि के काव्य में वैयक्तिक तथा सामाजिक मनो-विज्ञान से सम्बन्धित प्रभूत सामग्री निहित है। उसके अनुसंधान तथा विश्लेषण का कार्य मूल्यवान् सिद्ध होगा।

तुलसी की वृतियों, विशेषतः रामचरितमानस के पाठशोध का कार्य उत्तरी-सर्दी शताब्दी के मध्य से ही आरम्भ हो गया था। इस सम्बन्ध में प्रारम्भिक प्रयासों का उल्लेख पहले किया जा चुका है। परवर्ती प्रयास दो प्रकार के हैं— सन्तो और भक्तों के द्वारा संपादित ग्रन्थों और साहित्यिक विद्वानों के द्वारा संपादित पाठशोध प्रक्रिया से निर्णीतपाठयुक्त ग्रन्थ।

सन्तो और भक्तों के द्वारा किये जाने वाले पाठशोध का आधार निष्ठा और अर्थसुकुमारता रहा है। साहित्यिक विद्वानों के प्रयास दो प्रकार के हैं : प्रथम वे जिनमें वैज्ञानिक पाठशोध पद्धति का अनुसरण करते हुए भी अर्थसंगति को बरीयता दी गई है तथा द्वितीय वे जिनमें वैज्ञानिक पाठशोध-पद्धति को सर्वाधिक महत्त्व दिया गया है। इस सन्दर्भ में लाला सीताराम, बाबू श्यामसुन्दरदास, बाबू अजरलदास, लाला भगवानदीन, पंडित रामचन्द्र शुक्ल, डॉ० माताप्रसाद गुप्त, प० शम्भूनाथ चौबे तथा प० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र प्रभृति विद्वानों की सेवाएँ चिरस्मरणीय हैं। सन्तो और भक्तों में कौदवराम, भागवतदास, अजनीनन्दनशरण, रामबालकदास, श्रीकान्तशरण, प० विजयानन्द त्रिपाठी आदि के नाम महत्त्वपूर्ण हैं। इस सन्दर्भ में यह उल्लेख्य है कि तुलसी के द्वादश ग्रन्थों में अभी तक विशेष बल 'रामचरितमानस' के पाठशोध पर ही दिया गया है। अन्य वृतियों में से कुछ के ही पाठशोध के स्फुट प्रयास हुए हैं, जिनमें श्री सद्गुरुशरण अवस्थी, डा० माताप्रसाद गुप्त, डॉ० रामकुमार वर्मा, प० विश्वनाथप्रसाद मिश्र, श्री वियोगी हरि आदि के कार्यों का उल्लेख किया जा सकता है। किंतु अभी तुलसी की वृतियों के पाठानुसंधान का कार्य अधूरा ही है और इस क्षेत्र में बहुत सम्भावनाएँ हैं।

प्रभाव लभित करने वाले अध्ययनों की संख्या भी सीमित है। दोतपरक तथा तुलनात्मक अध्ययनों में यथावसर तुलसी पर पूर्ववर्ती कृतियों के प्रभाव का भी उल्लेख किया गया है। किंतु प्रभाव लभित करना श्रान और समता लभित करने से भिन्न प्रकार का कार्य है। कोई भी व्यक्ति प्रभाव उससे ग्रहण करता है, जिसके प्रति वह श्रदालु होता है। तुलसी ने जन कृतियों एवं कृतिकारों से प्रभाव ग्रहण किया होगा जो किसी अंश में उनकी विचारधारा, निष्ठा, जीवन दृष्टि एवं आदर्शों के प्रतिमान रहे होंगे। भृशुण्डि रामायण के प्रभाव का अध्ययन प्रस्तुत करने के क्रम में इन पक्तियों के लेखक ने अनुभव किया कि अनेकश स्थलों पर भृशुण्डि रामायण की उक्तियाँ और वाक्यांश ही नहीं, प्रसंग तक अविकल रूप में मानस में प्राप्त हैं। इस सम्बन्ध में यह ध्यान देने की बात है कि पूर्ववर्ती कृतियों से प्रभाव ग्रहण करते हुए भी तुलसीदास ने अपने आदर्शों के अनुकूल प्रभावित प्रसंगों में कुछ न-कुछ परिवर्तन अवश्य कर दिया है और वे परिवर्तन अनेक स्थलों पर मूल से भी अधिक आकर्षक बन पड़े हैं। विभिन्न प्रकार के पुष्पों से रस ग्रहण कर उसे विलक्षण स्वादयुक्त मधु का रूप देने में ही तुलसी के भू गत्व की सार्थकता है।

इसके अतिरिक्त तुलसी ने राम भक्त कवियों को प्रभावित भी किया है। अभी तक उनके प्रभावक्षेत्र का अनुशीलन तो दूर, उसका सम्यक सर्वेक्षण भी नहीं हुआ है। निगुण एवं सगुण धारा के उत्तर मध्यकालीन काव्य पर तुलसी की गहरी छाप है। रामभक्तिधारा का समग्र परवर्ती काव्य तो तुलसीरस से सर्वांग सित्त है ही, १८वीं तथा १९वीं शती के राधा या कृष्णभक्त कवियों की रचना शैली पर भी तुलसी का व्यापक प्रभाव पाया जाता है। तुलसी के काव्य एवं जीवन-दृष्टि पर जिन कृतियों एवं कवियों का प्रभाव है और तुलसी ने जिनको प्रभावित किया है वे दोनों ही प्रकार के अध्ययन विवेक सद्म एवं अध्यवसाय साध्य हैं। इस निष्ठा में अभी भी शोध की पर्याप्त गुंजाइश है।

तुलसी की भाषा का अनुशीलन यो तो उनके कृतित्व के अध्ययन के साथ ही आरम्भ हो गया था, किन्तु उसके भाषा शास्त्रीय वैज्ञानिक काव्यशास्त्रीय एवं सांस्कृतिक पक्षों का विस्तृत विवेचन बहुत पीछे आरम्भ हुआ। इस दिशा में सर्वप्रथम डा० बाबूराम सक्सेना ने 'अवधी भाषा के विकास' का ऐतिहासिक विवेचन करते हुए तुलसी द्वारा प्रयुक्त अवधो के स्वरूप पर भी विस्तारपूर्वक विचार किया था। डा० देवकीनन्दन श्रीवास्तव ने 'तुलसी की भाषा' (१९५७ ई०) का समग्र अध्ययन प्रस्तुत किया है। श्री शिवपूजन सहाय ने अपने एक निबंध में तुलसी द्वारा प्रयुक्त क्रियारूपों पर उपयोगी प्रकाश डाला है। इसके अतिरिक्त

जाचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने 'बुद्ध चरित तथा 'जायसी प्रयावली' की भूमिकाओं में प्रसंगवश तुलसी की भाषा का सङ्गित किंतु गभीर विवेचन प्रस्तुत किया है। तुलसी और जायसी के समय में बहुत कम अंतर है। रामचरितमानस और पद्मावत के रचना स्थल भी पास पास हैं। दोनों की भाषा भी प्रायः एक ही क्षेत्र की है। किंतु जहाँ तक उनमें प्रयुक्त अपभ्रंश शब्दों के स्वरूप एवं मात्रा का प्रश्न है, दोनों में पर्याप्त अंतर दिखायी देता है। पद्मावत पर अपभ्रंश का जितना गहरा प्रभाव है, उतना मानस पर नहीं। इन दोनों कवियों की भाषा का तुलनात्मक अनुशीलन करके इसके कारणों की मीमांसा होनी अभी शेष है। तुलसी द्वारा प्रयुक्त शब्दों के कोशनिर्माण में भी छिट पट प्रयत्न हुए हैं। इस संबंध में पहला उल्लेखनीय कार्य डा० मूयकांत शास्त्री का है। डा० शास्त्री ने सन् १९३७ ई० में 'इडेक्स वर्बोरम ऑफ़ तुलसी रामायण' प्रस्तुत किया था। 'यूनताओ के बावजूद यह ग्रंथ आज भी उपयोगी है। डा० भोलानाथ त्रिवारी का 'तुलसी शब्दकोश' भी एक सत्प्रयास है। मानस के शब्दों की गणना करके उसका प्रकाशन औरछा नरेश की आज्ञा से टीकमगढ़ के प० बालकृष्ण देव तैन्ग ने किया था। इसके अनन्तर प० रामनरेश त्रिपाठी ने गीता प्रेस की प्रति के आधार पर मानस की शब्द सख्या निश्चित की। दोनों में बहुत अंतर है। इधर श्री वागीशदत्त पाण्डेय का 'मानस सदाश कोश प्रकाश' में आया है। तुलसी साहित्य के अनुशीलन में इसकी उपयोगिता स्वतः सिद्ध है। मोहिनी श्रीवास्तव ने 'रामचरितमानस की वर्णानुक्रमिका' प्रस्तुत की है। इन सभी कार्यों में तुलसी की भाषा की प्रकृति की अवधारणा में सहायता मिल सकती है। वस्तुतः भाषा-प्रयोग की दृष्टि से भी तुलसी ने युग विधायक का कार्य किया है। उनके भाषा प्रयोग के पीछे समस्त वैष्णव भक्ति आंदोलन का संस्कार निहित है। वैष्णव भक्ति आंदोलन के प्रभाव स्वरूप परिवर्तित युगचेतना के परिप्रेक्ष्य में उनकी भाषा के अध्ययन की आवश्यकता है।

तुलसी की कृतियों के अर्थानुसंधान और टीकापरक अध्ययन की परंपरा भी पर्याप्त प्राचीन और समृद्ध है। इस क्षेत्र में दो प्रकार के प्रयत्न हुए हैं— साम्प्रदायिक और साहित्यिक। साम्प्रदायिक टीकाएँ प्रायः साधनागत निष्ठों के आधार पर लिखी गयी हैं। इनमें सर्वाधिक संख्या तुलसी की लोकविश्रुत वृत्ति 'रामचरितमानस' की टीकाओं की है। महात्मा रामचरणदास, प० शिवलाल पाठक, काष्ठजिह्वा स्वामी, प० रामकुमार, महाराज ईश्वरीप्रसाद नारायण सिंह, हरिहरप्रसाद, वैजनाथ कूर्मवशी, जानी सत सिंह, मुशी शुक्रदेव लाल, प०

रामेश्वर भट्ट, रामप्रसाद शरण, ५० विनायक राव, बाबू श्यामसुन्दरदास, अजनीनदन शरण श्रीकांतशरण, ५० विजयानंद त्रिपाठी, हनुमान प्रसाद पोद्दार आदि मानस प्रेमियो द्वारा तुलसी का मर्म उद्घाटित करने की दिशा में किया गया अशदान अपना विशिष्ट महत्व रखता है। इनमें समाहित दृष्टि में लिखी गयी टीकाओं में श्री अजनीनदन शरण की 'मानस पोष्य और 'दिनय पोष्य' टीकाएँ विशेष उल्लेखनीय हैं। तुलसी की अथ वृत्तियाँ की साहित्यिक टीकाओं में लाला भगवान दीन, बाबू श्यामसुन्दर दास, श्री विद्योगी हरि, श्री हनुमानप्रसाद पाद्दार, श्री देवनारायण द्विवेदी, श्रीकान्तशरण तथा ५० विश्वनाथप्रसाद मिश्र द्वारा प्रस्तुत व्याख्याओं का नाम लिया जा सकता है। इनका अध्ययन भी तुलसी साहित्य के अनुशीलन का एक आनुषंगिक पक्ष है। श्री त्रिभुवननाथ चौदे ने मानस की टीकाओं का शोधपरक अध्ययन प्रस्तुत किया है जो अभी तक अप्रकाशित है। वस्तुतः टीकाओं का अध्ययन स्वयं में एक महत्वपूर्ण कार्य है। इस दिशा में अभी बहुत कुछ करना शेष है। अभी तक मात्र 'रामचरितमानस की कदम रख कर ही टीकाओं का अध्ययन किया गया है। अथ वृत्तियाँ को टीकाओं का अनुशीलन अवश्य ही उपादेय होगा।

तुलसी साहित्य का सांस्कृतिक अध्ययन अधिक नहीं हुआ है। प्रायः मध्यकालीन काव्य के सांस्कृतिक मूल्यांकन के सदर्भ में तुलसी का अध्ययन भी आनुषंगिक रूप में किया गया है। स्वतंत्र रूप में तुलसी साहित्य के सांस्कृतिक अनुशीलन के सदर्भ में डा० रघुराजशरण शर्मा द्वारा 'तुलसीदास और भारतीय संस्कृति' (१९६१ ई०) उल्लेखनीय वृत्ति है। तुलसीदास की रचनाओं में मध्यकालीन संस्कृति का अक्षय कोष निहित है। पूर्व मध्यकालीन साधनाओं, विशेषतः तार्किक नायक्यी एवं निगुण संप्रदाय ने प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप में तुलसी साहित्य को कहाँ तक प्रभावित किया है, इसका सम्यक आकलन होना चाहिये। तुलसी साहित्य पर समसामयिक सामंती संस्कृति का प्रभाव भी कम नहीं है। उनकी वृत्तियाँ के विषय तथा गौरी दोना पक्षों पर लोक संस्कृति का सर्वाधिक प्रभाव है। तुलसी का मन जातीय संस्कारों के धर्षण में बहुत रमा है। उनकी प्रवृत्ति एवं प्रेरणा स्रोतों को हृदयगम किये बिना मंगल काव्य की भीभासा ही ही नहीं सकती। रामलला नहछू के मूल्यांकन में गण्यमाय विद्वानों द्वारा प्रबंध दोष, ठेठ श्रृंङ्गारिकता आदि को लेकर तुलसी की काव्य प्रतिभा पर किये गये आपेप बहुत-कुछ इस खंडित दृष्टि के ही प्रतिफल हैं।

तुलसी साहित्य के अध्ययन में कुछ ऐसे भी विद्वान् हैं, जिन्होंने उसका समग्र अध्ययन प्रस्तुत किया है। इनमें मिश्रब धु, बाबू श्यामसुन्दर दास, ५०

रामनरेश त्रिपाठी, प० रामचंद्र शुक्ल, डॉ० माताप्रसाद गुप्त, डा० राजपति दीक्षित, डा० उदयमानु सिंह प्रमुख हैं। आलोच्य कवि की रचनाओं का जितना अध्ययन हुआ है, वह उस अकूत सम्भावना को देखने हुए नगण्य कहा जा सकता है जिसको तुलसी साहित्य अपने में छिपाये हुए है। प्रस्तुत सन्दर्भ में इस बात की ओर ध्यान बरवस जाता है कि तुलसी साहित्य के मर्मज्ञा में एक ऐसा व्यक्ति भी रहा है, जिसका तथ्यपरक शोध का कोई मुखर दावा तो नहीं है, किन्तु तुलसी के जन्म-स्थान, उनके माता-पिता, कृतियों की संख्या, पाठ आदि के सम्बन्ध में प्रसंगत किये गये उसक संकेत बड़े-से-बड़े शोध प्रयत्न की प्रेरणा बन सकते हैं, और बनत रहे हैं। इसी प्रकार भारतीय धर्म साधना की सुदीर्घ परम्परा में तुलसी का स्थान रेखांकित करने से लेकर उनके अन्तर्जगत् का विशद उद्घाटन करने तक का काम उसी एक व्यक्ति के द्वारा सर्वाधिक गौरवास्पद रूप में सम्पन्न हुआ है। कहने की आवश्यकता नहीं कि यह नाम आचार्य प० रामचंद्र शुक्ल का है। इस प्रकार के आलोचनात्मक प्रयासों में तुलसी सम्बन्धी अध्ययनों का विश्लेषण और तुलसी साहित्य के अध्ययन के आधारों की परीक्षा के साथ ही उनके जीवन-वृत्त, कृतियों का पाठ, कृतियों का काल-क्रम, शैली, दशन, युग-प्रभाव, काव्य मिथ्यात, भाषा, समाज-दशन आदि विभिन्न तत्वों पर विचार किया गया है। आलोचका का निष्कर्षित मत है कि तुलसीदास महाकवि थे। सौन्दर्य और मंगल का, प्रेय और श्रेय का, कवित्व और दशन का साम-जस्य उनके साहित्य की महती विशेषता है। यह सतोष का विषय है कि जहाँ तुलसी के जीवन-वृत्त सबधों तथ्यों में किसी पर भी विद्वानों का मतैक्य नहीं है, वहाँ उनके काव्य गौरव के सम्बन्ध में सभी एकमत हैं।

तुलसी साहित्य का अध्ययन आधुनिकता के सन्दर्भ में भी किया जा रहा है। अनेक गोष्ठियों में तुलसी की प्रासंगिकता का प्रश्न उठाया गया है। यह शुभ लक्षण है। इस प्रकार के प्रसंगों का उठाया जाना ही तुलसी की प्रासंगिकता का सबसे बड़ा प्रमाण है। आधुनिकता के सन्दर्भ में किये गये अध्ययनों में डा० चंद्रभान रावत वृत्त 'तुलसी साहित्य बदलते प्रतिमान', डॉ० रमेश कुन्तल मेघ वृत्त 'तुलसीदास आधुनिक वातायन से तथा डा० गुरेश्वर वृत्त 'तुलसीदास आज के सन्दर्भ में' उल्लेखनीय हैं। आलोचकों का नवीन काव्य-दृष्टि से प्रभावित होना स्वाभाविक है और नवीन काव्य-दृष्टि से प्रभावित होने पर प्राचीन कृतियों को भी उसी दृष्टि से देखना अस्वाभाविक नहीं कहा जा सकता। हो सकता है कि इस प्रकार के अध्ययनों से तुलसी साहित्य के वे तत्व असंगत प्रमाणित हो जायें जिनका समावेश तत्कालीन परिस्थितियों के आदृष्ट से किया



गया था किन्तु यह भी सम्भावित है कि उसमें निहित ध्यानत्रयी तत्त्व इन अभिनव प्रकाश किरणों से और भी आलोकित हो जाएँ ।

तुलसी के व्यक्तित्व विश्लेषण व प्रमग म बुद्ध अनुसंधित्पुत्रा ने उनके अद्यावधि उपलब्ध विभिन्न चित्रों की प्रामाणिकता पर भी अपने विचार प्रकट किये हैं । इस क्षेत्र म कीर कवि तथा ५० विषयापप्रसात् मिथ व प्रयास विशेष महत्व के हैं । नागरी प्रचारणी समा, (वाणी) द्वारा प्रचारित भद्रवेश वाला चित्र अब प्राय सर्वमान्य हो गया है किन्तु अवधूत वेष वाला किशनगर् शैली का जटायुक्त चित्र भी आवृत्ति साम्य क कारण स्वीकार्य हो सकता है । रामानन्दीय वैष्णवों में भद्र तथा अवधूत दोनों वेष विहित माने जात हैं । तुलसी के सद्भ में उक्त दोनों वेषों क चित्रों को मा यता इस आधार पर दी जा सकती है कि एक मध्य वय का और दूसरा परिणत वय का प्रतीत होता है ।

ऊपर जो कुछ कहा गया है उसका मूल उद्देश्य तुलसीदास और उनके साहित्य स सम्बन्धित अनुसंधान कार्य की विविध शिशाओं की ओर संकेत मात्र रहा है । इस महाकवि के विराट व्यक्तित्व एवं कृतित्व ने आकलन का प्रयास अत्यन्त व्यापक तथा दीर्घकाल यापी रहा है । सब का मूल्यांकन इस छोटे-से निबंध की सीमा में सम्भव नहीं है । विभिन्न पदों से सम्बद्ध शोध-कार्यों का निर्देश करते हुए सक्षेप म उनकी उपादेयता और महत्व की ओर भी इंगित कर देना अपना लक्ष्य रहा है ।

अंत में तुलसी साहित्य क उन पक्षों की ओर विद्वानों का ध्यान आकृष्ट करना चाहूंगा जिनमें शोध के लिए पर्याप्त अवकाश है ।

तुलसी के जीवन-वृत्त पर अप्रहमुक्त होकर विचार करने की आवश्यकता है । उनके जन्म स्थान के सम्बन्ध में निणय करते हुए ऐसे भाषा प्रयोग पर ध्यान देना अपेक्षित है जो परिनिष्ठित अवधी या ब्रजी के रूप में न होकर ठेठ बोली के प्रयोग हैं । ऐसे प्रयोग उनकी आरम्भिक कृतियां में लक्षित किय जा सकते हैं । बोली म क्षेत्रीय सस्कारों की गंध होती है । इस गंध को पहचानकर तुलसी की जन्मभूमि और बाल्यकालीन निवास स्थान के सम्बन्ध में निर्णय किया जा सकता है । तुलसी साहित्य के समस्त स्रोतों की शोध अभी पूरी पूरी नहीं हो सकी है । तुलसी के व्यक्तित्व, उनकी रचना प्रक्रिया और उनकी कृतियों में परम्परा और प्रयोग के स्वरूप का यथोचित विश्लेषण भी अभी तक नहीं हुआ है । तुलसी का परवर्ती हिन्दी साहित्य पर पर्याप्त प्रभाव पडा है । इस प्रभाव की मीमांसा होनी चाहिए । तुलसी के सम्बन्ध में परवर्ती कवियां ने जो प्रशस्तियाँ लिखी हैं, वे उनके व्यापक प्रभाव की सूचना देती हैं । इन प्रशस्तियों का सक-

लन एव विवेचनात्मक अनुशीलन अपनेआप में एक स्वतंत्र शोध कार्य का विषय है। तुलसी की प्रेरणा से रामलीला साहित्य की एक अलग परम्परा ही चल पड़ी थी। कुछ ने तुलसी मानस को ही लीला के अनुसार रूपान्तरित कर लिया और कुछ ने उनके द्वारा सयोजित घटना-क्रम को ज्यो-का-त्यो स्वीकार करके स्वरचित छंदों के माध्यम में रामलीला काव्य की रचना की। तुलसी के सामाजिक सघटन सम्बन्धी कार्यों का मूल्यांकन इन लीलाओं के स्वरूप और इतिहास के अध्ययन के आधार पर ही किया जा सकता है।

तुलसी की रचनाओं के सम्बन्ध में भी अभी शोध की आवश्यकता है। 'गीतावली', 'दोहावली', 'विनयपत्रिका', 'कवितावली' आदि कृतियों को अन्तिम रूप कब मिला, इसका निणय अभी तक नहीं किया जा सका है। तुलसी के साहित्य पर तत्त्व-दृष्टि से भी विचार और अनुसंधान हो सकता है। इस महाकवि ने न केवल भारतीय काव्य-सिद्धान्तों के श्रेष्ठ उपादानों से अपनी रचनाओं को अलंकृत किया है बल्कि अपनी प्रतिभा के चल पर काव्यशास्त्र के निर्माण की प्रचुर सामग्री भी प्रस्तुत की है। उनकी कृतियों को दृष्टि में रखकर लक्षण-निर्माण करने से एक सभित काव्यशास्त्र तैयार किया जा सकता है। इस दिशा में कुछ प्रयास हुआ भी है। तात्पर्य यह है कि तुलसी साहित्य के सम्बन्ध में शोध के अगणित वातायन अब भी खुले हैं। कृतसकल्य, अध्यवसायी और विवेकशील अनुसंधाताओं के लिये आज तुलसी का साहित्य एक चुनौती है। तुलसी विषयक शोध को कृति के लिये स्वीकार करने के स्पृही अर्थार्थी अनुसंधितसुओं की एक सम्बन्धी कतार निःखायी दे रही है, किंतु प्रवृत्ति के रूप में उसे अपनाते वाले जिज्ञासु साधक विरल हैं। तुलसी ने भक्ति साहित्य के शोधार्थियों के निमित्त स्वयं कुछ अहताएँ निश्चित की हैं। मेरे विचार से उनके अभाव में तुलसी के व्यक्तित्व तथा साहित्य के अर्थ एव वाह्य स्वरूप का समोद्घाटन हो ही नहीं सकता—

भर्मी सज्जन सुभति कुदारी। ज्ञान विराग नयन उरगारी ॥

भाव सहित छोदे जो प्रानी। पाव भगति मनि सब सुख खानी ॥

भारतीय सस्कृति के सजग प्रहरी इस क्रान्तदर्शी कवि के भौतिक तथा आध्यात्मिक जीवन की गहराइयों में निहित असक्य तत्त्वरत्न अब भी इन उपकरणों से सुसज्ज खोजी की बाट जोह रहे हैं।

## विहार के रसिक सत

रसिक-रामभक्ति को यद्यपि साम्प्रदायिक रूप राजस्थान में मिला, किंतु उसका सर्वाधिक प्रसार बिहार में ही हुआ। आराध्या सीता की जन्म-भूमि होने के कारण माधुर्योपासक सता न इस प्रदेश को विशेष महत्त्व दिया। शृंगारी साधना में सख्य एवं दास्यभाव की प्राप्ति मिथिला के ही सम्बन्ध पर आधारित होने से इस प्रदेश में निवास करना रामोपासना का एक अनिवार्य तत्त्व माना जाने लगा। रसिक भावना की भाँति ही सम्बन्ध-रूपा भक्ति की भी परंपरा प्राचीन काल से ही चली आ रही थी।<sup>१</sup> श्री सम्प्रदाय के प्रवर्तक स्वामी रामानुजाचार्य के शिष्य पराशरमठ ने जनक-भावपत्र होकर 'दामाद' रूप में राम के सामीप्य-स्नान की आकांक्षा व्यक्त करते हुए लिखा था—

भातर्लक्ष्मि यथैव मैथिलजनस्तेनाध्वना ते वम  
त्वद्दास्यैकरसाभिमानमुभगैर्माकैरिहामुत्र च ।  
जामाता दपित्तत्तवेति भवती सम्बन्धदृष्ट्या हरि  
परमे प्रतियाम याम च परीचारात् प्रहृष्येम च ॥

रसिक संता ने साम्प्रदायिक रामभक्ति का प्रासाद इसी सम्बन्ध भावना की नींव पर खड़ा किया। तीर्थरूप में मिथिला की प्रतिष्ठा पौराणिक युग से ही चली आ रही थी, परन्तु रामोपासना की अन्वष्ट परम्पराएँ इस भू-भाग में १६वीं शती के उत्तरार्ध में स्थापित हुई। इस काल में रसिक राम-भक्तों का यह मुख्य केंद्र बन गया। देश के मुदूरस्थ प्रदेशों से आकर रामभक्तों ने इस प्रदेश के विभिन्न भागों में अपनी गढ़ियाँ स्थापित कर लीं। इसका एक राजनीतिक कारण भी था। अकबर के परवर्ती मुगल सम्राटों की विद्वेषपूर्ण नीति से हिंदुओं की स्थिति अरक्षित और अशांतिमय हो गई थी। औरंगजेब के शासनकाल में हिंदू-दमन पराकाष्ठा को पहुँच गया था। अयोध्या, मथुरा और काशी के प्रसिद्ध

१ रामभक्ति साहित्य में मधुर उपासना, पृ० १०५ १०६ ।

२ गुणरत्नकोष, छ० ५० ।

देवालय इसी समय ध्वस्त किये गये।' मैदानों में स्थित तीर्थों में मजानो-पासना में इतने प्रतिबंध लगा दिये गये थे कि वे साधकों के लिए सर्वथा अनुपयोगी हो गये थे। ऐसी स्थिति में रामोपासका की दृष्टि काय प्रदेशों में स्थित चित्रकूट और मिथिला जैसे रामतीर्थों की ओर गई। बिहार दिल्ली से काफी दूर पड़ता था। उसका प्रमुख रामतीर्थ जनकपुर घने जंगलों से आच्छादित था। अतः रामभक्ता को इस आपत्ति-काल में वही एक मात्र शरण्य प्रतीत हुआ। राजस्थान छोड़कर महात्मा सूरकिशोर ने इसीलिए मिथिला में आश्रय लिया था। उनके निम्नांकित छंद से तत्कालीन स्थिति का यथार्थ बोध होता है—

कलिकाल बढ़ो दल साजि चढो सब वेणु पुरान भए सिधिला ।

साधु के ठौर असाधु वसैं मुयनाअइ ठौर भए कुयला ॥

बरनाश्रम धर्म विचार गए द्विज तीरथ देव भए नियला ।

रही ठौर न ओर कहैं जग में तब 'सूरकिशोर' तकी मिथिला ॥

एक स्थान पर तो उन्होंने स्पष्ट रूप से इस देशव्यापी आध्यात्मिक अराजकता का कारण मुसलमानों द्वारा हिंदू-तीर्थस्थानों का आक्रान्त होना बताया है—

जहैं तीरथ तह जमन बास पुनि जीविका न सहिए ।

असन बसन जहैं मिले तहैं सत्सग न पैए ॥<sup>१</sup>

इस स्थिति में एकांतप्रिय साधक धीरे-धीरे अयोध्या और काशी को छोड़कर मिथिला और चित्रकूट में एकत्र होने लगे। कुछ ही दिनों में ये निर्जन स्थान सतों की छावनियों में भर गये। १७वीं शती से १९वीं शती के प्रसिद्ध रामभक्त काशीवासी काष्ठजिह्वास्वामी 'देव' के समय तक यही स्थिति रही। जनकपुर में तब तक अधिकांश सत छोटी छोटी कुटियों में ही स्थापित आराध्य युगल की अचना करते थे। विशाल मन्दिरो का प्रायः अभाव था। संभवतः इसीलिए वह तत्कालीन शासन की शक्ति दृष्टि से बचा रहा। देवस्वामी ने अपने समकालीन मिथिलावासी रसिक भक्तों की जीवन-चर्या का बड़ा ही सजीव विवरण प्रस्तुत किया है—

तिन सतन की बनिहारी जे सियाजू को नगर बसत ।

छोटी कुटिन में सियाराम की जोरी रुचिर पधारो ।

राति दिवस परिचरन प्रेम स बारह बार निहारी ।

१ विदितो जस पालिसी आफ मुगल एम्परर्स, पृ० ४२१ ।

२ मिथिला विलास, पृ० ६२ ।

३ वही, पृ० ६१ ।

सरल सुमील भाव के भूखे घरम नेम व्रत घारी ।  
 नाचत गावत परम हर्ष से बैठि बजावत तारी ।  
 कोऊ पखारत कोऊ सिंगारत कोऊ चँवर कर डारी ।  
 कोऊ गावत कोऊ अरथ बतावत ललित कथा विस्तारी ।  
 चरण शरण सब विधि से जिनके भइ अदर उजियारी ।  
 आन 'देव' इनके आंगन मे देखत घरम विचारी ।<sup>१</sup>

इससे मिथिला के विस्थापित सता के उत्साह का अनुमान लगाया जा सकता है ।

राम-भक्तों का कार्य-क्षेत्र मिथिला तक ही सीमित नहीं रहा । प्रान्त के अन्य भागों में भी उनका प्रसार हुआ । जहाँ तक शात हो सका है, बिहार में सर्व-प्रथम रसिकाचार्य अग्रदास क शिष्य श्यामदास का पदापण हुआ था ।<sup>२</sup> इन्होंने रैवासा (राजस्थान) से आकर चिरान (सारन) में गगातट पर अपनी कुटी बनाई थी । प्रसिद्ध है कि बान्यावस्था में ये सयासियों के साथ हिमालय गये, वहाँ दवी ने स्वप्न में दर्शन देकर इन्हें पुष्कर (राजस्थान) जाकर पयहारी श्रीकृष्णदास की कृपा प्राप्त करने की प्रेरणा दी थी । इसी तीर्थ में इन्होंने अग्रदास विरचित 'ध्यानमञ्जरी' का पाठ सुनाकर पयहारीजी को प्रसन्न किया, जिसके फलस्वरूप इन्हें अविरल राम-भक्ति प्राप्त हुई । इसके बाद ये रैवासा आये और सारा वृत्तान्त गुरुचरणों में निवेदन किया । अग्रदास से अनुमति प्राप्त कर इन्होंने अयोध्या होते हुए मिथिला की यात्रा की । इसी यात्रा में इन्होंने गगातटवर्ती 'चिरान' को अपनी साधना-भूमि बनाने का निश्चय किया । मिथिला से लौटकर य इसी स्थान पर बैठ गये । कहा जाता है, गुफा बनाकर इन्होंने यहाँ एक षण्ण की अचल समाधि ली थी । थोड़े ही दिनों में अपनी अद्भुत आध्यात्मिक शक्ति से इन्होंने उस प्रदेश में बड़ी ख्याति प्राप्त कर ली । यही इनकी गद्दी स्थापित हो गई ।

इनके शिष्यों में प्रमुख ये—मनोहरदास और चित्तामणिदास । मनोहरदास के शिष्य ऐनीराम का नाम अबतक इस प्रदेश में बड़ी श्रद्धा के साथ लिया जाता है । ये किसी 'बान्शाह' के कामचारी थे । कहते हैं, एक बार राजाजा से किसी विद्रोही सामंत का दमन करने के लिए जब ये दल-बल सहित जा रहे थे, तब चिरान के समीप कहीं इनकी नाव भवर में पड़ गई । उस समय इन्होंने श्याम-

१ मिथिलाविदु (काष्ठजिह्वास्वामी 'देव') से उद्धृत ।

२ रसिकप्रकाश भक्तमाल, पृष्ठ १०१ ।

दामजी की गद्दी की पूजा मानी । नाव सकुमान पार हो गई । शत्रु को पराजित करके ऐनीराम चिरान की गद्दी का दसन करने गये । इसी समय उहे पुत्र की मृत्यु का दुःख समाचार मिला । उनके मन में इस समाचार ने तीव्र विरक्ति उत्पन्न कर दी । सेना को उच्च कमचारियों के साथ विदा करके वे चिरान में रह गये । बागशाह ने इनकी कार्य-कुशलता पर प्रसन्न होकर भरण-भोषण के लिए जलपुर और जलालपुर नामक दो गाँव दिये । ऐनीराम ने उन्हें, गद्दी को, सत-सेवा के लिए समर्पित कर दिया । इनके दो पट्टशिष्य थे—भगवानदास और कृपाराम अथवा मगनीराम । मगनीराम के शिष्य मौजीराम गद्दी के उत्तराधिकारी हुए । बिहार में कतिपय रसिक-परंपराओं के संस्थापक रामगुलेला इन्हीं के शिष्य थे ।

श्यामनासजी के प्रशिष्य और चिंतामणिदास के शिष्य तजाराम ने खलपुरा में अपनी अलग गद्दी स्थापित की । मूरदास इन्हीं के शिष्य थे । इन्होंने चरणदास को अपना उत्तराधिकारी घोषित किया । चरणदास के प्रथम शिष्य रामेश्वर खनपुरा के पीठाचार्य हुए और द्वितीय शिष्य ब्रजमोहन चिरान के । इनके शिष्य एवं प्रशिष्य क्रमशः देवानास और गगानास भी यही बंस गये ।

बिहार में द्वितीय रसिक गद्दी की स्थापना मिथिला में हुई । इसके प्रवर्तक महात्मा मूरकिशोर थे । मिथिला के लुप्तप्राय तीर्थों के उद्धार का श्रेय इन्हीं को है । जीवाराम जी ने इन्हें अग्रदामजी के उहे गुरु-भ्राता कीलहदासजी का पौत्र शिष्य बनाया है । किन्तु इनकी मिथिला स्थित गद्दी की जो परंपरा इन पत्तियों के लेखक को प्राप्त हुई है, उसमें ये कीलहदास की पाँचवी पीढ़ी में आते हैं । प्रियसन महोदय ने इन्हें स० १७०३ व आमपास वत्तमान माना है ।

इनका जन्म जयपुर के एक ब्राह्मण परिवार में हुआ था । तत्कालीन जयपुर नरेश रामसिंह द्वारा गलता के आचार्य मधुराचार्य के प्रति किये गये दुर्ब्यवहार से खिन्न होकर ये सीकर चले गये और सतों की किमी जमात में रहने लगे । जानकीजी के प्रति इनकी वात्सल्य-निष्ठा थी । भावावेश में पुत्री के विग्रह को साथ लिये हुए बाजारा में ये प्रायः उनसे लिए खिलौने, मिठाइयाँ आदि खरीदने निकल जाया करते थे । इनके सहवासी साधुओं को जगमाता में पुत्री का भाव रखकर उन्हें साथ लिये इनका धूमना अच्छा न लगा । एक दिन उन लोगों ने वह मूर्ति गायत्र कर दी । मूरकिशारजी 'पुत्री' की वियोग ध्यया से उद्विग्न होकर

१ कीलहदास—परमानदास—माधवदास—खेमदास—मूरकिशोर । (मिथिला विलास का परिशिष्ट ।)

मिथिला चले आये और यहाँ साधनामय जीवन व्यतीत करने लगे। साम्प्रदायिक प्रथों के अनुसार जानकीजी की वह मूर्ति मिथिला में एक बट-वृण के नीचे पुन प्रकट हुई। उन्होंने उसे अपनी कुटी में स्थापित किया, उनके एक छन्द में इस घटना का संकेत मिलता है—

मिथिला कलि काल प्रगी सगरी तब जानकी पू षट दै उधरी ।  
सतसग विलास कथा घरचा नित आनद मगल होत शरी ॥  
अनसोधन सो पट भूपन सो मुखसपति मंरि आन धरी ।  
कह 'सूरकिसोर वृषा सिय की यकबारहि बात भवै सुधरी ॥'

जनक-भावापन्न होने का कारण ये जब कभी अयोध्या जात, तब वहाँ का अन्न-जल नहीं ग्रहण करते थे। सम्बन्ध गौरव का निर्वाह ये आजीवन करते रहे। कहते हैं, एक बार इष्टदेव द्वारा वर-याचना का अनुरोध करने पर इन्होंने 'दामाद से कुछ माँगना कुल-परम्परा के विरुद्ध बताते हुए कहा था—

निबही तिहूँ लोक में 'सूरकिसोर विजै रन में निमि के कुल की ।  
जस जाइ लग्यो सत दीप लौं कान कथा कमनीय रसातल की ॥  
मिथिला बसि औष सहाय चहै तो उपासक कौन कहैं भल की ।  
जिनक कुल बीच सपूत नहीं करैं आस दमादन का बल की ॥

इनकी एक मात्र उपलब्ध रचना 'मिथिला विलास' है। इसके सरस छन्दों में वास्तव्य भाव की अभिव्यक्ति के साथ ही तत्कालीन राजनीतिक एवं सामाजिक स्थिति की झलक मिलती है।

सूरकिसोरजी के उत्तराधिकारी एवं सर्वाधिक ख्यात शिष्य प्रयागदास थे। रसिकसाधना में ये जनकपुर के सखा भाव' के प्रवक्तव्य माने जाते हैं।<sup>१</sup> गुरु के सम्बन्धानुसूल ये भाव ने अपने को निमिवशी और सीताजी का भाई मानत था। इस नाते राम इनके बहनोई थे। इस सम्बन्ध का निर्वाह इन्होंने आजीवन किया। इनकी जन्मभूमि का पता नहीं चलता। रसिकप्रकाश भक्तमाल के अनुसार बाल्यावस्था में ही वे विरक्त होकर ये प्रयाग तथा काशी होते हुए जनकपुर पहुँचे और महात्मा सूरकिसोर से श्रृङ्गारी उपासना का रहस्य प्राप्त किया। इसके पश्चात् ये कुछ दिनों तक नर्मसखा के रूप में मिथिला के गाँवों में बालकों के साथ खेलते रहे। बड़े होने पर

१ मिथिला विलास, छ० ६३ ।

२ वही, छ० ५८ ।

३ रामभक्ति में रसिक-सप्रवाद, पृ० ४०३ ।

सूरकिशोरजी ने इहे करवा लेकर 'पुत्री' का हाल-चाल लेने के लिए अयोध्या भेजा। यहाँ इनका मन रम गया। अयोध्या के दास्य-भावना क भक्तों तथा अन्य नागरिकों में ये 'मामा प्रयागदास' के नाम से प्रसिद्ध हो गये। इनकी विरक्ति भावना इनकी तीव्र थी कि अयोध्या वास करते समय ये सदैव नि सग और निर्लस रहे। किसी के आश्रय में रहना इह पमद न था। गुप्त का शिष्या हुआ करवा ही इनके पास एकमात्र पात्र था, नीम के वृक्ष की छाया ही अकेला आश्रय और आकाशवृत्ति ही एकमात्र उत्तर-पूर्ति का साधन। उमी के नीचे द्वारहो महीने इनकी चारपाई पडी रहती थी। ये मौज में आकर गाया करते थे—

नीम के नीचे छाट पडी है छाट के नीचे करवा।

'परागदास' अबबेला सोवै रामलला के सरवा ॥

अयोध्या में कुछ वर्षों तक इस प्रकार भेदमानी करके प्रयागदाम पुन मिथिला लोट गये। वहाँ से गुप्त की अनुमति लेकर ये प्रयाग आये और त्रिवेणी-सगम पर रहने लगे। एक दिन रामचरितमानस की कथा में इन्होंने व्यास के मुख से रामधन गमन का प्रसंग सुना। बहन और बहनोई के वनवास का समाचार समाचार सुनते ही ये व्याकुल हो गये। कहते हैं, इन्होंने तत्काल ही राम लक्ष्मण और सीता के लिए तीन छोटे जूते और तीन चारपाइयों की व्यवस्था कराई और उभे सिर पर लादकर चित्रकूट की ओर चल पडे। वहाँ पहुँचने पर कुछ विनोदी साधुओं ने इनने कहा कि अब वे चित्रकूट छोड़कर पंचवटी की ओर चले गये हैं। एक क्षण की भी देर किये बिना प्रयागदास ने पंचवटी की राह ली। सतों का विश्वास है कि दोनों वनवासी राजकुमारों और अपनी 'बहन से उनकी भेंट मार्ग में ही हो गई। प्रयागदास के अनुरोध से आराध्य युगल ने चारपाई पर बैठकर जूता पहना। इस प्रकार अपनी साध पूरी कर के अयोध्या होते हुए मिथिला चले गये। इनकी कोई स्वतंत्र वृत्ति नहीं मिलती। सतों में इनके कुछ छंद प्रचलित हैं, जिनकी भाषा ठेठ अवधी है। इससे पता चलता है कि ये पडे लिखे नहीं थे। प्रयागदास के पश्चात् सूरकिशार द्वारा स्थापित गद्दी पर जनकविही आसीन हुए। इनकी परम्परा अब तक जनकपुर में चली आ रही है।

### रामप्रियाशरण

महात्मा रामप्रियाशरण सूरकिशोरजी के प्रायः समकालीन थे। इनका आत्मसम्बन्धी नाम 'प्रेमकली' था। ये माधोपुर (मिथिला) में रहते थे। इनके गुप्त 'नेहकली' नामक कोई रसिक महात्मा थे, जो उसी प्रदेश के निवासी थे।



रामप्रियाशरण मन्त्री-भात्र के उपासक थे। इ होने मानस के आदर्श पर स० १७६० मे 'सीतायन' नामक एक विशाल प्रबंध काव्य की रचना की। यह सात काण्डों में विभक्त है—बालकाण्ड, मधुरमालकाण्ड, जयमालकाण्ड, रसमालकाण्ड, सुखमालकाण्ड, रमालकाण्ड और चंद्रिकाकाण्ड। रमिक सती के सिद्धांतानुसार इसके अन्तगत जानकीजी की केवल बाल्य एवं केशोर लीलाओं का ही वर्णन है। वन गमन का प्रसंग छोड़ दिया गया है। इस ग्रंथ की एक हस्तलिखित प्रति जयपुर मंदिर (अयोध्या) में सुरक्षित है।

### रामलला

बिहार में रमिक साधकों के साम्प्रदायिक संगठन में सर्वाधिक योग महारमा रामलला ने दिया। ये लखनऊ शाखा के प्रवर्तक बालानन्द (जयपुर) के बड़े गुरुभाई थे। मिथिला की अधिकांश गढ़ियाँ इन्हीं की चेताई हुई हैं। नरघोषी, मटिहानी, मिर्जापुर, रामपट्टी बघनगरी, बमहिया, बराही, बिबरक, सिमरदेही, विसनपुर, निपनिया पुलरौनी विपरा आदि की स्थापना इन्हीं की प्रयत्न अथवा परोक्ष प्रेरणा से हुई। इन गढ़ियों के आचार्यों तथा उनके शिष्य प्रशिष्यों द्वारा बिहार में रमिक साधना का व्यापक प्रसार हुआ।

### शकरदास

पश्चिमी बिहार में प्रतापिनियों पूर्व महारमा श्यामदास ने रामभक्ति की जो स्रोतस्थिति बढ़ाई थी, उसी के परिणामस्वरूप कामाक्षीतर में अनेक पहुँचे हुए सतों का प्रादुर्भाव हुआ। 'रसिकप्रकाश भक्तमाल' के रचयिता जीवाराजजी के पिता महारमा शकरदास ऐसे ही महापुरुष थे। इनका जन्म छपरा जिले के 'इमुआपुर' नामक गाँव में हुआ था। पिता का नाम प० शोभाराम चतुर्वेदी था। वे उस क्षेत्र के प्रसिद्ध ज्योतिषी थे और उसी वृत्ति से अपने कुटुम्ब का भरण पोषण करते थे। बाल्यावस्था में ही पिता का देहान्त हुआ और वे इनकी शिक्षा-दीक्षा माता की देख रेख में हुई। जीविका का कोई अन्य साधन न होने से माता गार्ग्य पालकर कुटुम्ब का निर्वाह करती थीं। दुर्भाग्यवश, इसी समय बिहार में एक भीषण अकाल पड़ा। अयोध्या से आनेवाले किसी साधु से ज्ञात हुआ कि वहाँ सुकाल है। अतएव, गाँव के कुछ लोगों के साथ माता और बहन को लेकर वे अयोध्या चले गये। कुछ दिनों बाद माता का वही देहान्तमान हो गया। बहन को एक निश्चिंत सम्बन्धी ने यहाँ भेजकर वे बन्दीनाथ चले गये। चारों धाम की की यात्रा करके वे नैमिषारण्य आय और ध्यास वृत्ति में रहने लगे। यहीं इनका

विवाह रमन दुबे नामक किसी ब्राह्मण की पुत्री से हुआ। कुछ समय तक वहाँ रहकर ये स्त्री सहित जमभूमि को चले गये और सेती तथा पडिताई द्वारा जीवन यापन करने लगे। इनके चार पुत्र हुए—रामकिंकर, प्रयागदत्त, गंगा-गोविन्द और जीवाराम। यही जीवाराम आगे चलकर 'पुगलप्रिया' के नाम से प्रसिद्ध हुए। घर पर कुछ दिनों तक रहकर ये सपरिवार आरा जिले के 'बोध-छारा' गाँव को गये और वहाँ किसी महात्मा से दोन्ना ग्रहण की। जब पुत्र घर का काम काज समालने योग्य हो गये, तब शंकरदास गृह त्याग कर गगातट पर (छारा) जाकर रहने लगे। कुछ दिनों बाद जीवाराम भी विरक्त होकर पिता के पास चले आये और उन्हीं के शिष्य हो गये। इसी स्थान पर इ होने अपनी ऐहिक लोला सवरण की। शंकरदासजी दास्य भाव के उपासक थे। इनकी केवल एक रचना 'रामनाममाला' है जो स० १६०१ में इनकी गद्दी के उत्कालीन आचार्य महात्मा जानकीचरण के प्रयत्न से प्रकाशित हुई थी। इसकी भाषा मगही-मिश्रित भोजपुरी है।

### जीवाराम 'पुगलप्रिया'

शंकरदासजी के पुत्र जीवाराम रसिक-परम्परा के प्रमुख साहित्यकार माने जाते हैं। पक्ष भक्ति-भावों के पूर्ववर्ती एवं समकालीन रामोपासक सतों का वृत्त 'रसिकप्रकाश भक्तमाल' में संकलित कर इन्होंने साहित्य तथा संप्रदाय की स्मरणीय सेवा की। इस दृष्टि से रसिक सतों में ये विशिष्ट स्थान के अधिकारी हैं। आरम्भ में पिता की इच्छा इन्हें पंडित बनाने की थी। अतः इन्हें व्याकरण और ज्योतिष की शिक्षा दी गई। किंतु इनका मन पडिताई सीखने में नहीं लगा। इसी समय छपरा जिले के खरोल गाँव निवासी मसाराम के संपर्क में आकर इन्होंने अष्टांगयोग और स्वरोन्मय की क्रियाएँ सीखीं। शंकरदासजी को जब इसका पता चला, तब उन्होंने इन्हें योग-साधना से विरत होकर भक्ति मार्ग का अवलंब लेने की सलाह दी। पिता की आज्ञा शिरोधार्य करके ये चिरान चले आये और उन्हीं का शिष्यत्व ग्रहण कर लिया। शंकरदासजी ने रामोपासना में इनकी प्रवृत्ति देखकर अग्रदास विरचित 'ध्यानमजरी' का पाठ करने की आज्ञा दी। आगे चलकर उन्हीं की अनुमति से श्रृंगारी साधना की प्रक्रिया सीखने के लिए ये अयोध्यावासी रामिकाचार्य रामचरणदास की शरण में गये। कुछ काल तक अवध वास करके ये पुनः चिरान लौट आये और टिकारी राज्य (गया) की सहायता से पिताजी के आश्रम पर एक मठिया बनवाई तथा गद्दी स्थापित की। इनकी गणना चंद्रभागरत्न के मुख्य आचार्यों में होती है। कहाँ हैं, इनके

गुरु रामचरणनामजी की निष्ठा चाकशीला परत्व में था, किन्तु उन्होंने विशेष परिस्थिति में उनकी भाव मित्रि को देखकर चन्द्रकला-परत्व की अनुमति दे ली थी। मुगलप्रियाजी ने 'शृंगार रस रहस्य दीपिका' में इस घटना की ओर संकेत किया है। इस प्रकार रसिक-सम्प्रदाय में जीवारामजी के समय से ही उक्त घटना के अनुसार दो पृथक्-पृथक् परम्पराओं में हनुमदवतार श्रीचन्द्रकलाजी तथा भरतावतार श्रीचन्द्रकलाजी को प्रधानता दी जाने लगी। रसिक-साहित्य के प्रणयन और माधुर्य-भक्ति के प्रसार में आजीवन व्यस्त रहकर स० १६१४ में मुगलप्रियाजी ने सावेत-यात्रा की।

उत्तरी भारत व रसिक सन्तों में इनकी शिष्य-परम्परा सर्वाधिक समृद्ध हुई। उत्तर प्रदेश और बिहार में इनके गृहस्थ तथा विरक्त शिष्य प्रशिष्यो ने सैकड़ों गढ़ियाँ स्थापित की। जीवारामजी की चार कृतियाँ उपलब्ध हुई हैं—रसिकप्रकाश भक्तमाल, पदावली, शृंगार रस रहस्य और अष्टयाम-वार्तिक।

### जनकराजकिशोरीशरण

श्रीजनकराजकिशोरीशरण 'रसिक अली' जीवाराम के गुरुभाई थे। मिथिला इनकी साधना भूमि थी। इनका जन्म काठियावाड़ में सुदामापुरी के पास एक नागर ब्राह्मण-परिवार में हुआ था। लठकपन में ही किसी साधु के साथ वे त्रयोप्या चने आये। यहाँ उन्होंने महात्मा राजराघवदास से दीक्षा ले ली। वे मधुर दाम्य-भाव के उगमक थे। जनकराजकिशोरीशरण की आस्था शृंगारी भाव में थी। जन गुरु ने उन्हें रामचरण दासजी में माधुर्य भाव का सम्बन्ध लेने व लिए भेजा। मयोगवश उसी दिन विरान से जीवारामजी भी जानकीघाट पर आ गये। रामचरणदासजी ने दोनों शिष्यों को एक साथ ही माधुर्य भक्ति की दीक्षा दी। रसिक अली नाम इसी समय गड़ा। इसके अनंतर वे रस साधना में हृदयपूर्वक प्रवृत्त हुए और अष्टयाम तथा नित्याभावना में मग्न रहने लगे। इन्हीं दिनों रामचरणनामजी की प्रेरणा में टिकारी व राजा इनके शिष्य हो गये। रसिकअलीजी ने उन्हें शिष्य कनक-भवन व स्वरूप का उपदेश किया। राजा साहब ने माधुर्य भावना के अनुसार नव बना तथा अष्ट पुत्रों सहित कनक-भवन का निर्माण कराने का इच्छा प्रकट की। रसिक अलीजी ने इसे सहर्ष स्वीकार कर दिया। राजा साहब ने दस हजार रुपये कनक-भवन के निर्माण के लिए दिए। रसिक अलीजी ने बड़े समारोह के साथ कार्य आरम्भ किया। कारीगरों को सुंमंगी मङ्गूरी देने उन्हें मापनानुसूल पत्रों में विभूषित और व्यजनों में तृप्त करने, शक्या व मधुर प्रमाण वितरण करने आदि में आये से अधिक शय व्यय

हो गये। शेष रामविवाह के आयोजन में लग गये। बन्नी मुषिकल से दस हजार रुपये में अष्ट कुर्जों में से एक कुर्ज का केवल एक द्वार निर्मित हो पाया। महात्मा राजराघवदास इस अव्यय से बहुत अप्रसन्न हुए। राजा साहब भी द्विम्मत हार बैठे। अर्थाभाव के कारण काम बन्द हो गया। इसमें रसिक अलीजी बहुत विभ्रत हुए। उनका मन अयोध्या से उचट गया। वे जानौन चल गये। वहाँ उन्होंने एक निजन स्थान में बारह वर्ष तक साधनापूर्ण जीवन व्यतीत करते हुए मक्ति का प्रसार किया। इस प्रदेश में उनके हजारों शिष्य हो गए। इहीं में एक लाडलीलालशरण थे। उन्हें साथ लेकर ये पुनः अयोध्या चले आये। कुछ दिनों गुरु-संवा करके ये यहाँ से मिथिला चले गए और फिर आजीवन वहीं रहे। जनकपुर में बिहारकुंड में दक्षिण और बलवाटोल से पूर्व दिशा में स्थित 'रमिक-निवास आश्रम' की स्थापना इन्होंने ही की थी। इसी स्थापना पर स० १९०६ की मार्गशीर्ष पूर्णिमा को पाण्डित्य शरीर त्याग कर इन्होंने प्रियतम की निव्य मोला में प्रवेश किया।

मौनिकता तथा विचार स्वतन्त्रता की दृष्टि से १९वीं शती के श्रृंगारी सतों में इनका स्थान अत्यन्त है। इन्होंने रमिका के परम्परागत तत्त्वज्ञी सिद्धांत में विपरीत स्वमुखी सिद्धांत का प्रवर्तन किया था। अब तक इनकी २४ रचनाएँ प्रकाश में आ चुकी हैं, उनमें प्रमुख हैं—सिद्धान्त मुक्तावली, आत्म-सम्बन्ध-प्रदपण, राम रास-दीपिका मिथिला-विलास और अमर रामायण। अयोध्या तथा मिथिला में इनके द्वारा स्थापित गढ़िया की परम्पराएँ आज तक चली आ रही हैं।

### रामशरण

रसिक अलीजी की भाँति महात्मा रामशरण ने भी अय प्रदेश के निवासी होने हुए भी अपना मुख्य कार्य-क्षेत्र बिहार को ही बनाया और इसी पुण्यभूमि को अपना शरीर अर्पित किया। इनका जन्म अवध के तिलोई राज्य में तमसा नदी के तट पर पडितपुरवा नामक ग्राम में स० १८६४ की आपाठ शुक्ला द्वितीया को हुआ था। इनके पिता, प० रामस्वरूप ज्योतिषी थे। वे दीशवास्या में ही मातृहीन हो गये। दादी ने पालन पोषण किया। पिता ने रामदत्त नामक पडित द्वारा इन्हें कुछ सिद्धांत सिखाई। किन्तु, इनका मन पढ़ने में नहीं लगा। सोनह वर्ष की आयु में ही घर धार छोड़कर वे विरक्त हो गए। प्रयाग होत हुए अयोध्या आये और सुषीरटीया पर गरीरजाम नामक किसी साधु से मन्त्र-दीक्षा ले ली। इसके पश्चात् कई वर्षों तक ये भारत के विभिन्न तीर्थों

का पर्यटन करते रहे। इसी यात्रा में इन्होंने चित्रकूट, पंचवटी, श्रीरगपुरी, कन्याकुमारी, तिरुपति और जगन्नाथपुरी के दर्शन किये। पुरी में ही इन्होंने सीतारानीय हरिहरप्रसाद से सस्य-रस का सम्बन्ध लिया। यहाँ से वे भृगु आश्रम हाते हुए बक्सर गये। बक्सर के निकट पंचारी नामक गाँव में भी कुछ दिनों तक इनके रहने का प्रमाण मिलता है। यहाँ पर शुरसरि के ब्राह्मण राम-उत्तारसिंह इनके दर्शन को आये। सेवकों के अनुरोध करने पर इस स्थान से वे नौआही गये। इसके पश्चात् वे जनकपुर चले गये और वहाँ स्थायी रूप से रहने लगे। यही वैशाख कृष्ण चतुर्दशी (सप्तम अज्ञात) को इनकी परधाम-यात्रा हुई।

इनके रचिन दो ग्रंथ हैं—रामतत्व सिद्धान्त सग्रह और मैथिली रहस्य पदावली। प्रथम, सिद्धान्त ग्रंथ है और दूसरा समय समय पर लिखे गये भावात्मक छन्द का सग्रह। जीवन का अधिकांश विहार में व्यतीत करने के कारण, मूलतः अवधवासी होने हुए भी इनकी कृतियों में भोजपुरी का पुट अधिक मिलता है। इनकी रचनाएँ प्रायः सोहर छन्द में हैं, जिनका मुख्य प्रतिपाद्य विषय है—जनक का हल यज्ञ जानकी जन्म फुलवारी लीला आदि।

### युगलानन्दशरण 'हेमलता'

महा मा युगलानन्दशरण की साधना भूमि अयोध्या थी, किन्तु जन्म तथा गुरुभूमि दोनों बिहार ही थी। इसलिए, इनकी गद्दी के अनुयायियों का अधिकांश विहार में ही पाया जाता है। इनका आविर्भाव स० १८७५ की कार्तिक शुक्ला सप्तमी को फल्गु नदी के निकट पटना जिले के इस्लामपुर गाँव के एक ब्राह्मण-परिवार में हुआ था। बाल्यावस्था में ही माता का देहान्त हो गया। घर पर ही कृष्ण नामक विद्वान् से इन्होंने शास्त्राध्ययन किया। फारसी भाषा बिना किसी शिक्षक के स्वतः सीखी। इसी समय इन्होंने मल्लयुद्ध और सगीत का भी अभ्यास किया। पन्द्रह वर्ष की आयु में ही ये चिरान्त के महत 'युगलप्रियाजी' में मन्त्रदीक्षा लेकर विरक्त हो गये। कुछ काल तक काशी और चित्रकूट में निवास कर अयोध्या आये और १४ महीने तक मौन धारण करके घृताची-कुण्ड पर तपस्या की। इसके अनन्तर ये पुनः चित्रकूट गये और जानकीघाट पर ठहरे। रीवाँ के महाराज विश्वनाथसिंह इनकी ख्याति सुनकर दर्शनार्थ उपस्थित हुए। युगलानन्दशरणजी ने श्रद्धालु उपासना के रहस्यों की व्याख्या कर उनकी जिज्ञासा निवृत्त की। चित्रकूट से ये पुनः अयोध्या लौट आये और निर्मली-कुण्ड पर रहने लगे। इसी समय १८५७ ई० की प्रसिद्ध श्रांति हुई। इनके आश्रम

के समीप ही गोरी पल्टन की छावनी थी। शिष्या के अनुरोध करने पर भी इन्होंने वहाँ से तत्काल हटना स्वीकार न किया। कुछ ही दिना में अग्रम के निकट बड़ी सन्ध्या में गोरे सैनिकों के कैम्प पड गये। इससे अपवित्रता बढ गई अतः, उम स्थान को छोड़कर ये अयाध्या नगर में आ गये और लक्ष्मण किना पर आसन लगाया। आजीवन ग्रथ-रचना और धर्मोपदेश करत हुए इसी स्थान पर स० १९३३ की भागशीप शुक्ला सप्तमी का ये आराध्य की दिव्य साकेत-काला में प्रविष्ट हुए।

पुगलानयशरणजी सस्त्रत और हिन्दी के तो अधिकारी विद्वान् थे ही, अरबी और फारसी में भी उनकी अद्भुत गति थी। सूफी साहित्य के वे मर्मज्ञ विद्वान् माने जान थे। उनकी वेप भूषा भी सूफियों जैसी ही थी। उनकी रचनाओं की संख्या ६० के लगभग है। पूरे सम्प्रदाय में किसी अन्य कवि की इतनी विपुल राशि में रचना नहीं मिलती। इनकी प्रमुख कृतियाँ हैं—रघुवर गुण दपण, मधुरमञ्जुमाला, श्रीसीताराम नाम-प्रताप प्रकाश, उज्ज्वल-उत्कठा विलास, अर्थ-पञ्चक, सीताराम नेह-वाटिका, पारस-भाग और सत-वचनावली।

### सीतारामशरण भगवानप्रसाद 'रूपकला'

रूपकलाजी का जन्म सारन (छपरा) जिले के मुबारकपुर गाँव में थावण कृष्ण ६, स० १८८८ में कायस्थ-कुल में हुआ था। इनके पिता मुशी तपसीराम और चाचा मुशी तुलसीराम रामानदीय वैष्णव थे। उनके सम्पर्क से भगवद्भक्ति के बीज इनके हृदय में बाल्यावस्था में ही अंकुरित हो गये। आरम्भ में इन्हें कुल परम्परानुसार फारसी की शिक्षा दी गई। इसके पश्चात् प्राइमरी परीक्षा पास कर ये छपरा के राजकीय स्कूल में अगरेजी पढ़ने के लिए भेजे गये। यहाँ से इन्होंने एण्ट्रेस परीक्षा उत्तीर्ण की। इसी समय शिक्षा-विभाग में नोकरी के लिए इन्होंने आवेदन पत्र दे दिया। साक्षात्कार के समय इनकी योग्यता से प्रभावित होकर तत्कालीन शिक्षा विभाग के इंसपेक्टर डॉ० फीन ने इन्हें सब इंसपेक्टर के पद पर नियुक्त कर लिया। स० १९२४ में डिप्टी इंसपेक्टर बनाकर ये पूर्णिया भेजे गये। नोकरी करते हुए भी इनका भजन भाव चलता रहा। इनकी दक्षिण भाधुर्य भाव में थी। इस अवधि में परसा (जिला सारन) के महात्मा रामचरण-दाम से इन्हें विशेष पथ-निर्देश प्राप्त हुआ। कानान्तर में ये उन्हीं के शिष्य हो गये। स० १९३८ में इन्होंने गुडहट्टा ठाकुरवाडी (भागलपुर) के महात्मा 'हंस कला' से श्रुमान्तरण का अवधि ग्रहण किया। इनके माधना-शरीर को 'रूपकला' की सज्ञा इसी समय प्राप्त हुई। भागलपुर से बदलकर ये पटना आये। यहाँ कुछ

अलौकिक घटनाएँ घटीं जिनमें प्रभावित हाकर इन्होंने दो बार सरकारी नौकरी से त्याग पत्र दिया। किंतु दोनों ही बार शिष्या-विभाग के इम्पेक्टर तथा खडगविलास प्रेम के अध्यक्ष बाबू रामगोन सिंह के अनुरोध से इन्हें इस्तीफा वापस लेना पड़ा। स० १९५० क आश्विन मास में सवावधि समाप्त करके य अयोध्या चला आये और हनुमत् निवास में महात्मा गोमतीदास के साथ रहने लगे। स० १९६७ में प्रमुख शिष्या तथा प्रेमियों ने इनके लिए नमाघाट पर रूपकलाकुज का निर्माण कराया। इस वष की जानकी नवमी के एक मास पूर्व वे हनुमत् निवास में आकर सरयू-तट पर स्थित इस नये आवास में स्थायी रूप से रहने लगे। यहीं पर ४० वष अखण्ड अवध-वास करके ९५ वष की आयु में स० १९८९ की पोष शुक्ला द्वादशी की नश्वर शरीर छोड़कर इन्होंने प्रियतम का चिरकैर्य प्राप्त किया।

रूपकलाजी की लिखी हुई कुल १७ पुस्तकें मिली हैं। इनमें से ७ लौकिक शिक्षा सम्बंधी हैं शेष १० भक्ति-विषयक। इनकी सर्वाधिक ख्यात कृति नाभागास-जी के भक्तमाल की टीका है। प्रसिद्ध तुलसीमर्मज्ञ मर जार्ज प्रियर्सन ने इसे अपना मुख्य सदर्भ ग्रन्थ माना है। इसी से इसका महत्त्व आका जा सकता है। 'हरिनाम-सकीर्तन और जानकी जय ती में रूपकलाजी की बड़ी निष्ठा थी। इनके अनुयायी अब तक प्रतिवध उक्त उत्सवों को बड़े समारोह के साथ मनाते हैं।

### रामाजी

रामाजी छपरा जिले के निवासी थे। इनकी जन्मभूमि बिटाय नामक ग्राम मिथान के निकट स्थित है। यहीं के एक कायस्थ पारवार में स० १९२८ की भाद्र कृष्णा सप्तमी को इनका जन्म हुआ था। पिता का नाम मुशीराम लाल और माता का रामप्यारी देवी था। मुशीजी पटना की किसी अदालत में नकलनवीम थे, यहाँ वे बाकरगंज मुहल्ले में बाबा भीषमदास के स्थान पर रहते थे। वे रामाजी को अपने साथ पटना ले गये और वहीं इनकी शिक्षा हुई। छोटी आयु में ही राम ने दूल्हा रूप में इनकी भावासक्ति हो गई। अतः, खेलने और पढ़ते समय निरंतर ये विवाह लीला के ही ध्यान में मग्न रहने लगे। धीरे धीरे इनका मन पढ़ाई से उचटता गया। इसने परिणामस्वरूप एण्ट्रेंस की परीक्षा में असफल होने के साथ ही शिक्षा समाप्त हो गई। पिता ने इन्हें नौकरी करने को कहा, किंतु इनका मन उसमें भी न लगा। विवश होकर उन्होंने इनको घर भेज दिया। वहाँ कुछ दिनों तक रहने के बाद एक समीपवर्ती गाँव बगीरा में इनका विवाह हुआ। गृहस्थ जीवन व्यतीत करते हुए भी इनकी भाव साधना

में कोई व्यतिरिक्त नहीं हुआ। उस प्रदेश में रामविवाह-लीला को स्थायी रूप देने के उद्देश्य से इन्होंने मठवा ग्राम में रामरक्षाप्रसाद तिवारी के द्वार पर एक विशाल मण्डप बनवाया। इसी प्रकार अपने इष्टदेव की जन्मभूमि तथा विवाह-लीला से सम्बद्ध स्थानों—अयोध्या, बक्सर, सीतामढी और जनकपुर—की स्मृति को स्थायित्व देने के विचार से इन्होंने सरयाँ (छपरा) ग्राम में चार विवाह-मण्डप बनवाये। इससे अतिरिक्त अपने जीवन-काल में ये प्रतिवर्ष अयोध्या में श्रीरामचरितमानस का विवाहोत्सव बड़े धूमधाम से करते रहे। इनकी स्मृति का चिरतन बनाने के लिए बाद की पुजारी रामशकरशरण ने तुलसी-उद्यान (बिबटोरिया-पाक) के समीप विग्रहती भवन स्थापित किया। यहाँ अब तक रामविवाह के अवसर पर सत्ता का विशाल भोज किया जाता है। चालीस वर्ष तक पूर्वी उत्तरप्रदेश तथा बिहार के लोक-जीवन को राम की माधुर्य लीलाया से अनुरजित कर सं० १९८५ की ज्येष्ठ कृष्णा द्वितीया को रामाजी ने दिव्य दूलह की नित्यलीला में प्रवेश किया।

आधुनिक शिक्षा प्राप्त करने पर भी रामाजी ने उपास्य की मधुर लीलाओं का वर्णन करने के लिए ग्राम मोता की ही शैली अपनाई। इनकी लिखी कोई स्वतंत्र रचना नहीं मिलती। विवाह लीला के अवसरों पर इनके द्वारा गाये गए भोजपुरी के कुछ स्पुट गीत ही उपलब्ध हैं। रसिका में ये मधुर वास्य-भाव के आदर्श भक्त माने जाते हैं।

इन रससिद्ध साधकों के अतिरिक्त बिहार-प्रदेश के विभिन्न भागों में ऐसे अनेक रामोपासक हुए हैं जिनके अब केवल नाम शेष रह गये हैं। साम्प्रदायिक साहित्य में इनका जो वृत्त सुरक्षित है, वह सिद्धियाँ और चमत्कारों के गहरे कुहासे से आच्छादित है। उसके आधार पर उनके जीवन की धुंधली रूप रेखा भी प्रस्तुत नहीं की जा सकती। ऐसी दशा में हमें उनके यथोपलब्ध निम्नांकित वृत्त से ही सतोष करना पड़ता है—

१ कृपासखी—ये रसिक सम्प्रदाय के प्रवर्तक अग्रदासजी के शिष्य थे। गुरु की अनुमति लेकर य परमाराध्या की जन्मभूमि का दशन करने भियला गए। वहाँ कौशिकी नदी के तट पर जानकीनगर में इन्होंने अपनी गुफा बनाई और कई वर्षों तक साधनापूर्ण जीवन व्यतीत किया। कहते हैं, सीताजी ने प्रत्यक्ष दशन देकर इन्हें वृत्तार्थ किया था। इनकी गद्दी अब तक स्थापित है।

२ रघुनाथदास—ये जनकपुर में रत्नसागर पर कुटी बनाकर रहते थे। प्रसिद्ध है कि एक दिन इन्होंने सवियों-समेत समीपवर्ती धान के क्षेत्र में विचरती हुई स्वामिनी का साक्षात्कार किया था। इस घटना की चर्चा इन्होंने अपने शिष्य



हरेराम जीवन से की थी।

३ सोताप्रसाद—ये मिथिलावासी महात्मा दयाराम के शिष्य और सीता-मढी का गद्दी का आचार्य थे। त्रिभूत से 'मिथिला माहात्म्य' लाकर सर्वप्रथम इन्होंने ही उसके आधार पर जनकपुर की परिक्रमा स्थापित की थी। इसके अतिरिक्त ज्ञानरूप तथा सीताराम-व्याहृवेनी जैसे अनेक गुप्त तीर्थों का पुनर्घटार का भी श्रेय इन्हीं को है।

४ सूरदास—इनकी भी गणना मिथिला का लुत्तप्राय महत्व के पुत्र स्थापिका में की जाती है। ये पिवरा में निवास करते थे। कहा जाता है, सूरकिशोरजी के मिथिला-विलास का अनुसार इन्होंने उस पुरी की बृहत् परिक्रमा की रूपरेखा निश्चित की थी।

५ हरिजनदास—ये नरघोषी गद्दी (मिथिला) के महत थे। इनके पुत्र समवत रामललाजी थे। नरघोषी गद्दी की साम्प्रदायिक परम्पराओं में निर्दिष्ट हरिकृष्णदास से ये अभिन्न जान पड़ते हैं। मानसी साधना अथवा ध्यान-योग के ये निष्णात आचार्य माने जाते हैं। इनके शिष्य अक्षयरामदास भी अपने समय के प्रसिद्ध महात्मा हो गये हैं। विवाह-लीला में इनकी बड़ी निष्ठा थी। कहते हैं, रामचरितमानस में वर्णित विधान के अनुसार एक बार इन्होंने जनकपुर में बड़े समारोह के साथ राम विवाह का आयोजन किया था।

६ भिक्षुकराम—य कौल्हस्वामी के द्वारे से शिष्य और मैथिल ब्राह्मण थे। विमला नदी के तट पर बलहा नामक गाँव इनकी जन्मभूमि था। युगलप्रियाजी से रसिक भावना का सम्बन्ध लेकर ये आजीवन जनकपुर में साधना-रत रहे। भिक्षावृत्ति से जीवन यापन करने के कारण ये भिक्षुकराम नाम से प्रसिद्ध थे। हरेराम और बूदीराम इनके दो पुत्र थे। इन्होंने गाँव में ही रामजानकी मंदिर स्थापित करके आजीवन युगलसरकार की सेवा करते हुए काल-यापन किया था।

७ नत्थूदास—ये पटना के किसी रामजानकी-मंदिर के महन्त थे। इष्टदेव की माधुर्य-लीला का आयोजन में इनकी दक्षता लोक प्रसिद्ध थी। भागवत कथा में मर्मज्ञ व्यास प० जगन्नाथदास इनके शिष्य थे। नत्थूदासजी के द्वितीय शिष्य रसिक ज्ञानकीदास थे। इन्होंने रामानुजदास नामक किसी रसिक महात्मा से श्रुगारी रामोपासना का सम्बन्ध लिया था। प्रसिद्ध है कि रैपुरा ग्राम की विवाह-लीला में इन्होंने अली भाव की उपलब्धि हुई थी।

८ जनगोविन्द—ये रामानुजी के शिष्य मुरसुरानद की परम्परा में आविर्भूत हुए थे और बिहार में गंगातट पर वरग्राम में निवास करते थे। कहते

हैं कि एक बार ये मंदिर की व्यवस्था का भार शिष्य पूर्णदास को सौंपकर दर्शनार्थ जगन्नाथपुरी गये। इनके जाने के कुछ ही दिनों बाद बिहार के सूबेदार ने किसी कारणवश रुष्ट होकर उस गाँव पर चढ़ाई कर दी। पूर्णदास ने इसकी सूचना गुरु के पास भेजी। जनगोविन्द ने पत्रोत्तर में एक साखी लिख भेजी। उसे पढ़ते ही शाही सेना में आग लग गई। इससे घबराकर सारे सैनिक भाग खड़े हुए। पूर्णदास के शिष्य सहजराज और प्रशिष्य मोहनदास क्रमशः उस गद्दी के आचार्य हुए।

९ रामदास कायस्थ—ये मिथिला-प्रदेश के सैदपुर ग्राम में रहते थे। इन्होंने ही सर्वप्रथम तिरहुत में रामचरित-मानस का प्रचार किया था। प्रसिद्ध सतसेवी भगनीराम इन्हीं के पुत्र थे, जो घर में उत्पन्न मोटा अन्न बेचकर सत्ता की सेवा के लिए गेहूँ-चावल खरीद लाते थे। सुना जाता है, एक बार इन्होंने इस कार्य के लिए अपनी स्त्री के आभूषण बच डाले थे जिन्हें भक्तवत्सल भगवान् ने स्वयं आकर छुड़ाया था।

१० रामसेवक—ये प्रसादराम के शिष्य थे और समस्तीपुर के निकट किसी गाँव में रहते थे। विवाह लीला के आयोजन में ये बड़ी सचि रक्षते थे।

११ श्रीभगवान्—इनकी गद्दी आरा में थी। कुटी में कोई भक्ति नहीं लगी थी। अतः आकाशवृत्ति ही जीधिका का एकमात्र साधन थी। इनके शिष्य महन्त बालकृष्णदास बड़े सतसेवी थे।

१२ रामचन—ये जाति के क्षत्रिय थे। कुछ काल तक गृहस्थ-जीवन व्यतीत कर इन्होंने विरक्त वेप धारण कर लिया था। पहलू इन्हीं सगीत में बड़ी दिल-चस्पी थी। चित्रकूट में कई वर्षों तक सत्संग करने के पश्चात् ये मिथिला लौट आये और यही राम की भाधुर्य लीलाओं पर छन्द-रचना करते हुए रहने लगे। परसा के महात्मा प्रसादीराम इन्हीं के शिष्य थे।

१३ मिथिलादास—ये जोधारामजी के साधक शिष्य थे। मिथिला में कमला नदी के तट पर इनकी गुफा थी। कहा जाता है, उस प्रदेश के गौरव की पुनः स्थापना में इनका विशेष हाथ था।

बिहार के रसिक सत्ता द्वारा परिवर्द्धित रसिक भक्तिधारा ने उस प्रदेश की रामोपासक जनता को ही प्रभावित नहीं किया—गैरों और कृष्णभक्तों के भी हृदय में रामोपासना के बीज आरोपित किये। इसके परिणामस्वरूप १८वीं और १९वीं शताब्दी में इन संप्रदायों के अनेक अनुयायी रसिक-संप्रदाय में दीक्षित हो गये। रामचरित-मानस और राम-भक्ति में ये सभी बड़ी आस्था रखते थे। नीचे इनका पृथक् रूप से सविस्तार परिचय दिया जाता है।

### क शैव (दशनामी) रामभक्त

१ सुखरामगिरि—ये शालिग्रामी नदी के तट पर मोरिया ग्रामवासी शैव थे ।

२ ततगिरि—इनकी गद्दा मठिया गाँव में थी ।

३ केसरिगिरि—ये अगोपरि (मिथिला) के दक्षिण मडुवा नामक गाँव में रहते थे । इनके गुरुभाई कस्तूरीगिरि भी रामोपासक थे ।

४ भणिगिरि—ये सिमिनी नामक गाँव में निवास करते थे ।

५ हयभारती—इनकी कुटी कवनारि ग्राम में थी । इनके दादागुरु पमहारीजी अपने समय में सिद्धि के लिए प्रख्यात थे ।

६ गुरु बक्सभारती—ये जनकपुर में अमनौरि गाँव के निवासी थे ।

### ख कृष्णापासक रामभक्त

१ रामबयाल—ये गास्वामी हितहरिवंश की परम्पराक महात्मा वशीलालक शिष्य थे । इनकी जन्मभूमि भोजपुर-प्रदेशांतर्गत जमिरा गाँव थी । ये राम-कृष्ण में अभेद भावना रखते थे ।

२ अभयसिंह—ये भी हित-वंश में ही दीक्षित थे ।

३ सतोपमणि—ये शाकद्वीपीय ब्राह्मण और हितहरिवंश की परम्परा के शिष्य थे । भागवत के व्यास-रूप में इनकी बड़ी ख्याति थी ।

४ हरिलाल—ये पटना स्थित राधाकृष्ण-मन्दिर में रहते थे । मल्लूजीक द्वारे के शिष्य पटना-वासी हरेराम इनके अभिन्न मित्र थे । उन्हीं के प्रभाव से ये रामभक्ति की ओर आकृष्ट हुए थे ।

५ घनश्यामदास—ये हरिव्यासी सम्प्रदाय के अनुयायी थे । राधवदास नामक एक अन्य महात्मा के साथ ये गडकी के तट पर मुजफ्फरपुर में निवास करते थे । मिथिला भूमि में इनकी अगाध निष्ठा थी ।

इन महात्माओं के अतिरिक्त कुछ ऐसे भी रसिक सत हैं, जो न तो बिहार में निवासी थे और न यह प्रदेश जिनका माधना क्षेत्र ही था । किन्तु, उन्हें सिद्धि इसी भूमि में प्राप्त हुई थी । रसिकाचार्य वृषानिवास प्रेमसखी और जानकीचरण इसी श्रेणी में आते हैं । साम्प्रदायिक साहित्य में जो वृत्तांत वर्णित हैं, उससे ज्ञात होता है कि हनुमानूजी ने मिथिला में श्रीप्रसादसखी के रूप में प्रकट होकर वृषानिवासजी को दिव्य लीला का दर्शन कराया था । इसी समय से उन्होंने प्रसादसखी को अपना गुरु माना और उन्हीं के द्वारा निर्दिष्ट पद्धति से

साधना की ।<sup>१</sup>

इसी प्रकार शृगवेरपुर-वामी महात्मा प्रेमसखी ने दंडवत करने हुए चित्रकूट से मिथिला की यात्रा की थी, उस समय जानकीजी ने उनकी पिछा पर मुग्ध होकर प्रत्यक्ष रूप में उन्हें अपनी सखी कहकर अपनाया था । युगलप्रियाजी ने इस घटना का स्पष्ट उल्लेख किया है । अयोध्यावासी महात्मा जानकीचरण को भी रगभूमि की शिष्य झाँकी का दर्शन यही हुआ था । यह आश्चर्य की बात है कि इन्होंने माम्प्रदायिक परम्परा के अनुसार रसिक भाव का सम्बन्ध प्राप्त करने के पहले ही इस प्रकार की भावसिद्धि प्राप्त कर ली थी । महात्मा दयाराम से शृगारी उषामना का सम्बन्ध इन्होंने इस घटना के बाद ग्रहण किया था ।<sup>१</sup>

इन सतों के द्वारा बिहार में स्थापित पीठ आज भी शृगारी रामोपासना के प्रमुख क्षेत्र रूप में प्रतिष्ठित हैं । इस प्रदेश के निवासी शृगारी रामभक्त स्नेह-धता मोक्षलता तथा की वाणी में रसिक-साहित्य की धारा अतक अविरल, श्री सीतारामशरण रूप में प्रवाहित है । समाज के सभी वर्गों के सहस्रो जिज्ञासु आज भी रसिक सता द्वारा प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष प्रेरणा प्राप्त कर आध्यात्म-पथ पर अग्रसर होते हैं ।



१ इनको विलोकि बड़ दृष्ट को प्रभाव काहू कियो न जनाव उठि गए खलि भोर ही ।  
गुद अपमान को विषाद जिय जानि उर आनि हनुमान खले मिथिला के ओर ही ॥  
बोध बोध बास करि सीतामढ़ी आए भूमि देखे सुख पाये वृक्षलता नित मोर ही ।  
आगे खलि पुरी छवि ननन प्रत्यक्ष देखी धनुष बरस बरसावत किसोर ही ॥  
रहो फलु यासना उपासना की दृढ़ता में करत ही ध्यान प्रगटे हैं हनुमान जू ।  
धोप्रसाद रूप निज अलख ललाओ उर ताप को मिटायो जन जानिके नवान जू ॥  
कनक भवन को स्वरूप बरसायो भयो मिथिला में तसोई अवय परमान ज ।  
हस्त के मिलाइवे में हमहों को गुद पानी आसिन के मुत्थ छाहशील हैं प्रयान जू ॥

—रसिकप्रकाश भक्तमाल, पृ० ३५ ।

२ रसिकप्रकाश भक्तमाल, पृ० ६४ ।

## तुलसीमत और वर्तमान जीवन-सघर्ष

जीवन सघर्ष मानव की नियति है। अनादि काल से मनुष्य अपने को स्थापित करने के प्रयत्न में सघर्ष करता आया है। यह सघर्ष दो स्तरों पर होना रहा है। एक तो प्राकृतिक शक्तियों को अपने अनुकूल बनाने के लिए मनुष्य अपनी बौद्धिक एवं शारीरिक क्षमता के सहारे उनसे जूझता आया है, दूसरे मानव समाज के बीच अपनी स्थिति दृढ़ करने, समाज का व्यवस्थित करने और मर्यादा और मूल्य को स्थापित करने के लिए भी वह बराबर सघर्ष करता रहा है। ये दोनों ही सघर्ष भौतिक स्तर पर होते आये हैं। एक दूसरे प्रकार का सघर्ष मनुष्य आध्यात्मिक स्तर पर भी करता आया है। यह सघर्ष अपने मन का उन्नयन करने अपने शुद्ध स्वल्प को पहचानने और अपने को विश्व की केन्द्रीय चेतना (ब्रह्म) से एकाकार करने के लिए किया जाता रहा है। ये दोनों ही स्तरों पर किये जानेवाले सघर्ष एक दूसरे के पूरक रहे हैं। आध्यात्मिक दृष्टि से उन्नत मनुष्यों ने (सत महात्मा आदि) सामाजिक मर्यादा एवं नैतिक मूल्या के लिए भी अधिक-यापक सार्थक और प्रभावी सघर्ष किये हैं।

जिस समय तुलसीदास का आविर्भाव हुआ, सघर्ष के दोनो स्तरों पर विघटन, अनास्था और अवमूल्यन की स्थिति थी। आध्यात्मिक सघर्ष के क्षेत्र में, प्रवचना, अहंकार आडम्बर और पाखण्ड का बोलबाला था। अनेक मत और सम्प्रदाय प्रचलित थे। उनकी दृष्टि संकीर्ण थी। अध्यात्म साधना का क्षेत्र वचनों से भर गया था। भौतिक जीवन व्यवस्था छिन्न भिन्न हो गयी थी। वण और आश्रम दोनों की मर्यादाएँ टूट गयी थी। सारा समाज अनेक जातियों उपजातियों में बंट गया था। समाज की जीवनी शक्ति का ह्रास हो गया था। व्यक्ति के लिए निरन्तर टूटते रहने का अतिरिक्त कोई चारा नहीं था। तुलसीदास ने रामचरित-मानस के आरम्भ में उत्तरकाण्ड के कलियुग प्रसंग में और कवितावली के उत्तरकाण्ड में तत्कालीन विघटन और मूल्यहीनता का सघर्ष चित्र अंकित किया है।

आज का जीवन सघर्ष भी लगभग उसी कोटि का है जिस कोटि का तुलसी



कलियुग-वर्णन के प्रसंग में तुलसीदास ने निश्चित रूप से अपने समय की सामाजिक स्थिति एवं संघर्ष को ही प्रकट किया है—

### लोभ की प्रधानता

भये लोग सब मोह बम, लोभ प्रसे सुम कर्म ।

निशाहीनता

भारग सोइ जा कहूँ जोइ भावा ।

अव्यवस्था एवं विशृंखलता—

वरन धर्म नहि आश्रम चारी । श्रुति विरोध रत सब नर नारी ।

द्विज श्रुति वेचक भूप प्रजासन । कोई नहि माननिगम अनुसासन ॥

आर्थिक विषमता—

कलि बारहि धार दुकाल परे । बिनु अन्न दुखी सब लोग मरे ॥

उच्चवर्ग में दुराचार और पाखंड की वृद्धि—

धनवंत कुलीन मलीन अपी । द्विज चिह्न जनेउ उधार तपी ॥

कवितावली के उत्तरकाण्ड में भी तुलसीदास ने अपने युग जीवन का यथार्थ चित्र प्रस्तुत किया है । उस समय भी बेरोजगारी ऐसी ही थी जैसी आज है ।  
देखिए—

खेती न किमान को मिन्वारी न भीख बलि,

बनिक को बनज न चाकर को चाकरी

जीविका विहीन लोग सीद्यमान सोच बस,

कहै एक एकन सों कहाँ जाई का करी ।

तात्पर्य यह कि आज के जीवन संघर्ष की छाया तुलसी के आविर्भाव काल में भी विद्यमान थी । तुलसी ने 'रामचरितमानस' तथा अन्य रचनाओं के माध्यम से सभी प्रकार की वैयक्तिक एवं सामाजिक समस्याओं का समाधान प्रस्तुत किया । उन्होंने स्पष्ट रूप में अपने मत का उद्घाटन किया । अब देखना यह है कि उनका मत क्या है और आज के जीवन में वह कहाँ तक समाधान के रूप में स्वाकार्य हो सकता है ?

### केन्द्रीय आस्था राम में विश्वास

तुलसी की जीवनसाधना की चरम उपलब्धि राम हैं । राम ही उनके जीवनाधार हैं । सारे ससार को वे राममय मानते हैं । जीवन की प्रत्येक विषम परिस्थिति में वे राम का ही आश्रय लेते हैं । राम के बलपर वे कलियुग के

समस्त विरोधो एव अनीतिया को चुनौती देने हैं। वे राम से ही याचना करते हैं। वे ससार के मारे सम्बन्धो को राम के नाते ही स्वीकारते हैं। दोहावली में राम के प्रति अक्षण्ड विश्वास व्यक्त करते हुए वे कहते हैं—

रामचन्द्र के भजन बिनु, जो यह पद निर्वाण ।  
 ज्ञानवंत अपि सो नर, पसु बिनु पूँछ विपान ॥  
 जरउ सो सपति, सदन, सुख, सुहृद मानु पितु भाइ ।  
 सनमुख होत जो रामपद, करइ न सहस सहाइ ॥  
 पुय, पाप, जस, अजस के, भावी भाजन भूरि ।  
 सकट तुलसीदास को, राम करहिंये दूर ॥

तुलसी की सारी साधना इस लक्ष्य को केन्द्र में रक्क कर आगे बढ़ी है कि वे राम के हो जाएँ और राम को अपना मान लें।

सबे कहावत राम क, सर्वाहि राम की आस ।

राम कहैं जेहि आपनो, तेहि भजु तुलसीदास ॥

राम के प्रति इस अखंड आस्था का रहस्य क्या है? वस्तुतः 'राम' भारतीय मनीषा के चिन्तन की चरम उपलब्धि हैं। यह एक ऐसा 'तत्त्व' है जिससे ऊँची धारणा मनुष्य की बौद्धिक एवं आध्यात्मिक चेतना की सीमा के बाहर की बात है। राम से ऊँची सत्य की धारणा नहीं हो सकती। शुभ की चरम कल्पना भी राम हैं। सौन्दर्य का चरम रूप भी राम हैं। जिसके जीवन में 'राम' आ जाता है, वह सत्यनिष्ठ हो जाता है वह सारे संसार की कल्याण कामना में भर उठता है, उसकी वाणी, विचार और कार्य सब कुछ सुन्दर हो जाता है। राममय होकर हम सारे विकारों से परे हो जाते हैं। राम में आस्था जीवन के सर्वोच्च मूल्यों में आस्था का ही नामान्तर है। राम परम तत्त्व है। राम ज्ञानियों का ज्ञेय, ध्यानियों का ध्येय, उपासकों का उपास्य और कर्मयोगियों की प्रेरणा का मूल स्रोत है। जीवन सघर्ष ता बराबर रहेगा। पहले भी था आज भी है और आगे भी चलेगा। किसी केन्द्रीय विश्वास से प्रेरित होकर उस में बूढ़ने पर मनुष्य हार-जीत एवं आशा निराशा के द्वन्द्व को मनुष्य खेल लेता है किन्तु आस्था विहीन होकर सघर्ष करता हुआ व्यक्ति टूट जाता है, बिखर जाता है। इसीलिए आज के जीवन सघर्ष में भी किसी आस्था-बिन्दु के प्रति अर्पित होना श्रेयस्कर होगा।

## सत्यनिष्ठा

जीवन के सघर्षों को क्षेपने और जीवन को सार्थक परिणति देने के लिये



सत्यनिष्ठ होना आवश्यक है। रामकथा का प्रत्येक पात्र सत्यनिष्ठ है। राम तो सत्यसध (सत्यप्रतिज्ञ) हैं ही। गुरु वशिष्ठ के शब्दों में—

सत्यसध पालक श्रुति सेतू। राम जनम जग मगल हेतू ॥

महाराज का दशरथ महत्व भी इसीलिए है कि वे 'सत्य' को सर्वोपरि 'धर्म' मानते थे—

तुलसी जायो दसरथाहि धरमु न सत्य समान।

राम तजे जेहि लागि, बिनु राम परिहरे प्रान ॥

भरत के चरित्र की महिमा सर्वविदित है। वे सत्य के उपासक थे। जिस 'सत्य' की रक्षा के लिए राम वनवास कर रहे थे उसी सत्य की रक्षा के लिए भरत नदि घाम में पणकुटी बनाकर निवास कर रहे थे।

कहत सुनत सति भाउ भरत को। सीय राम पद होइ न रत को ॥

आज हमारे जीवन की सबसे बड़ी बिडम्बना यह है कि हम 'झूठ' को व्यावहारिक सफलता का सूत्र मान बैठे हैं।

**मर्यादाप्रियता**—व्यावहारिक जगत् विविध नामरूपात्मक पदार्थों का पुञ्ज है—जहाँ अनेक प्रकार के जीव जन्तु विवास करते हैं, अनेक स्तरों पर जीनेवाले लोग हैं। जहाँ अनेक प्रकार की सीमाओं में मनुष्य बटा हुआ है, वहाँ जीवन की सार्थकता इसी में है कि सब लोग एक-दूसरे की मर्यादा का ध्यान रखें। व्यावहारिक स्तर पर सबको एक या समान कर देने का स्वप्न अभी विश्व के किसी भूखण्ड में साकार नहीं हो सका है। ऐसी स्थिति में सबकी मर्यादा का ध्यान रखकर सह-अस्तित्व के सिद्धांत को वरीयता देना उचित होगा। तुलसी का मर्यादावाद ही आज सह-अस्तित्व के रूप में प्रचारित हो रहा है। तुलसी द्वारा चित्रित आत्स समाज में राजा प्रजा ऊच-नीच, ब्राह्मण-शूद्र, स्त्री पुरुष, सम्य-असम्य जड़ चेतन सभी अपनी मर्यादा के भीतर अनुशासित हैं। जिसने मर्यादा भंग की है उसी का मान मदन हुआ है। राम राज्य की मर्यादानिष्ठ समाज व्यवस्था का वर्णन करते हुए वे लिखते हैं—

वरनाश्रम निज निज घरम, निरत वेद पय लोग।

चलहि सदा पावहि सुखहि, नहि भय सोक न रोग ॥

× × ×

सता टिष्य मांसे मधु खवही। मनभावतो धेनु पयस्रवही ॥

× × ×

सरिता मकल बहहि बर बारी। मीतल अमल स्वाद सुखकारी ॥

सागर निज मरजाटा रहहीं। डारहि रत्न तटाह नर लहही ॥

विष्णु महि पुर मयूखहि, रवि तपि जेतनिहि काज ।

मनि सरिद र्हि जल रामचन्द्र के राज ॥

जब प्रवृत्ति अपने स्वभाव में स्थित है तो मनुष्य का मर्यादित न होना अगम्य है। 'मर्यादा' अपने स्वभाव में स्थित होना ही है। आज हम इतने व्यग्र, आकुल, प्रसन्न और उद्विग्न हैं कि सीमा और स्वभाव के सम्बन्ध में सोचना ही नहीं चाहते, आचरण तो दूर की बात है। तुलसी का मर्यादावादी आज के जीवन सघप में भी सार्थक समाधान दे सकता है।

**धर्मशीलता**—तुलसी ने वैयक्तिक और सामाजिक दोनों ही स्तरों पर धर्म को सर्वोपरि महत्त्व दिया है। तुलसी की धर्म चेतना सर्वव्यापी और शाश्वत जीवन मूल्यों पर आधारित है। रावण जैसे दुष्प शात्रु पर विजय प्राप्त करने के लिए भगवान् राम के जिस धर्म रथ का ध्वज उठाया गया है, उसके सजाजक तत्त्वों पर ध्यान देना आवश्यक है। शौर्य और धैर्य धर्मरथ के पहिये हैं। सत्य और शील उमकी रज्जा और पताका हैं। बल विवेक, दम (इन्द्रियों का बंधन में होना) और परोपकार उमके चार घोड़े हैं। ये घोड़े क्षमा वृत्ति और समता की रज्जुओं से धर्मरथ से जुड़े हुए हैं। ईश्वर का भजन ही धर्म रथ का चतुर सारथी है। वैराग्य ढाल और सतोष वृत्ति है। दान परशु और बुद्धि ही प्रचण्ड शक्ति है। विज्ञान ही धनुष है। निर्मल और स्थिर मन ही तरकस है। समता, धर्म, नियम आदि उस पर सज्जित अनेक प्रकार के वाण हैं। ब्राह्मण और गुरु के चरणों में पूज्य भाव रखना ही अजेय कवच है। इस प्रकार श्रेष्ठ मानवीय गुणों तथा शाश्वत जीवन-मूल्यों के श्रेष्ठ तत्त्वों से उस धर्मरथ की रचना हुई है, जिस पर आरूढ़ होकर राम रावण जैसे लोकपीडक और प्रचण्ड शात्रु का संहार करने में समर्थ होते हैं। धर्मरूढ़ होने से ही राम विजयी होते हैं और धर्म रहित होने के कारण ही रावण पराजित होता है। तुलसी ने समग्र रामकथा में एक ही बात पर बल दिया है कि धर्मचरण सभी प्रकार से कल्याणकर हैं। भरत के चरित्र की महिमा का उद्घाटन करते हुए तुलसी ने बार बार उन्हें सभी प्रकार के धर्मों की धुरी कहा है।

होत न भूलत भाउ भरत को । सकल धरम घुर धरनि धरत को ॥

तुलसी की वृत्तियों में व्यक्ति परिवार समाज, प्रजा, सभी के धर्म पर प्रकाश डाला गया है। यह धर्म भाव मिथ्याधर्म नहीं विवेक पुष्ट है। आज की यथार्थवादी जीवनदृष्टि भी सहसा इसका विरोध नहीं कर सकती। इसकी व्यावहारिकता और ग्राह्यता के सदम में मतभेद हो सकता है किन्तु इसकी धारणा को अस्वीकार नहीं किया जा सकता। आज के व्यापक भ्रष्टाचार को

धर्म भाव के द्वारा ही दूर किया जा सकता है। धर्म जीवन की बहुत बड़ी प्रेरणा है। तुलसी ने अपनी कृतियों में इसके मर्म को स्पष्ट करके भानवता का सच्चा पथ प्रदर्शन किया है।

### लोक व्यवहार एव नीतिमत्ता

किसी भी युग में जीवन को सुचारु रूप से संचालित करने के लिये 'नीति-मत्ता' एव लोक व्यवहार का पूर्ण ज्ञान आवश्यक है। इसके अभाव में ऊँचे-स-ऊँचा आदर्श भी आचरण में नहीं आ पाता। तुलसी की कृतियों में नीतिमत्ता एव व्यवहार ज्ञान के अनेक सूत्र लक्षित होते हैं। इन सूत्रों को दो प्रकार से उपलब्ध किया जा सकता है। एक तो रामकथा के पात्रों के आचरण से और दूसरे तुलसीदास की स्फुट उक्तियों से। तुलसी की कुछ प्रेरक उक्तियाँ उद्धृत हैं

ज्ञानी तापस सूर कवि, ऋषिदि गुण आगार ।  
 केहि कै लोभ बिडबना, कीह न यहि ससार ॥  
 सहवासी कायो गिलहि पुरजन पाल प्रवीन ।  
 कालक्षेप केहि मिलि करहि, तुलसी खगमृग मीन ॥  
 मृगनयनी के नयनसर को अस साग न जाहि ।  
 अति ऊँचे भूधरन पर, भुजगन को प्रस्थान ॥  
 × × ×  
 तुलसी अति नीचे मुखद, अन्न ऊष ओ पान ॥  
 कौउ विभ्राम कि पाव तात महज सतोप बिनु ?  
 चले कि जल बिनु नाव कोनि जतन पचि पचि मरिय ॥  
 न्यि पोठि पाछे लगे, सनमुख होत पराय ।  
 तुलसी सपति छाह-ज्यो, लखि दिन वैठि गवाय ॥  
 वचन वेप ते जे बनें, ते द्विगरे परिनाम ।  
 तुलसी जे निज ते बनें, बनी बनाई राम ॥  
 माखी, काक, उलूक, बक, दादुर से भए लोग ।  
 भल ते सुक पिक मोर से, कौउ न प्रेम पथ जोग ॥  
 मिथ्या माहुर सज्जनहि, खलिहि गरल सम सांच ।  
 तुलसी छुवत पराह ज्यो, पारद पावक आच ॥

तुलसी की कृतियों के आधार पर लोक-व्यवहार एव नीति बोधक सूत्रों का एक कोष बनाया जा सकता है। ये सूत्र आज भी जीवन सघष में हमारी सहा-

यता कर सकते हैं। इनमें मानव जीवन के अनुभव का सार तत्त्व एकत्र किया गया है। अनुभव से प्राप्त सत्य ही यथार्थ है। अतः इन अनुभूत सूत्रों की उपादेयता आज भी निर्विवाद है।

जहाँ तक राम कथा के पात्रों की नीतिज्ञता का प्रश्न है वह पद पद पर लक्षित की जा सकती है। राम, भरत, दशिष्ठ, हनुमान, जामवत, विभीषण सभी नीतिज्ञ हैं। इनके कथन एवं आचरण दोनों से ही हम बहुत कुछ प्राप्त कर सकते हैं। राम कथा के अंतगत आने वाले वे स्थल जहाँ इन नीतिज्ञों के सवादा की योजना की गयी है, इस दृष्टि से विशेष उपयोगी हैं। चित्रकूट की सभा में लोक-यवहार एवं नीतिमत्ता के श्रेष्ठ उदाहरण उपलब्ध होते हैं। इस प्रकार का अर्थ अवसर भी हैं। जहाँ कहीं जीवन की विपन्न परिस्थिति के बीच से पात्रों को गुजरना पड़ा है वहाँ उन्होंने बड़ी सूक्ष्म सूक्ष्म और नीतिमत्ता का परिचय दिया है। आज के जीवन सघप में भी हम इन स्थितियों में मानस के पात्रों द्वारा लिये गये निष्पत्तियों से लाभ उठा सकते हैं।

### सतुलित जीवन-दृष्टि

राम चरित मानस में सतुलित जीवन दृष्टि पर विशेष बल दिया गया है। तुलसी के पूव धर्म साधना एवं साहित्य रचना दोनों क्षेत्रों में सतुलित दृष्टि का अभाव लक्षित होता है। साधना के क्षेत्र में ज्ञान-साधना, कर्म-साधना, योग-साधना सभी का विकास अलग-अलग हुआ था। सभी की अपनी सीमाएँ बन गयी थीं। ज्ञान साधना ने साधकों के बीच अहंकार एवं दम का विकास किया। कर्म-साधना मिथ्यादम्बर की ओर ले गयी थी। योग साधना प्रदशन की वस्तु बन गयी थी। स्वयं उपासना के क्षेत्रों में भी अनेक प्रकार की विकृतियाँ आ गयी थीं। तुलसी ने इन सभी का सामंजस्य करते हुए श्रुति सम्मत एवं विरति विवेक-युक्त हरि भक्त पथ पर बल दिया। उनकी जीवन दृष्टि एक पूण जीवन पद्धति का निर्माण करने में समर्थ है। उसमें ज्ञान है, किन्तु अहंकार नहीं, श्रद्धा है, किन्तु अंध विश्वास नहीं, योग है, किन्तु प्रदशन नहीं, कर्म है, किन्तु आडम्बर नहीं। इस प्रकार उन्होंने सारी विकृतियों से अलग शुद्ध एवं पूण साधना पथ का निर्माण किया है। आज के जीवन सघप में यह जीवन दृष्टि की पूर्णता हमारे लिये अत्यंत श्रेयस्कर हो सकती है।

उपयुक्त प्रमुख बातों के अतिरिक्त स्पष्टवादिता, तेजस्विता, आत्मविश्वास, इच्छा, आत्मनिश्चय, सामान्य जन के प्रति स्नेह, अनासक्ति आदि अनेक ऐसे तत्व हैं, जो तुलसी की विचारधारा एवं जीवन दृष्टि के अभिन्न अंग हैं। किसी

भी युग के सघर्षशील मानव के लिए इन गुणों की आवश्यकता पड़ सकती है। इनके अभाव में हम अच्छे नेता बन सकते हैं, न अच्छे अनुयायी।

## चेतना का परिष्कार

आध्यात्मिक स्तर पर किया जाने वाला सघर्ष मनुष्य की सांस्कृतिक चेतना के परिष्कार का मूल आधार रहा है। आज की वैज्ञानिक एवं यांत्रिक सभ्यता से ऊँचा हुआ मनुष्य अध्यात्म के प्रति जिज्ञासु हो रहा है। विश्व के ऐसे राष्ट्र जहाँ वैभव की कमी नहीं है, किंतु जो भौतिक सुख सुविधाओं से ऊँच चुके हैं आज अध्यात्म तरव के रहस्य को समझना चाहते हैं। ऐसा समझा जा रहा है कि आज के सघर्षशील मानव के लिये अध्यात्म ही एकमात्र विश्राम केंद्र बन सकता है। यह हमारा सौभाग्य है कि हमारे ऋषियों और धर्मसाधकों ने बहुत पहले इस रहस्य को समझ लिया था। अध्यात्म के स्तर पर चलने वाला सघर्ष चेतना का जड़ता से सूक्ष्मता का स्पृलता से और निम्नतर मनोभूमि का उच्चतर मनोभूमि से होने वाला सघर्ष है। तुलसीदास ने विनयपत्रिका में इस सघर्ष की सभी स्थितियों को यत्न किया है। दैव की सारी भूमिकाएँ इसी सघर्ष को स्पष्ट करती हैं। इस सघर्ष की समाप्ति उनके पूण मनोप्रायन के साथ हो जाती है। इसकी पहचान मात्र इतनी ही है कि सघर्षशील साधक का मन प्रभु के चरणों में लीन हो जाना है। वह ससार से विमुख हो जाता है। उसका सारा कर्मप मिट जाता है। वह हानि-लाम, सुख-दुःख, उभय स्थितियों में अविचल रहकर समरसत्व प्राप्त कर लेता है। विनय पत्रिका में तुलसी ने कहा है—

तुम अपनायो तब जानिहीं जब मन फिरि परिहै ।

जेहि सुभाव विपयनि लग्यो, तेहि सहज नाथ सा नेह छाडि छल करिहै ॥

हरपिहै न अति आदरे, निदरे न जरि मरिहै ।

हानि लाम दुख सुख सबै सम चित हित अनहित, कवि कुचान परिहरिहै ॥

मनका यह उपग्रयन ही तुलसी का लक्ष्य नहीं था। वे मनके इस परिष्कार के बाद उससे प्रभु के प्रति पूर्ण रागात्मक समर्पण भी चाहते थे। वे आप कहते हैं।

प्रभु गुन सुनि मन हरपिहै नीर नयननि डरिहै ।

तुलसीदास भयो राम को विस्वाम प्रेम लखि आनन्द उमगि उर भरिहै ।  
राम के प्रति यह पूर्ण समर्पण ही तुलसीदास के आध्यात्मिक सघर्ष की चरम स्थिति है। मनका उपग्रयन चेतना का परिष्कार और समरसत्व प्राप्त करने के

बाद किसी उच्चतम मूल्य के प्रति समर्पण को आज भी आध्यात्मिक स्तर के सघर्ष की चरम उपलब्धि माना जा सकता है ।

तात्पर्य यह कि तुलसी ने जिन जीवनादर्शों का प्रतिपादन किया है, और जिन जीवन मूल्यों को अपने मत का मूलाधार माना है, वे आज भी हमें प्रेरणा और शक्ति दे सकते हैं । तुलसी का मत गम्भीरता पूर्वक विचार करने पर आज भी प्रासंगिक है । अतः एक बाह्य दृष्ट अथवा सघर्ष जीवन की प्रक्रिया है, लक्ष्य नहीं । इस सघर्ष की अनिवार्यता स्वीकारी जा सकती है । इसके सातत्य की बात कही जा सकती है, किन्तु इसे जीवन की उपलब्धि या लक्ष्य नहीं माना जा सकता । श्रद्धा और विश्वास के बिना किसी सघर्ष में विजय नहीं प्राप्त की जा सकती । वह श्रद्धा और विश्वास ही तुलसी का सम्बल था । उनके मत के मूल में, उनकी जीवनपद्धति के क्षेत्र में और उनके समस्त जीवन सघर्षों की प्रेरणा भूमि के रूप में श्रद्धा और विश्वास की सर्वोपरिता को अस्वीकार नहीं किया जा सकता । श्रद्धा ही आनन्द की भूमिका तक ले जाती है । आज का सघर्षप्रस्त मानस भी अन्तिम निणय के लिये श्रद्धा और विश्वास का सहारा लेता है । उसे लेना पड़ता है । भले ही यह श्रद्धा किसी परीक्षा, पूण का अखण्ड, अनादि, अनन्त, सत्ता में न होकर कोटि-कोटि जना के प्रति ही इतिहास के प्रति हो या किसी व्यवस्था-विशेष के प्रति हो ।



## मामा प्रागदास के कुछ नवप्राप्त छंद

मामा प्रागदास' मखाभाव के रामोपासक थे। उनकी सख्यासक्ति बिलक्षण थी। भक्तिशास्त्रो म निर्दिष्ट नर्म, प्रिय और सुहृद् भावो के कगार उसकी वेगवती धारा को बांध रखने मे समर्थ न हो सके। तिरहुत के लुप्तप्राय तीर्थस्थलो के उद्धारक, जनक-भावापन्न महात्मा सूरकिशोर से दीपा ग्रहण कर निमिवशी कुमार के रूप म रघुवशी रामचन्द्र मे साले-बहनोई का सम्बन्ध जोड़ इन्होंने मिथिला अवध के पुराने नाते को अपने भावामृत से सींचकर फिर से हरा कर दिया। सम्बन्ध की पुष्टि के लिए ही ये यात्रा क अनेक कष्ट सहते हुये अयोध्या आये और कनक-भवन मे अपनी दिव्य बहन का नित्य दर्शन करते हुए उसी क ममीप एक नीम के पेड के नीचे कई वर्षों तक कठोर साधना की। 'रामलला के सरवा होने से अयो-यावासी इहें मामा कहन थे। इनके जीवन-काल म ही यह उपाधि इनके नाम क साथ जुड गई और ये सबन मामा प्रागदास के नाम से प्रसिद्ध हो गये।

युगलप्रियाजी ने रसिकप्रकाश भक्तमाल म इनकी लोक यात्रा के विषय में केवल इतना लिखा है कि ये महात्मा सूरकिशोर के शिष्य थे और सखाभाव से सीताराम की उपासना करने थे। इनकी विरक्ति-भावना इतनी तीव्र थी कि लोक सपर्क की दूषित प्रवृत्तियो से बचते हुए ये आजीवन नीम के पेड के नीचे आसन जमाये रहे। लेटने के लिए एक चारपाई और पानी पीने के लिए एक

- 
- १ 'रामभक्ति मे रसिक सप्रदाय' (पृ० ४०२-४०३) मे इनका परिवय प्रयाग दास नाम से दिया गया है, किंतु इपर इनकी भी रचनाए प्राप्त हुई हैं, उनमे प्रागदास नाम आया है। 'रसिकप्रकाश भक्तमाल' मे इनके नाम का यही रूप उल्लिखित है। लोक-व्यवहार में भी तीधराज प्रयाग को 'प्रागराज' अथवा 'परागराज' कहा जाता है। संभवत, इसीलिए मामा 'प्रयागदास' ने अपनी ठेठ रचनाओं में परागदास' छाप रखी है और साहि त्यिक कृतिमें मे छदानुरोध के कारण 'प्रागदास'।—ले०

करवा के अतिरिक्त इन्होंने कभी अपने पास कोई अय वस्तु रखी ही नहीं। (किसी रामायणी से) राम वनवास के प्रसंग में युगल राजकुमारों के सीता सहित नये पाँव वन जाने का वृत्तांत सुनकर इन्हें बड़ा दुःख हुआ। भावावेश में इन्होंने तीनों पयिकों के लिए जूते बनवाये और उन्हें सिर पर रखकर अपने अलौकिक सम्बन्धियों को ढूँढते हुए पचवटी जा पहुँचे। वहाँ आराध्य ने साक्षात् प्रकट होकर इनके द्वारा अर्पित जूते पहने।<sup>१</sup> वामुदेवदास ने पाद-टिप्पणी में छन्द की टीका में इन प्रसंगों को स्पष्ट करत हुए कुछ नये तथ्य प्रस्तुत किये हैं। उनसे ज्ञात होता है कि एक बार प्रयाग में त्रिवेणी-तट पर निवास करत हुए इन्होंने कई शैवमतानुबन्धियों को शास्त्राय में पराजित कर अपना शिष्य बनाया था।

‘रामभक्ति में रसिक सम्प्रदाय’ के लिए सामग्री सकलत करने समय इन पक्तियों के लेखक को बहुत प्रयत्न करने पर भी, इनकी कोई लिखित रचना उपलब्ध न हो सकी थी। अयोध्या और मिथिला के सतों में मौलिक परंपरा से प्रचलित केवल चार छंद मिले थे। अतः उक्त प्रथम में इनकी काव्य-शैली के उदाहरणस्वरूप उन्हें ही उद्धृत कर सतोष करना पड़ा था। इनकी भाषा ठेठ अवधी है। प्रागदास की काव्य प्रतिभा के विकासात्मक अध्ययन के लिए वे चारों छंद नीचे दिये जाते हैं—

नीम के नीचे छाट पड़ी है छाट के नीचे करवा ।  
‘प्रागदास’ अलबेला सोवै रामलाल के सरवा ॥

१ भाविक सूरकिशोर के प्रागदास साधक विराह ।  
प्रिय सबध उबार सख्यपद निमि बसो हैं ।  
नीमतरे नवछाट विद्धी करवा बिलसो हैं ॥  
तीन श्याम अनुराग अवधि पनहीं सिरपारी ।  
पचवटी वन बुझगली भेंटे पिय प्यारी ॥  
बचन भावयुत कहि सरस पहिराई पनही सुखद ।  
भाविक सूरकिशोर के प्रागदास साधक विराह ॥

—रसिकप्रकाश भक्तमाल, पृ० २२ ।

२ रसिकप्रकाश भक्तमाल, पृष्ठ २३ ।



मुडियो ने परपच रचा है हमें काम का मेलो म ।  
 'परागदास रघुवर को लैके पडे रहैये देला म ॥'  
 'परागदास' जो पीपर होत राघो होते भुतवा र ।  
 आठ पहर छाती पर रहते वै दसरथ के पुतवा रे ॥  
 घुनि घुनि केसवा कहैं महेमवा पार न पावै ससवा ।  
 'परागदास पहलदवा के कारन रघवा होइये बघवा ॥

मरी यह धारणा थी कि प्रागदासजी की अय वृत्तियाँ इनके फक्कडपन और भ्रमणशीलता के कारण नष्ट हो गई होगी । किंतु इधर अकस्मात् निष्वाचार्य रामसखे की रचनाआ के प्राचीन हस्तलेखों में प्रागदास के तीन छंद प्राप्त हो गये हैं, जिनमें दो सवैये हैं और एक पद । वे इस प्रकार हैं—

दामिनी सी सिय सग विराजति मोती हिए रग पांनि छए है ।  
 हेम जनेऊ मनीं धनुइद्र की पीत पिछोरी के रूप जए हैं ॥

१ मामा प्रागदास मेलों को बरागियों द्वारा भोली भाली जनता को ठगने के लिए रचा हुआ प्रपच कहते थे । इसलिए, अयोध्या में जब कार्तिक पूर्णिमा तथा रामनवमी के अवसर पर साखों की भीड़ होती थी, तो ये नगर छोड़कर रामघाट के आगे सरयू नदी के किनारे जाकर रहा करते थे । उस समय राम का एक चित्र इनके साथ रहता था । मेला समाप्त होने पर ये पुन अपने पुराने आसन पर नीम के पेड़ के नीचे चले जाते थे । —ले०

२ इहीं के साथ इनके गुरु सूरकिशोरजी का भी निर्मांकित छंद मिला है  
 आसपास सहृषरी नूपुर शनकार कर,  
 चपा कसो कली मानो फूली बेसमान की ।  
 सोंधे की लपट दपटें भरि भवरन की,  
 बीनाबिक बजन लागे जघटि कलगान की ॥  
 गोखन शरोखन के परवा उधारि दीहे  
 सतत सुभाइ सखी कोटि सतभान की ।  
 मिटिगी अमगल भयो मगल 'किसोर सूर'  
 अगमगाइ उठयो महल जायो जब जानकी ॥

बैन कट्टे मुवतें अमीधार सो दीनत कौ बरसाइ दए है ।  
 भावें सदा 'प्रागदास' मपूर कौ रामलला घन स उनए है ॥  
 म्याही छिताई ललाई लिए जहा जात निछावर मैन घन है ।  
 कुहन लान ससैं अणकें शिग पीने कपोल मुगध सन है ॥  
 मोती बिराजति नामिका में बरतौ कहा रूप के तव् तने है ।  
 सोहैं सदा 'प्रागदास' कौ भावत रामलला जू ने नैन बन है ॥  
 आछे प्यारे रामजी लला । तुम्हारे बदन पर अनत कला ॥  
 मुख म बीरो नैना विमाल । जित चितए तित करे निहाल ॥  
 जहाँ पढ भक्तन पे भीर । हरपत आवें सिय रघुवीर ॥  
 छोटीसी घनुम्याछाटी छोटीतीर । खेलन निकसे सरजू के तीर ॥  
 'प्रागदास' चत सरजू तीर । बीच में मिलि गण सिया रघुवीर ॥

इन तीनों छंदों में 'प्रागदास' की छाप और अभिव्यक्त भाव मामा प्रागदास की पूर्वप्राप्त रचनाओं से सर्वथा अलग हैं। ऊपर से देखने में यद्यपि दोनों कवियों की भाषा शैली में कुछ अंतर दिखाई पड़ता है, किंतु मामाजी की गलदशु भावुकता और पांडित्य के प्रकाश में उनका समीपात्मक अनुशीलन करने पर यह भ्रांति दूर हो जाती है। प्रस्तुत छंदों में उन्होंने अपने आराध्य 'रामलला' का स्मरण जितनी आत्मीयता तथा तमयता के साथ किया है, उसमें उनकी प्रगाढ़ सख्यासक्ति स्पष्ट झलकती है। रहा अभिव्यजना प्रणाली एवं भाषा-विषयक अंतर। इस सम्बन्ध में अपना यह विचार है कि प्रागदास की भा रचनाएँ पहले मौखिक परम्परा से सकलित की गई थीं, व समय-समय पर मस्ती में कही गई उनकी उत्तिया-भात्र हैं, जो अपनी विचित्रता के कारण इतनी आकर्षक हो गई थीं, कि सत्-समाज उह श्रुति-परंपरा में सुरक्षित किये रहा। उनकी ठेठ अवधी अयोध्या के दीर्घ निवास का प्रसाद है। इनके अतिरिक्त उन्होंने तत्कालीन सर्वाधिक लोकप्रिय काव्य-भाषा घज में भी सरम रचनाएँ की थीं, किंतु उनका अधिकांश प्रागदास की यायावरा वृत्ति के कारण तथा गद्दीधारी सत् न होने से नष्ट हो गया। प्रतीत होता है कि सजातीय सख्योपासकों ने उनकी वृत्तियों को सुरक्षित रखने का प्रयास किया था। अठारहवीं मती के प्रसिद्ध सख्याचाय रामसखे के हस्तलेखा के साथ प्रागदास के उपयुक्त छंदों की प्राप्ति इस धारणा की पुष्टि करती है। हो सकता है, खोज करने पर इसी स्रोत से उनकी कुछ ओर वृत्तियाँ प्रकाश में आवें।

शिवसिंह सेंगर और प्रियसन ने इनके गुह मूरकशोर का समय सन्

१७०४ ई० के आसपास निश्चित किया है।<sup>१</sup> इस आधार पर दूहे अठारहवीं शती के प्रथम धरण में विद्यमान मानना असगत न होगा ।

- 
- १ इन बोनो विद्वानों में सर्थप्रथम सेंगरजी ने इनके एक कवित्त में, जो 'सरोज में उद्घत है, 'शिशोर सूर' द्वाप देखकर भ्रमवश जसे ही इनके नाम का शुद्ध रूप मान लिया था । सरोज के दूसरे छंद में बी गई इनकी धास्तविक सत्ता 'सूरकिशोर' की ओर उनका ध्यान नहीं गया । प्रियसन साहब ने इस विषय में सरोज का ही अनुगमन किया है । देखिए, शिवसिंह सरोज (सप्तम संस्करण) पृ० ३६४ तथा 'द माडर्न वर्नाक्युलर लिटरेचर ऑव हिन्दुस्तान, (हिन्दी अनु०) पृष्ठ २१४ ।

## बाबा लक्ष्मीनारायणदास पौहारी

गारखपुर देवरिया जनपद भगवान बुद्ध की निर्वाण मूर्ति और गोरखनाथ की साधना भूमि के रूप में विख्यात है। भारतीय धर्म साधना के इतिहास पर दृष्टिपात करने से विदित होता है कि यह भूभाग प्राचीन काल में ब्रह्मवाह्य साधनाका प्रधान क्षेत्र रहा है किन्तु मध्यकाल में यह भागवत धर्म का मुख्य गढ़ बन गया। सरयूपारीण ब्राह्मणा की आदिभूमि के रूप में इसकी प्रतिष्ठा इसका सर्वाधिक पुष्ट प्रमाण है। इसके फलस्वरूप वैदिक कर्मकांड, उपासना तथा ज्ञान के प्रसार का द्वार धुन गया और सस्मृत के अभ्ययन-अध्यापन का ध्यापक रूप से प्रचार हुआ। अयोध्या से निकट होने के कारण रामोपासना यहाँ के लोकधर्म के रूप में चिरकाल से प्रतिष्ठित थी किन्तु इसके सांप्रदायिक संगठन का श्रेय महात्मा लक्ष्मीनारायण दास पौहारी को है। पौहारी जी अयोध्या के प्रसिद्ध रामभक्त विदुकाचार्य महात्मा रामप्रसाद की परंपरा में उनकी चौथी पीढ़ी में विराजमान महात्मा अवध प्रसाद जी के शिष्य थे। इनका प्रारम्भिक नाम लक्ष्मी नारायण था किन्तु साधना काल में अन्न त्याग कर सदैव दुग्धपान एक फलाहार वृत्ति से जीवन यापन करने के कारण ये पौहारी (पयहारी) नाम से प्रसिद्ध हुए।

पौहारीजी का जन्म देवरिया जिले में राप्ती नदी के तट पर स्थित महेन नामक ग्राम के एक ब्राह्मण परिवार में हुआ था। इनके पिता का नाम प० शिवराम पाण्डेय था। लक्ष्मीनारायण जी के घर के निकट ही 'महेन्द्रनाथ' महादेव का मंदिर था। बायावस्था में ही इनकी उस विग्रह में श्रद्धा हो गयी और ये प्रायः दिन भर मन्दिर में ही शिव नाम का जप किया करते थे। बड़ होने पर पिता ने इनका विवाह कर दिया किन्तु शाहूस्व्याश्रम में उनकी वृत्ति नहीं रही और ये उत्तरोत्तर विरागो-मुख होते गये।

एकबार की बात है, चंद्रग्रहण के अवसर पर ये अयोध्या गये। वहाँ नारायण नामक किसी महात्मा से इनकी भेंट हो गई। उनके सम्पर्क से इनके हृदय में रामभक्ति का बीज बपन हुआ। वहाँ से घर आने पर इनकी चिरंति

भावना और भी उद्दीप्त हो गयी। फिर तो ये माता-पिता, भाई-बन्धु, वित्त वनिता—सबमे नाता तोड़कर 'भहे द्रनाथ के मन्दिर में ही स्थायी रूप से निवास करते हुए भजन करने लगे। इस अवधि में ये फलाहार करते थे और कभी कभी निर्जल व्रत भी रखते थे। इस प्रकार कुछ ही दिन व्यतीत हुए थे कि एक दिन इन्हें आकाशवाणी हुई कि 'हे प्रिय ! तुम्हारे मन में सियाराम के प्रति अगाध श्रद्धा है अतएव तुम सप्रेम रामस्मरण ही करो।' भगवान शंकर की यह आज्ञा पाकर लक्ष्मीनारायण ने वन की राह ली। कहते हैं कि वहाँ एक दिन ये गायत्री मन्त्र का जप कर रहे थे। इतने में एक हाथी आया। उसने इनको सूझ से उठा कर अपने कंधे पर चढ़ा लिया। वह इन्हें लेकर पहले पैकोला गया। वहाँ से बैकुण्ठपुर और बडहलगज होता हुआ उसने पुनः इनको पैकोला लाकर उतार दिया तथा स्वयं लुप्त हो गया। पयहारी जी की परंपरा के रामभक्तों का विश्वास है कि हाथी रूप में स्वयं श्री कृष्णदास जी पयहारी पधारें थे। इसी घटना का आधार पर सप्रणय में उक्त तीनों स्थान पूज्य माने जाते हैं और वहाँ इस शाखा की गद्दियाँ स्थापित हैं।

इस घटना के उपरान्त लक्ष्मीनारायण जी गुरु दीक्षा के लिए अयोध्या गये। वहाँ बना स्थान के तत्कालीन महान् महात्मा अवध प्रसाद ने दीक्षा प्रग्रहण की। अतः साध्य से भी अवध प्रसाद जी के इनके गुरु होने की बात पुष्ट होती है—

सनगुरु हों मैं अधम भिक्षारी ।

कामक्रोध मोहि अधिक सतावत लोभ मोह अति भारी ॥

ताने आज कियो शरणागत सुनि लीजे असुरारी ॥

अवध प्रसाद अवध के वासी देखो नयन पसारी ॥

लक्ष्मीनारायण दास तुम्हारे भारत बचन उचारी ॥'

दीशोपरांत ये कुछ समय तक अयोध्या में ही रह कर गुरु सेवा और साधु सगति में लीन रहते हुए साधना करने रहे। इनके एक पद से यह प्रकट होता है कि इन्हें ज्ञान भी यही प्राप्त हुआ था—

हों मैं हरि चरनन की दासी ।

ता दिन ते हरि चरनन आये भेटल सकल उपासी ।

गुरु की सेवा साधु की सगति मिलि गय मोहि अविनासी ॥

तब ते काम क्रोध भय छूटेउ होइ गयेउ सुख रासी ।

ज्ञान विराग आगे बहु बाढ़त भक्ति भई हिय बासी ॥

ह्रीं अनुराग परम पद पावत भये अवध के वासी ।  
तन ते लोभ भयो नहि नृप को जानेउ निजपुर वासी ॥  
प्रभु कर कमल सीम पद परसत जम-मुख लागत मासी ।  
अस सयोग पूर करि रघुपति सीय लखन सग वासी ॥  
लक्ष्मी नारायण दाम तुम्हारो छूटि गइल जग लासी ॥

इन्की साधना से पूर्णत सतुष्ट होकर महात्मा अवध प्रसाद जी ने इन्हें रामभक्ति का प्रचार करने की आज्ञा दी । गुरु आज्ञा पाकर ये भवसागर में डूबते हुए प्राणिया के उद्धारार्थ निकल पड़े । विचरण करते हुए ये देवरिया जिले में पैकोली के समीपस्थ गुर्ना नदी के तट पर आये और वही 'ठकुरही' के वन प्रदेश में छ वर्ष तक घोर तपस्या करन रहे । वहाँ से सवत् १८६० में ये पैकोली आये और एक बरगद-वृक्ष के नीचे कुटी बनाकर रहने लगे । पैकोली के निवास काल में पैहारी जी की कई सिद्धियों की विवदितियाँ प्रचलित हैं । अनेक औषडो डाकिनी-शाकिनी आदि पर विजय प्राप्त करने की कहावते आज भी उक्त भूभाग में श्रद्धा के साथ कही और सुनी जाती हैं ।

सवत् १८७७ में पाहारी जी ने सता की जमात के साथ चित्रकूट की यात्रा की थी । वहाँ कुछ दिन रहकर जानकी कुंड, कामदेगिरि आदि स्थानों का दर्शन करके पुन पैकोली लौट आये । इससे अतिरिक्त हरद्वार, ऋषीकेश, आदि स्थानों पर भी इन्होंने कुछ समय तक निवास किया था ।

कहा जाता है कि एक बार ये अपने भक्तों के साथ धर्म प्रचारार्थ भ्रमण करते हुए नेपाल के तराई अंचल में पहुँच गये । वहाँ इन्हें एक महाजन मिला । उसके एकमात्र पुत्र का सप काटने के कारण दहात हो गया था । उसने बड़े ही आतिभाव से पौहारी जी से सत्र समाचार कह सुनाया और शव को लाकर उनके सम्मुख रख दिया । पहले तो इन्होंने उमें भक्ति और ज्ञान का उपदेश दिया किंतु उसने एक न सुनी । वह पुन पुन मृत बालक को प्राणदान देने की प्रार्थना करता रहा । अंत में इन्होंने उसकी स्थिति पर दया करके हरि-स्मरण करने पाँच बार मंत्र पढ़ा । दुर्भाग्य से मंत्र का कोई प्रभाव नहीं पड़ा । तब पौहारी जी ने दुःखित होकर यह पद गाया—

प्रभु तुम बंदी छोर कहायो ।

वृ पुराण सत अस गावत शिव सारद मन भायो ।

जह जह गाड़ परत जीवन पर तह तह बार न लायो ।

गज के काज तुरत उठि घाये द्रोपदी चीर बढायो ।

पाँचो पाँडव लध्याष्टहर्म तहाँ मणि खम को खोनि जियायो ।

नामदेव के भवन छ्वायो तिलोचन दरसायो ।  
 सभ फारि हरनाकुस मारे जन प्रह्लाद वचायो ।  
 अम्बरीष व्रत राखि लियो है दुर्वासा दुख पायो ।  
 चक्र मुदशन जारन लाग्यो त्राहि त्राहि गोहरायो ॥  
 एकद्वार अजामिल तुव जन नारायण सुधि पायो ।  
 जम क दूतनि मारि निकार्यो निजपुर वेगि बोलायो ॥  
 कीकलऊ मह वृद्ध भयो हो की, चक्र चोरायो ।  
 की कहूँ राप्स बाहि लियो है ताते सुधि बिसरायो ।

मत्त के इस कातरतापूर्ण पद की ध्वनि कर्णासिंधु भगवान के काना मे पड़ी और उनकी कृपा से महाजन का लठका उठकर बैठ गया । तब पौहारी जी ने इन पक्तियों को रच कर पद को पूरा किया—

गावत गावत पार न पावत निसिदिन बनि छोडायो ।

‘लक्ष्मीनारायण जन यहि अवसर प्रभुता देखि परम सुख पायो ।

पर्यटन समाप्त होने पर यह पैकोली लौट आये और वही आजीवन निवास करते रहे । इनका साकेत वास आपाढ शुक्ला तृतीया, सोमवार सबत् १६०८ को हुआ ।

पौहारीजी की गहियाँ अब भी पैकोली, बैकुण्ठपुर और बडहलगज में चल रही हैं । इनमे व्रतोत्सव मनाने की जो परिपाटी पौहारीजी ने चलायी थी वह अब भी उसी रूप मे प्रचलित है । आज भी पैकोली मे रामजन्म तथा कृष्णाष्टमी बडहलगज मे रथयात्रा और बैकुण्ठपुर में राम विवाह का उत्सव बडे धूम से मनाया जाता है । पौहारी जी के उत्तराधिकारी अपने पूर्वाचार्यों की भाँति आज भी विरक्तिपूर्वक कालयापन करते हुए राममक्ति का प्रचार कर रहे हैं । इस प्रकार हम देखते हैं कि गोरखपुर देवरिया जनपद के आध्यात्मिक इतिहास मे पौहारी जी का वही स्थान है जो मध्ययुगीन धर्मसाधना के इतिहास मे गलता गद्दी (राजस्थान) के प्रवक्त श्री कृष्णदास पयहारी का था ।

**परिशिष्ट**





## परिशिष्ट मीराबाई के रामभक्तिपरक पद

### १ रामचरित

(क) प्रसंग—लका पर राम की चलाई और उससे भयभीत मदोदरी द्वारा रावण की भत्सना—

फीर गई राम दुआइ लका मे फीर गई राम दुआई रे ।

बेहत मदोदर मुन पीया रामण ऐमी कुबत चलाई रे ॥

मीरा के प्रभु गिरघर नागर चरण कमल लपटाई रे ॥<sup>१</sup>

(ख) राम की अष्टयाम लीला—राम की शयनकक्ष में जाने की तैयारी और सखियों द्वारा उनका शृङ्गार। निम्नलिखित पद शयन समय की आरती का है। शृंगारी रामभक्ति की तत्सुखी शाखा में, प्रिया प्रियतम की विहार लीला का जालरधो से दशन और ध्यान ही साधक (सखी) का अभीष्ट होता है। मीराबाई उसी आनन्द (तत्सुखसुखित्व) को प्राप्त करने की आकांक्षा व्यक्त करती हुई कहती हैं—

मदिर पीडिये रघुराई ॥

कचन को महल कचन को दुलिया रेसम वरन बनाई ॥

फूलन सज फूलन के गिदवा फूलन लूँब सगाई ॥

चोबा चदन अगर कुमकुमा केसरि अग लपटाई ॥

सीताराम दोउ सग पीडे बलि जाय मीरा बाई ॥<sup>२</sup>

१ राजस्थान प्रांतीय विद्या शोध संस्थान जोधपुर, हस्तलेख सं० ६२६६ पत्रांक ६ ।

२ रा० प्रा० वि० शो० प्रतिष्ठान जोधपुर हस्तलेख सं० १८८२ पत्र ६८ ब तुलनीय—पौडिये रसिक जानकि रमन ।

सवश्रुतु के भोग यामें महल अति मन हरन ॥

विविध रचना धनी जहँतहँ विधि निपुणया हसन ।

सेज रचना बनत कहि नहिँ मनहुँ मनसिज भवन ॥

पिया प्यारी ताहि ऊपर केसि कर सुख सदन ।

यहै भासा अप्र सखियन सुफल बर ललि सतन ॥

४ रामका यथारा—अनुसंधान एवं अनुचितन

२ राम की भक्तवत्सलता—

राम जी बिना कूँज हरे म्हारी भीर ।

एक समै गजराज उबारयो कात्या जहर जे भीर ।

एक समै प्रह्लाद उबारयो धारियो नृसिंह सरीर ॥

एक समै द्रोपणि पत राग्नी खैचत बाढ्यो चीर ॥

राँका भी त्यारा रामजी बाँका भी त्यारा, त्यारा है जानू कीर ।

मीराँ के प्रभु हरि अघनासी वै साहि गहर गभीर ॥

३ धारम प्रबोधन—

अपराधी तैं राम न जायो रे ।

हारा सो तन छाडि के रस सो बिस छायो रे ॥

जठराग्नि ते काढ़ि के बाहर ले आ यो रे ।

उहाँ से आयो फोल करि इहाँ बिसरायो रे ॥

मात पिता सुत बधवा इन सो मन मायो रे ।

मीराँ प्रभु गिरधर बिना कोउ लख न समा योरे ॥

४ राम शरणागति—

रघुवर माघो री मुरत लील बरन घनश्याम ।

सीयावर माघो री मूरत ।

परण कर तारत सबको दाता मनसा री पूरन काम ॥

जनक सुतावर लक्ष्मण राजीद क्रीट मुकुट अभिराम ।

मीराँ के प्रभु गिरधर नागर चरण कमल निज धाम ॥

५ ककर्यं निष्ठा—

राखो राम हज्जरी बाला हममे बडी सबूरी ।

अयोध्यापुर में चाव याने तो राखी राम हज्जरी ॥

हे जी । सर हू सेरी बजरी दीज्या नातर दीज्यो कूरी ।

पचा अमृत कर कर मनु मानू हमने घडी सबूरी ॥

हे जी । बोइनको कारी कामरी दीजे नातर दीज्यो कूरी ।

भरा जीव सो लागि घरत न भेजे कमल की दूरी ॥

हे जी । चारो ल्यासू पूलो ल्यासूँ-भैस दुवासो भूरी ।

जीमन जूठन करि करि मेतू क्षारी लेर हज्जरी ॥



७. रूपासक्ति—

रघुवर मोहि परनाई बर्मा मोरी ।

सुत्तर सुघड सुजान साविरो जनम-जनम भरतार ॥

मोर मुकुट पीताम्बर सोढे गल मोतीयन की माल ।

मीरा के प्रभु गिरधर नागर चरण कवल चित लाइ ॥<sup>१</sup>

माई मोरे नयन बस रघुवीर ।

बर सर-चाप कुसुम सर लोचन ठाढे भए मन धीर ॥

ललित लवग लता नागर सीला जब देखो तब रणधीर ।

मीरा क प्रभु गिरधर नागर बरसत कचन नीर ॥<sup>२</sup>

८ मधुर मिलन—

तते नावे सीयाणो वाणो रामायो ह्रीवैडो हारै

मुमते रो माल सोहीयो ॥

मारै सीले सतोके चुदडे वाणो रमायो ही सालुडा रो कोरे ।

सनेल्या हे घाणो पेरियो चीते चीतने चुलेलो वाणो ॥

रामायो हे घालेया जी रे लुबे ह्रुबे बाजु बदि वाणा

रामायो हे बाजुबादे रो लुबे ॥

महल्या हे मै तो कारणी रो काजाले सारियो सील पैला लाइ ।

ईतरी गणो जी पैहारै नीकैनी रामाया रो सेजे ॥

बाई मीरा ने लाल गिरधारे मील्या पुरी पुरी

य मनैडा रो आसा ॥<sup>३</sup>

धु तो मेरा राम मील्या दालजानी, मेर उपर मेरबानी

दस देस और मुलक मुलक मे पाई नही तरी निसानी ॥

जगकी आस बास सब सज दी, लाब होवो चाहै हानी ।

१ रा० शो० स० (जोधपुर) हस्तलेख स० २८८४ ।

२ मीरा माधुरी—परशुराम धनुर्वेदी, पृ २५६ ।

३ रा० शो० स० (जोधपुर) हस्तलेख स० ८३६६ से संकलित ।

काए मेर तार्या जग मे तेरी सुरत मन मानो ॥  
 सुणीए साम काम जलदी कर कहा पत्री लघु छानी ।  
 बाई मीरा भणे साम स मु जाचक थु दानी ॥<sup>१</sup>

#### ६ विरह निवेदन

कोई राम पिया घर लावे रे ।  
 तलफत प्राण दुखी अति मेरो जरती अगन बुझावे रे ॥  
 है कोई मीत हमारो ऐसो जाय सदेसो सुणावे रे ।  
 ब्रह्म अगन भई अति आतुर जागत रीण बितावे रे ॥  
 तलप तलप तन तालावेली सास कल्प सम जावे रे ।  
 नीर बिना पछी किम जीवे बीछडिया मर जावे रे ॥  
 अब तो किरपा कर आवो मनमाहन दरस बेगि देखावो रे ।  
 जन मीरा ब्रह्मन अति व्याकुल भरतक आन जियावो रे ॥<sup>२</sup>

मीरे घर आज्यो राम पियारा ।  
 मैं निगुणो मे गुण नहिं कोई मो मैं ओगण सारा ।  
 तन मन धन सब अरपण करसूं मजन करू मैं धारा ॥  
 बोहा गुणवता साहिव मेरा गुना बकस ज्यो सारा ।  
 मीरां तो चरणन की दासी तुम बिना नैन दुख्यारा ॥<sup>३</sup>

राम जी मिलावे लो फर मिलेगे मिल बिछडो मत कोई हो ॥  
 लगन लगी जब लाज कहाँ रही निन्द्या करी सब कोई ।  
 प्रीत करी मैं मुख के कारण प्रीत किया दुख होई ॥  
 आप तो जाय बिदेसे बसे हो मिलण किमी बिष होई ।  
 मीरा के प्रभु गिरधर नागर हूँ मते सो होई ॥<sup>४</sup>

- 
- १ अनूप स० पु० लालगढ़ (बीकानेर) हस्तलेख स १७० से सङ्कलित ।  
 २ " " " " " " ११३ सङ्कलित ।  
 ३ " " " " " " हस्तलेख स० ११२ से सङ्कलित ।  
 ४ राजस्थान शोध सत्यान धोपासनी, जोधपुर हस्तलेख स० ७१४३ से सङ्कलित ।

१० भाषासक्ति—

राम दिवानी हो गई मैं तो राम दिवानी हो ।  
 भावै लोक हसी करी, मेरे मन मानी हो ॥  
 लोक कुटुंब परवार तज्यो लेहों चात्रग पानी हो ।  
 स्वात बूद रघुनाथजी तन सू सलानी हो ॥  
 प्रेम सुधारस सीचता नही मैं ध्यू अधानी हो ।  
 गावे मीरा ब्याकुली हरि हाथ बेकानी हो ॥<sup>१</sup>

मीराबाई के ये पद अधिकांशतः बीकानेर और जोधपुर के प्राचीन हस्तलेख संग्रहों से छिटपुट प्राप्त हुए हैं। राजस्थान के अनेक बृहद् ग्रथागार अभी तब अनालोडित हैं। संभव है उनके मध्यन से मीरा के कुछ और पद प्राप्त हो जिनसे रामानंदीय सम्प्रदाय के भक्तों तथा रामभक्तिधारा से उनके सम्बन्ध पर नया प्रकाश पड़ता हो।<sup>२</sup>

१ रा० शो० स० चौपासनो (जोधपुर) हस्तलेख स० ८२६१ से संकलित ।

२ श्री कल्याण सिंह शेखावत ने इनके संकलन में प्रशस्तनीय प्रयास किया है। देखिये उनका शोध प्रबंध मीराबाई के प्रतिपाद्य विषय का विश्लेषणात्मक अध्ययन ।

## नामानुक्रमणिका

- अ
- अजनी नदन शरण - २८०, २८५  
२८८
- अकबर--४६, १३४, १३५, १३६,  
२३२
- अकबरपुर--१६१
- अम्बरनगर--१६१
- अगस्त्य सहिता--२६८
- अगाथरि--(मिथिला) ३०८
- अग्रजली--(अग्रमहचरी) ८०, ८२
- अग्रदास--२८, ३४-३८, ६६ ७०  
७८ ८२, ८५, ८५ १३८ २५८,  
२६०, २७३, २७४ २६४ २६५  
२६६, ३००
- अग्रदास पदावली--परि० १
- अग्रमागर--८२
- अग्रम्बामी--८२, ८३
- अग्निमा सिंह--१७४
- अध्यात्म रामायण--१५१ २०२,  
२६६ २७८
- अनन्तम्बामी--२०
- आताद - २४, २७ ३२ २५८  
२५८ २७३ २७४
- अनूप स० पु० लालगढ़, बीकानेर--  
परि० ३, ५
- अनुन मगूर जनी घाँ मफदर जग--  
२३
- अभयगिरि--३०८
- अमदही--१४८
- अमतौरि--(जनकपुर) ३०८
- अमररामायण--३०१
- अमानीगज--१४८
- अमीरसिंह--२७६
- अम्बाप्रसाद सुमन--२८३
- अम्बिका प्रसाद वाजपेयी--२८४
- अयोध्या--८ ११ १३ १४, १६,  
२० २३ ४३, ४७, ४१, १३५,  
१३८ १४३, १४७, १४८ १५१,  
१६१, १६३, १७३-१७६, १७८,  
१७६ २०३ २०७ २२०, २२१,  
२२४, २३० २४५ २८१, २६२,  
२८६ २८७ २८८, ३००, ३०१  
३०४, ३२३।
- अयोध्या दिग्दर्शन--१४८
- अथपत्र--३०३
- अलख रामदास--३०६
- अवध प्रसाद--३२७
- अवधी भाषा का विकास--२८६
- अष्टनाल खरित--८०
- अष्टछाप--१५३
- अष्टछाप आर वल्लभ सम्प्रदाय--  
१५७
- अष्टछाप परिचय - १५४
- अष्टवाम वार्तिव--३००
- अयोध्यापाठ--२३०
- अहिमुष्णसिंहि--१०



आ	उमाडा- ४२
आगरा—१६०	ऋ
आत्मसंबध दपण—३०१	ऋषिकण- - ३२७
आनंद कृष्ण राय—१३४ १३६	ए
आनंदराम—१५१	एच० एच० विल्सन—२७८
आनंद लहरी (टीका)—२८०	एटा—१३७
आमेर—३२ ३३ ३८, २५८ २६०	एम० जाज—२८४
आरा—३०७	एफ० एस० ग्राउज— २७८
आनंददर स्त न—१५ १६	एल० पी० टर्सीटरी--२८४
आसफुद्दाला—१६०	एशियाटिक रिमर्कज—२७८
आस्तिनाथम—१४८	ए हिस्ट्री आव साउथ इंडिया—१७
इ	ए हिस्टारिकल स्वरु आव दी फजावाद
इडक्स बर्बोरम आव दि तुलसी	तहसील- -१६०
रामायण—२७८	ए हिस्ट्री आव इण्डियन फिलासफी—
इन्द्रदेव नारायण सिंह—२८१	२६८
इमुआपुर- (छपरा) २८८	ऐ
इम्ब्वार दि ला लिनरेयार इ दुई ए	एनीराम—२८४ २८५
इन्दुजानी--२७८	ओ
इस्लामपुर (पटना)-- ३०२	ओरहा—२८७
ई	आरियण्टल काग्रस—२७८
ईश्वर प्रसाद नारायण सिंह--२८०	ओ
२८७	औरगजेव—१६१ २६२
उ	क
उज्ज्वल—उत्कठा विलास—३०३	कचनारी—३०८
उडुपा—१८	कनक भवन—३२०
उत्तरादिमठ—१८	कयाकुमारी--३०२
उत्तरीभवानी— १४७	कवीर--२४ २७, २८ २६३,
उदयमानु सिंह डा०— १६६ २८२	२६८ २७१ २७८
२८६	कमलकुँवरि रानी—१५६
उहालक—१४८	कमला (नदी)--३०७
उभय प्रवाधर रामायण—१४७	कमला साहृत्पायन—२८५
१४६ २६२	कमियार—१४८

वल्याण--१६ ४२	अध्ययन--२८४
वल्याण मिह--परि० ६	कृपानिवाम--३०८
वल्लिजिन स्वामी--१८	कृपाराम-- २६५
ववलागद--७१	कृपामर्षी--३०५
ववितावली - १५८, १५९, १६०,	कृष्ण--१३ २२३
२०६ २०८, २१० २१२, २१३,	कृष्णदत्त मिश्र--१४१ १४८
२१५ २२४ २३४, २३८, २४०,	कृष्णदास--३१ ३३ ३४ ३६, २६०
२४५ २४६ २४८ २५३ २५४,	कृष्णनाम पयहारी--२७ २८, २९
२८५ २९१, ३१२।	३१ ४०, ४२, ४७, ७८ ७९ ८०
वस्तूरी गिरि ३०८	२५८ २५९, २७३ ३२६ ३२८
वाठियावाड--३००	कृष्णमाचार्य--१३
वानिक प्रसाद खत्री--२७९	कृष्णाचार्य--१९
वामद गिरि- ३२७	कृष्णानंद रामसागर--८३
वामदराम--२७	केकावली--१५२
वानेगी--१६७	केशवजी दहाती--७५
वालदास--८	केसरिगिरि--३०८
वावरी--९	केरिनट डे फ्रांस--१३४
वाशी--१८ २० २१ १४१, १५९,	काटरा--१४०
२०७, २२५, २३०, २३६ २८१,	काठारी बागहजी--१५१
२९२, २९३	काद राम मंदिर--१६
काष्ठ जिह्वा स्वामी--२८०, २८७	काणिकी नदी--३०७
२९३ २९४	ख
किला मुबारक--२३	खरदूपण- ११
किशारीलाल गुप्त--१४५	खलजुरा -२६५
कीह्लदास (कीह्लम्बामी)-- २९,	समनाम--२६५
३४, ३५ ३६ ३७ ४७ ७८,	खरनाद--१४०
८० २५८ २८५, ३०६	ग
कुरेग स्वामी--१७	गगातानम--२६५
कुलोघर--८ ११, १२	गडवी--३०८
कुहू--(पनाद) ३२	गणेशानंद--२५८
कृतिवाग वा योग्या रामान्ण और	गरीजदास--२७०, ३०१
रानपरिभाषा वा तुमनाम	गण--१३

- गलता—१६, २८, ३१, ३६ ४५ ५३,  
७८ ८० २५८ २६५ ३२८
- गांधी—२०५ २२७
- गार्गी द त्तासी—२७८
- गिरधर शर्मा चतुर्वेदी—२८२
- ग्रियसन—१४५ १६८, २७८ २७६,  
२८१, २६५ ३०४ ३२३ ३२४
- गीतगावि द—५३
- गीतावली—१३६ १५८ १७३  
१८५, २११ २१६ २२१ २५४  
२७५ २८२ २८५ २६१
- गीताप्रस—२८०
- गुडहट्टा ठापुरवाडी (भागलपुर)—  
३०३
- गुणरत्न काय -१७ २८२
- गुस्परम्परा—४३
- गुस्वकम भारती ३०८
- गोकुलदास—७१ ७३
- गुनीनदी—३२७
- गोकुलदान—७१ ७३
- गोकुलपुर—१४८
- गाधनी—१३८
- गाण्डा—१३७ १४२ १४३ १४४,  
१४७ १४८ १५१ १५६, १६०  
१६३ १६४ १६८ २८१
- गार्पिनाथ कविराज—१५४
- गामतीदान—३०४
- गारखनाय—२७ २६ २६४ ३२५
- गारखपुर—१४२ ३२५ ३२८
- गारखवानी—२६
- गारख सिद्धांत सग्रह—२७३
- गोमाद्गज—१४८
- गासाई चरित—१३८, १३६ १४०,  
१४३, १४४, १४६, १५२, १५४,  
१५६, २३० २७६
- गावडन—२६६
- गोवडन नाथ शुक्ल—१५७, २८१
- गोविंद—२६६
- गाविदाचाय—१६
- गोस्वामी तुलसीदास चरितामृतम—१४०
- गोस्वामी तुलसीदास का जीवन  
चरित—१५६
- गौडीय वष्णव सम्प्रदाय—१६
- गौतम चद्रिका—१४१ १४२ १४८
- गानकूप—३०६
- गान तिलक—२२ ३६
- गानदेव—२४
- गानलीला—२२ ३६
- गानवती त्रिवेदी—२८२
- गानी सत सिंह—२८० २८७
- गानश्वर—२७२
- ग्राम साहित्य—१६७ १७० १७७,  
१८०
- घ
- घनश्यामदान—३०८
- घावरा—१४२ १४५ १५१
- घताची कुण्—३०२
- घ
- चतुभुजा जी—२६०
- चद्रगुप्त—६
- चद्रवली पाण्डेय—२८१
- चद्रभान रावत—२८६
- चद्रहास—१५१
- चनहट—१४०

चरणदाम—६६, २६५  
 चरणदाम दामा—२८२  
 चादपाल (गद्दी)—४७  
 चित्रकूट—१४ ४१ ४७ १३५  
 १३६ १५६ २०७ २६३, २६७,  
 ३०२ ३०६, ३०७ ३०६ ३२७

चिल्लामणि घाय—२७६  
 चिल्लामणिदाम—२६४ २८५  
 चिरान (छपरा)—२८४ २८५  
 २६८ ३००

चञ्चलगाम—४२

छ

छपरा—२८६ २०३ ३०४

ज

जगजीवन माह्व—२७२  
 जगत गिरामणि मन्दिर—२५८  
 जगदेवदाम—१५१  
 जगदीगनारायण—२८४  
 जगन्नाथदाम—२७२ ३०६  
 जगन्नाथपुरी—१८ ३०२ ३०७  
 जनकपुर—१७४ १७८ १८७ २११  
 २१३ २४८ २७५ २६३ ३०२  
 ३०५

जनगाविद—३०६ ३०७

जनहरिया—५३

जमेजय कुट—१४८

जम्बूनीप—१४८

जयपुर—२४ ३१ ४२ ४३ ४७  
 ७८ ७६, ८० २५५

जयपुर मन्दिर (अजध्या)—२८८

जलपुर—२६५

जलानपुर—२६५

जहागीर—२३२, २५३

जानकी कुण्ड—३२७

जानकी गीत—५३

जानकी घाट—३०० ३०२

जानकी चरण—२८८, ३०८

जानकी जयन्ती—३०४

जानकीदास—१५० १५१ ३०६

जानकी मंगल—१५७ १६५ १६६

२१२ २१३ २१७ २०४ २४८  
 २८२

जाम्बून—८

जायमी (मलिक मुहम्मद)—२७

१७६ २८७

जायसी प्रयावली—२८७

जालान—३०१

जीवाराम युगल प्रिया—२० ८०

२७३ २६५ २६८ २६६ ३००

३०२ ३०६ ३०७ ३०८

३२०

जे० ए० कारभेष्टर—२८३

जे० एम० मक्की—२८२

जायपुर—४१ ८५ परि० ६

जौनपुर—१६१

ज्यानिमठ—२४

झ

झानूदाम—४१ ४३ ४५ ४६

ट

टिकारी (विहार)—२६६, ३००

टीकमग—२८७

टङ्गी गगन—१४८

ड

ठुगुडी—३०७

ड

डिस्ट्रिक्ट गजेटायर (गोण्डा)—१४२

१४५, १४६ १४७ १६०

डिस्ट्रिक्ट गजटीयर फावादा—१६१

त

तर्तारि—३०८

तजकिरनुल फुकरा—२५७

तपसाराम—३०३

तमसा नदी—३०१

तानसन—४६

तारानाय यागी—२८ ३३

२५८

तारी—२८१

तिरुपति—१० १६ ३०२

तिरुमलि गाह—१०

तिलाइ राज्य (रायवरेली)—३०१

तुलसी उद्यान—३०५

तुलसी का कथा शिल्प—२८३

तुलसी का काव्य दशन—२८३

तुलसी काव्य मीमासा— १६६

तुलसी चरित—१३६

तुलसी का प्रगीत काव्य—२८३

तुलसी का सामाजिक दशन—२८२

तुलसी का समाज दशन—२८२

तुलसी की अलंकारयोजना—२८३

तुलसादास की वारविग्रह प्रतिमा—

२८१

तुलसा का काव्य कला—२८३

तुलसी की दृष्टि में नारी— २८२

तुलसी का भक्त्यात्मक गीत - २८३

तुलसी की भाषा—२८६

तुलसा प्रयादल— १६७ १६८ २७५

तुलसादास के काव्य का मनावज्ञानिक  
विश्लेषण - २८४

तुलसी के काव्य में नैतिक मूल्य—२८२

तुलसी-दशन—२८२

तुलसीदशन मीमासा— २८२

तुलसीदास आधुनिक वातायन स—  
२८८

तुलसीदास (मा प्रसाद गुप्त)—

१६६ १६६ १८४, १८७

तुलसीदास का जन्मगत - २८५

तुलसादाम आज के सभ में—२८६

तुलसीदास और भारतीय संस्कृति—  
२८८

तुलसीदास (मास्वामी)—२४-२७

३० ३६ ४० ८२ १३७

तुलसीदाम और उनका साहित्य—१५७

तुलसीदास और उनका काव्य—१५३

१६०

तुलसीदास के रामचरित मानस का  
मूलाधार व रचना विषयक समा-  
लोचनात्मक अध्ययन— २८०  
२८१तुलसीदाम और रामभक्ति सम्प्रदाय  
के प्रसिद्ध मलयालम कवि एडुनच्छन  
का तुलनात्मक अध्ययन— २८४

तुलसी दिव्या (श्रीमती)— २८४

तुलसी गदक श— २८७

तुलसी सतसई— २८२

तुलसी साहब— २७२

तुलसी साहित्य के ददलो प्रतिमान—  
२८६

तानाद्वि मठ - १४

- त्रिभुवननाथ चाव - २८८  
 त्रिवर्णी सगम--२६७  
 य  
 वियालाजी आव तुलसीदास--२८३  
 द  
 द कलामिकल एज--८  
 दत्तसिंह, महाराज ( गाडा )--  
 १६०  
 दर्धीचि--३१  
 द भाडन कर्नाकुमुलर लिटरेचर आव  
 हिंस्तान--३२४  
 दयाराम (महात्मा)--३०६  
 दरावगज--१४८  
 दरियासाद--१६१  
 दरियासाहब--२७२  
 ददिस्तानुल तवारीख--२५७  
 दानामी (शैव)--३०८  
 ददरथ--२२० २४८  
 दासबबि--१३८  
 दातायदास १३७ १३८ १४४  
 दिवालिया--१३६  
 दि रिनीजस पालिसी आव मुगल  
 एम्पर्स--२६३  
 दिवारर--८१  
 दिल्ली--१६०  
 दीनदास गुप्त (डा०)--१५७  
 दूलमदाम--१६१ १६२  
 देवकीनदन साहय - २७२  
 देवकी नान धीशम्तब--२८६  
 देवनारायण द्विपदी--२८८  
 देवमुरारि--८१  
 देवराजावाय - १७  
 देवरिया--३५, ३२५, ३२७, ३२८  
 देवस्वामी--२६३  
 देवाचाय--१६, २०  
 देवाजी--२५९ २६०  
 देवादाम--२६५  
 देवानद--२५६  
 देवी भागवत--१४७  
 देवेद्र सिंह--२८५  
 दो सा दावन वीणयन की वार्ता--  
 १२१ १५३ १५८ १५६, १६३,  
 २०१, २०६,  
 दोहावली--२०७ २०८, २०९, २१३,  
 २१५ २१६ २१७, २२२ २२५  
 २२८, २३३ २३८, २४१, २४३,  
 २४५, २४७, २४६, २५४, २७०  
 २८२ २६१, ३१२  
 द्वादस स्नात्र--१६  
 द्वारकादाम - ३५  
 घ  
 घनीदास--२७२  
 घीन्द्र वर्मा (डा०)--१५३  
 घ्यानमजरी--३७ ७०, ८१, ८२,  
 २७४ २६४, २८६।  
 न  
 नगवा--१४८  
 नचिन्ता--१४८  
 नत्युदास--३०६  
 नददाम--१५१ १५२ १५७  
 नददाम प्रयावर्णी--१५६  
 नदार--१४२  
 नम्माजनार--१०, २६८, २७३  
 नरपाणी - २८८ ३०६

- नरसिंह (नरहरि)--१३६ १४२  
 १५१  
 नरहरि तीर्थ--१८  
 नरहरिदास- २४ १५७ २०३, ४६  
 नरहर्यानिद--२४  
 नरेन्द्रकुमार--२८३  
 नवनिधि--२७२  
 नवरहस्य प्रकाश--४७  
 नागरी प्रचारिणी पत्रिका--१५३  
 नागरी प्रचारिणी सभा काशी--२६६  
 २६०  
 नाथमुनि--८ १३ १४ १५  
 नाथमुनियोग पटल--१४  
 नाथ सम्प्रदाय--२६५ २७२  
 नानक--२७२  
 नानकवाणी--२७२  
 नाभादास--१२ २० २८ ३१ ३५,  
 ३७ ३६ ७३ ७५ ७६ ८२ ८५  
 २५८, २६० २६६ २७८ २७८  
 नामदेव--२५६ २५८ २६२ २६३  
 २७१  
 नामदेव के हिन्दी पद--२५७, २६३  
 नारायण महात्मा--३२५  
 नासिक--३६  
 निष्वाचाम रामसखे--१८, ३२२,  
 ३२३  
 निमलीकुण्ड--३०२  
 निराला सूर्यकांत त्रिपाठी--२७६  
 निपनिया--२६८  
 नीमपार--१३८ १४० १४६ २८८  
 नूरजहाँ--२५३  
 नृत्यराधवल्लभ--१८  
 नृसिंह - १३  
 नरसिंहाचार्य - १७  
 नेपाल--३२७  
 नेहवली--२६७  
 नेह प्रकाश--७०  
 नौ आही - ३०२  
 प  
 पञ्चगंगा घाट--२०  
 पञ्चवटी--१३६, ३०२  
 पञ्चस्तवी--१७  
 पंडित पुरवा--३०१  
 पाचरात्र--६  
 पुडरीक--१५  
 पचारी--३०२  
 पटना--३०३ ३०४  
 पटरगा--१४८  
 पद्म मुक्तावली--४१ ४२ ४८ ४६  
 ५३ ६८ ७५ ७७, ६५  
 पदावली--८२ ८५ १३८ ३००  
 पद्मावत--१७६  
 पद्मावती शयनम - २५८, २६०  
 परमानन्ददास--२६५  
 परशुराम चतुर्वेदी--परि० ४  
 परसा (सारन)--३०३  
 पराशर भट्ट--२८२  
 पराशर भट्टाचार्य--१७  
 पारम भाग--३०३  
 परिशोध--१६७, १८४  
 पसवा (गाण्डा) - १४० १४२  
 १४३ १४४ १४५ १५१ १६३  
 पलटूदास--२७२  
 पलटू साहब की गब्दावली--१६२

पावना मंगल—१५७ १६५ २१२  
 २१३ २१७, २१८, २८२  
 पिपरा—२८८  
 पीताम्बरदत्त बड्डवाल—२३ १५४  
 पुखरनी—२८८  
 पुरुषोत्तमाचार्य - १६, २०  
 पुष्कर (राजम्यान)-- २८, ३२  
 २८४  
 पूषागम--३०७  
 पूषवरागो—८१  
 पूषिमा--३०३  
 पृथ्वीराज—३२ ३३  
 पृथ्वी सिंह - २८, ३८  
 प--१०  
 पल्लव विष्णुडि--१३  
 पवली—३२६ ३२७, ३२८  
 प्रपन्नामृत—१० ११, १३-१८  
 प्रभाज—१० २५६  
 प्रभावती गुप्ता—६  
 प्रभुपाल मीतल - १५३ १५५  
 प्रयाग--२० ३६  
 प्रयागदत्त - २६६  
 प्रयागदाम--४८, २६६ २८७  
 प्रयागदाम जगी—८१  
 प्रसादराम—३०७  
 प्रसादीराम—२०७  
 प्रियागाम—१२ १८ ३१ ७६  
 १५६, २६० २८८  
 प्रेममयी—३०८ ३०९  
 प्वायगर - १०  
 प

फल्गु नदी - ३०२  
 फेल्लेन—डॉ० ३०३  
 फजादाद--२३ १४८, १६१  
 व  
 वक्तर—३०५  
 वगौरा—३०४  
 वधनगरी—२८८  
 वडजियर मठ—१४  
 वडहलगज—३२६ ३२८  
 वडागाव—४६  
 वरिवाथम— १८  
 वदरीनाथ - २८८  
 वनादाम—१४७, १४८ १४६, १६१  
 वरवरामायण—१५८ २५२ २८२  
 वरही—२८८  
 वरेली— १४६  
 वलदेवगाम 'घट्टमयी'- ४७  
 वलदेवप्रसाद मिश्र - २८२  
 वनदेव उपाध्याय--२५७  
 वनवाटाला—३०१  
 वेलहा—३०६  
 बलिया—२८१  
 बन्नी—१३७ १४८ १५६  
 बहराइन—१६३ १६८ २१५ २४५  
 बारर—१६१  
 बापुराम सक्केना--डॉ० २८६  
 बारानवी— १६१, १६८  
 बालरुणादास महन्त-- २०७  
 बासवृष्ण देव तलग--२८७  
 बालरुणा नाथ बालकृती--४१ ७०  
 ८१  
 बालाजी--१४

कपूर मठ—१८



- घालानद—३६ ७१, २६८  
 कावरीपथ—२४  
 बिजिराम—७१ ७४  
 प्रिदाय—३०४  
 बिडरक—२६८  
 प्रिदहर—१६१  
 बियट्टी भवन—३०५  
 बिसनपुर—२८८  
 बिहारकुण्ड—(जनकपुर) ३०१  
 बीकानर -परि० ६  
 बीठलदास—७१ ७२ ७३  
 बुद्ध—२०१ २२३ २२५  
 बुद्धचरित—२८७  
 बूढीराम— ३०६  
 बेनीमाधवदास - १३८ १४१ १४३,  
 १४४ १४५, २३० २३१ २७६  
 बकुठपुर—३२६ ३२८  
 बजनाथ कूम बहुरि—१५६ २८०  
 २८७  
 बजनाथ सिंह—२८२  
 बजपुरी—७१ ७४  
 बजरत्नदास—२८५  
 ब्रजमाहन—२६५  
 ब्रह्मम्प्रदाय - १३ १८  
 ब्रिटिश म्यूजियम—१३४  
 म  
 भक्तदास- १२  
 भक्तमाल - १२ २० २४ २८ ३१  
 ३२ ३४ ३५ ३७ ३६ ७१, ७३  
 ७६ १५१, १५३ १५६ २२२  
 २७६।  
 भक्ति मुधाविदु स्वाद श्लोक—३५  
 भगवत/ प्रसाद सिंह—२८१  
 भगवान बत्सदास - २७२  
 भगवदावाय— २५६  
 भगवन्नारायण—८१  
 भविष्यपुराण—२३  
 भागवन—२७ २७६  
 भागवनदास— २८५  
 भागवनदास पत्नी- २७६  
 भागवत सप्रत्यय—२१७  
 भागवती सिंह - २८३  
 भानुकि- १६०  
 भारी कला भवन--(काशी) १३४,  
 १३५  
 भारतीय विद्यामंदिर- (बीकानर)  
 २६१  
 भावप्रकाश टीका - १५ २८०  
 भाषा शास्त्रसंग्रह--१३८ १४३  
 भिक्षुक राम—३०६  
 भीष्मदास वात्रा—३०४  
 भीम - १६  
 भूतत्तार--१०  
 भगुआश्रम- (बक्सर) ३०२  
 भालानाथ तिवारी - २८७  
 भ्रमरगीत--२७  
 म  
 भगनीराम - २६५, ३०७  
 मडुआ—३०८  
 मकदूम शाह जूरन गारी—१६१  
 मठिया—३०८  
 मणि गिरि—३०८  
 मत्स्यपुराण—२४६  
 मयुरा—३४, १४० १५३ २५८, २६२

मधुर बबि—११  
 मधुर मजुमाला - ३०३  
 मधुमूत्र सरस्वती—१५४  
 मधुराचाय—४७ ५३, २८५  
 मध्वाचाय— १३, १८, १६  
 मध्व सम्प्रदाय १८, १६  
 मध्वाश्रम - १८  
 मध्वविजय—१८  
 मनवर—१४८  
 मनारामा—१४८, १४६  
 मन हरदाम—२८४  
 मलीहाबाद—१४०  
 मल्लवद्राम—२७२, ३०८  
 महानवि भानु भक्त के नेपाली रामायण  
 अर तुलसीदास के रामचरितमानस  
 का तुलनात्मक अध्ययन - २८४  
 महाभारत—६ १४८ १७२ २५२  
 महायान - २६६  
 महान—३२५  
 महादत्त शुक्ल—१३८ १४३, १४४  
 २७६  
 महेश्वर बछा सिंह - १३६  
 मधेश्वर गान्धर्व चिकित्सा—१४१  
 मधेश्वर राममार ग्रथ - १४२  
 महा प्रसाद चतुर्वेदी—२८२  
 माडन बनकुलर लिटरेचर आव  
 हि दुस्तान - १४५  
 माताप्रसाद गुप्त - १४३ १४४, १५३  
 १६६ १७५ १७७ १८२ १८४  
 १८७ २८१ २८२ २८५ २८६,  
 माधवदाम-- २८५  
 माघापुर - (मिथिला) २८७

मानस का मामाजिब दशन-- २८२  
 मानस परिचर्या—२८० (परि०)  
 मानस भूषण—२८०  
 मानस पीयूष टीका—२८०, २८८  
 मानसाव—२८०  
 मानस मदम वाण—२८७  
 मानसिंह—७६ २६०  
 मामा प्रसाद दाम—३२०-३२३  
 मिजापुर—२८८  
 मिथिला--८१ १७३, १७७ १८३  
 २६३ २८५, २६६, २६८, ३०१  
 ३०५, ३०८ ३०६  
 मिथिलादाम—३०७  
 मिथिलाविलास—४८, २६३, २६५  
 २६६, ३०१  
 मिथिला विदु - २६४  
 मिथिला माहात्म्य--३०६  
 मिसरिय—१४०  
 मिहिरकुल—१०  
 मिहीलाल—२६६  
 मीरा—२५ २५८ २६३  
 मीरा पदावली—२६२  
 मीराबाई-- (डा० प्रभात) २६०  
 मीरा बहुद पद संग्रह--२५८, २६०  
 मीराबाई—परि० ६  
 मीरानाधुरी--परि० ४  
 मुर्शाराम राज--३०४  
 मुजफ्फरपुर-- ३०८  
 मुमलमान हुक्मराना की मजहबी  
 रवादासी--२५७  
 मुहम्मदगह—२३  
 मेघदूत--८

मयिली लोवगीत--१७४ १७८, १८३  
 मयिली रहस्य पदावली--३०२  
 मैसूर--१८  
 मैहर- १६  
 मादलता - ३०८  
 मारिया--३०८  
 मारापन्त--१५२  
 माहननास--२०७  
 माहन शुक्ल--१३८, १३६  
 माहन सिंह - २५७  
 माहिनी श्रीवास्तव--२८७  
 मोजीराम- २६५

य

यशाधमन - १०  
 यादवाक्षल--१६  
 यामुनमुनि--१५ १६  
 यारीमाहव--२७२  
 युगलमञ्जरी--४७  
 युगलानय शरण हृमलता - १६१  
 १६२ ३०२ ३०३  
 योगेन्द्र प्रताप सिंह--२८३  
 युगेश्वर--२८६  
 योगचिंतामणि- २२ ३६  
 योगप्रवाह - २१ १५५  
 योगभाग- (सारा) १५५

र

रगाचाय - १४  
 रघुनाथदास--३०५  
 रघुनाथदास रामसनही-- २६२  
 रघुनाथाचाय--१४  
 रघुराजदास--८१  
 रघुराजशरण क्षमा--२८८

रघुराज सिंह--७६ ८०  
 रघुवर गुण दपण--३०३  
 रजनीरात गारली--२८१  
 रज्ज--२७२  
 रत्नसागर-- ३०५  
 रमन दुय--२६८  
 रमानाय त्रिपाटी--डा० २८४  
 रमण कुतल मेघ डा०--२८६  
 रवनाही (फंजावा) १४०  
 रसी/दुर्दान मालाना - २५७  
 रमिफ अली (जनक राजकिशारी  
 गरण)--८१, ३००

रमिफ सम्प्रदाय--५३ २७६

रहस्य पदावली १६२  
 राघवदाम - २० २०८  
 राघवान--१८ २० २१ २२ २७  
 २६२ २६८ २६६

राजगिरि--८

राजपति दीक्षित--२८६  
 राजयोग--२७ ३६ ३८ २७४  
 राजराघवदास--३०० ३०१  
 राजस्थान प्राच्य विद्या शाघ प्रति-  
 ष्ठात--६५ परि० ३  
 राजस्थानी शाघ संस्थान चापासनी  
 (जाघपुर) २६२ परि० १ २ ३  
 ४ ५ ६

राजापुर--२८१

राधाकृष्णदास--२७६  
 राधाकृष्ण मंदिर--(पटना) ३०८  
 राधावल्लभ सम्प्रदाय- १५८  
 रागेय राघव--२८३  
 राजकुमार पाण्डेय--२८३

राम अवतार—२८३  
 राम अवधवास—१५१  
 रामउदार सिंह—३०२  
 रामकवि दालत राम— १४२  
 रामकिंकर—२९९  
 रामकिशोर शुक्ल—२८१  
 रामविशुन्याम—१५१  
 राम की शक्ति पूजा—२७६  
 रामकुमार वमा डा०—२८२ २८५  
 रामगुलाम द्विवेदी—१६८, २८१  
 रामगुल्लेला—२६५  
 रामघाट— ४३  
 रामचंद्रिका - ६५ २७६  
 रामचंद्रिका आर रामचरितमानस का  
 तुलनात्मक अध्ययन— २८४  
 रामचंद्र शुक्ल—२५ १३७ १५३  
 १६८ १८७, २८५, २८७, २८८  
 रामचरणवास—८१ १४३ १५०  
 २६८, २६८ २८०, २८७ ३००  
 ३०३  
 रामचरित चिन्तामणि - २७६  
 रामचरितमानस—२४, ८० १४३  
 १५० १५४ १५७ १६६ १७२  
 १८१ १८५ १८६ १८८ २०५।  
 रामचरितमानस का काव्य शास्त्रीय  
 अध्ययन २८३  
 रामचरितमानस का तत्त्वज्ञान—  
 २८२  
 रामचरितमानस की काव्य कला -  
 २८३  
 रामचरितमानस की दशानुक्रमणिका—  
 २८७

रामचरितमानस के साहित्यिक  
 स्रोत—२८१  
 रामचरितमानस-वाचस्पत्य—२८३  
 रामचरितमानस म भक्ति—२८३  
 रामछटा—१४६  
 रामजानकी मंदिर (पटना)—३०६  
 रामज्यानार—८२  
 रामटहलदाम— १४  
 रामतत्त्व सिद्धांत—३००  
 रामदत्त—२१ ३०१  
 रामदत्त भारद्वाज डा०—२८१, २८२,  
 २८५  
 रामदगाल - ३०८  
 रामदास कापत्य—३०७  
 रामदीन सिंह—३०४  
 रामध्यान मंजरी—८२  
 रामनरेश त्रिपाठी— १५३ १५६,  
 १६० १६७ १७०, २८१ २८७,  
 २८८  
 रामनवरत्न सार सग्रह - २६८  
 रामनाम माला—२६८  
 रामनिरजन पाण्डेय—२८३  
 रामपट्टी—२६८  
 रामपुर—१४० १५१ १५३ १५७  
 रामप्यारी देवी—३०४  
 रामप्रकाश अत्रवाल—२८४  
 रामप्रसाद— १४३ ३०५  
 रामप्रसाद विद्युवाचस्प - ८१  
 रामप्रसाद गणेश—२८८  
 रामप्रियाणरज प्रेमचंदी - २६७, २८८  
 रामहारी मुनन—२८१  
 रामबालर दाम—२८५

रामभक्ति आर हिंदी साहित्य म	रामानंद--२१-२४, २७, ३१, ३६,
उसकी अभिव्यक्ति--२८३	३६ ७१ ७५ २२३ २५६
रामभक्ति परम्परा आर माहिय--	२५७, २५८, २५८ २६२, २६५
२७२	२७० २७१
रामभक्ति म रसिा सम्प्रदाय--३६	रामानंद की हिंदी रचनाएँ--२३
४१ ४६ ४७ ७१ ८१, २६६	३८ २६६
३२०	रामानंद सम्प्रदाय--१५१, १५४
रामभक्ति साहित्य म मधुर उपासना--	२५८ २६० परि० ६
२८२	रामानुज - ८ १४, १६, १७, १६
रामभक्ति शाखा--२८३	२२, २२३ २६५ २६२
रामभारती--२१	रामानुजदाम--३०६
राममिथ- १५	रामानुज रूपसरम--४३ ४६ ४७
रामरक्षा--२६६	रामानुज सप्रदाय--२६८
रामरक्षा त्रिपाठी--१४८, ३०५	रामायण-टीका--१५०
रामरक्षा स्तात्र--२२ ३६	रामायण मानस प्रचारिका टीका--
रामरसिकावली--८०	१५० १५२
रामरामदापिका--३०१	रामायणतर सस्कृत काय आर राम-
रामलला--२८८ ३०६	चरित मानस का तुलनात्मक
रामलला नहछू १५७ १६५ १८८	अध्ययन--२८४
२१२ २१७ २४७, २४८	रामानंद सम्प्रदाय--१८
८८२	रामानंद--३०७
रामलाल सिंह--२८३	रामानंद पद्धति--२२
रामशंकर शरण--३०५	रामाष्टयाम--८२
रामशरण--३०१	रामेश्वर भट्ट--२८०, २८८
रामानंदराम--२६८	रामेश्वरी--२६५
रामानंदाराम--२१६	रीवा--७६ ३०२
रामसिंह महाराज- ४७, २६५	रुद्रयामलता--१४६ १४६
रामसंभव - २०७	रुद्र सम्प्रदाय--१३
रामस्वरूप ज्योतिषी--३०१	रूपकला--२४ ३५ ७६ १५६
रामाना प्रश्न--१५८ २१६ २५६	राप्ती--(नदी) ३२५
२८२	रदास--२६० २६१ २६२
रामाजी--३०४	रैपुरा--३०६

रवासा (राजस्थान) ७८, ७९, ८०, २५८, २६४

ल

लक्ष्मण - १६

लक्ष्मणकिला - २३

लक्ष्मणगान - ४६

लक्ष्मीकुमार तानाचाय - १७

लक्ष्मीनारायण - १३

लक्ष्मीनारायणनाथ पवहारी - ३५

३२५ ३२६

लखनौपुर - १४८

लखनऊ - १४०

लघुकसव - ७१ ७५

लघुकुश - १३

ललिताप्रसाद कुवेर - १५३

लाडलीलाल शरण - ३०१

लाल गुलाम - ७१ ७५

लाला भगवानदीन - २८५ २८८

लाला सीताराम - २८५

लोकाचाय - १७, १९

लोमपाद - २४६

लोहागल सीकर - ४७

व

वर्शलाल महात्मा - ३०८

वचनदेव कुमार - २८३

वरप्राम (निहार) - ३०६

वरवरमुनि लिलक - १७

वत्सभ सम्प्रदाय - १५८

वागीश दत्त पाण्डेय - २८७

वामन १३

वासुपुराण - २४६

वारररी सम्प्रदाय २७२

वाराह मंदिर - ६, १५१

वाल्मीकि - १५४

वाल्मीकि आश्रम - १४०

वाल्मीकि रामायण - ८ ११ १४,

१५, १६ १५१, १७३,

१७४ १७६, १८५ २०२

२४८

वाल्मीकि रामायण अध्यात्म रामा-

यण धार रामचरितमानस के नारी

पात्रा का तुलनात्मक अध्ययन-

२८४

वाल्मीकि अर तुलसी का साहित्यिक

मूल्यांकन - २८४

वासुदेवदास - ३२१ ३२

वासुदेवशरण अग्रवाल - १३४

विजयनगर - १७

विजयदाटीका - २८०

विजयानंद त्रिपाठी - २८० २८५,

२८८

विट्ठलदास - १५२

विट्ठलपत - २४

विद्याधर - ३२

विद्यामिश्र - २८४

विनयकुमार - २८३

विनय पत्निना - १३६ १५८ १५९,

१८६ १९० १९२ २०९ २१०,

२१८, २१८ २२७ २२८ २३४

२३६ २३५ २३८ २४१ २४२

२४३ २५४ २८२ २८५ २९१,

३१८

विनयशिव - २८८

विनायक - २८०, २८८

- विनायकी टीका—२८०  
 विनाद स्वामी—६६  
 विनोवा—२०५  
 विभीषण ६ १५ २२५  
 विमला--(नदी) ३०६  
 वियागी हरि—२८५ २८८  
 विष्णुपाश राजा—१७  
 विश्वनाथ प्रमाद मिश्र—१४२ २८१,  
 २८२ २८५ २८८  
 विश्वनाथ सिंह महाराज—३०२  
 विष्णुकाची—२२३  
 विष्णुशमा—२८२  
 वीर कवि—२८०  
 वीरशिवमन—१७  
 वदावन—१५३  
 बहुत्सहिता—८  
 बहुद ब्रह्म सहिता—१३  
 वेकटाचल—१० ११ १६  
 वेदाताचाय—१६  
 वेन—२७८  
 चराम्य सदीपनी—१५८ २२८ २८२  
 वैष्णवदास—२६६  
 वैष्णवमताज भास्कर—२२ २५६  
 २५६ २६२  
 वैष्णविज्जम शविज्जम— (भडारकर)  
 १८  
 च  
 शकरनास—२६८ २८८  
 शकराचाय—१५४ २२३  
 शठकाप आलवार—६ १० ११  
 २६८  
 शम्भुनाथ चौब—२८५  
 शरणागति गद्य—१७  
 शाता—२४८  
 शाण्डिल्य—१४२  
 शारदाराम उदासीन—२७२  
 शालिग्रामी (नदी)—३०७  
 शालोत बोद वील—२८०  
 शाह गज—१६१  
 शहाबुद्दीन गारी—१६१  
 शिवकाची—२२३  
 शिवकुमार शुक्ल—२८४  
 शिवनदन सहाय—२८१  
 शिवपूजन सहाय—२८६  
 शिवराम पाण्डेय—३२५  
 शिवलाल पाठक—२८० २८७  
 शिव ब्रतलाल—२७२  
 शिवसिंह सराज—१८८ १४४ २७६,  
 ३२४  
 शिवसिंह सेंगर—१३८ १४४, २७६,  
 ३२३ ३२४  
 शुकदेवलाल मुशी—२८०, २८७  
 श्रुगीश्रुपि वा आश्रम—१४८  
 श्रुगवरपुर—३०८  
 श्रुगाररस रहस्य—३००  
 श्रुगार सागर—८२  
 शेष—१६  
 शेष पडित—१५४ १५५  
 शेष सनानन--१५४ १५५  
 शलपूण स्वामी—१६  
 शलेशस्वामी—१६  
 शामाराम चतुर्वेदी—२६८  
 श्यामनास—२६४ २६६  
 श्यामपुर—१५३, १५७

- श्यामसुन्दरदाम—२७६ २८१, २८५, २८८  
 श्रीकातदारण—१७३, १७४, २८०, २८५, २८६  
 श्रीकृष्ण गीतावली—१५८, २८२  
 श्रीधर सिंह—२८५  
 श्री भक्ति प्रसाधिका—३२६  
 श्री भगवान—३०७  
 श्रीभाष्—१६  
 श्रीमद्रामानन्द दिग्विजय—२१  
 श्रीमानस अभिप्राय दीपक—२८०  
 श्री रगदेव—१६  
 श्रीरगधाम—८  
 श्रीरगपुरी—३०२  
 श्रीरामरहस्य त्रयाय— १० १४ १५  
 श्रीराम पडकर प्रपत्ति स्तोत्र—१५  
 श्री वचनभूषण—१७  
 श्री वष्णव सम्प्रदाय—६ १३ १५ १६ १६ २३१, २५७, २६५, २७२  
 श्रीशकुमार- २८०, २८२  
 श्री सीताराम नाम प्रताप प्रकाश - ३०३  
 श्री स्वामी गालाइ तुलसीदास के चरित्र-- १४४  
 स  
 सगीतराग कल्पद्रुम- ८३  
 सत साहित्य मण्डल (बीवानेर)- परि० ३  
 सत नामदेव की हिंदी पदावली-- २७१ २७२  
 सतोपमणि-- ३०८  
 सदीला—१४०  
 सपलकुमार—१६  
 सतवचनावली- ३०३  
 सतवाणी सग्रह-- १६२  
 सत सिंह पजावी-- २८०  
 सआदत अली खाँ--१६०, २३  
 सत्यनारायण गमा--२८३  
 सदगुरुदारण अवस्थी--२८१, २८५  
 सत्नाशिव सहिता—१०, २६८ २७४  
 सनन सम्प्रदाय—१३  
 सफदरगज अब्दुल मसूर जली खा— २३  
 ममथ गुरु रामदास—२०२  
 समस्तीपुर—३०७  
 सम्यद मसूर बेहानी—१६१  
 सम्यद सबाहुद्दीन अब्दुल रहमान—२५६  
 सम्यद सालार मसऊफ गाजी - १६१, १६० २१५, २४५  
 सरया (छपरा)--३०५  
 सरय— ११, ४३, १४२  
 सवमिद्धात सग्रह - १५४  
 सहजराम—३०७  
 सहस्रगीति—१०  
 सिकदरपुर—१४८  
 सिमरदेही—२६८  
 सिद्धान्तनरत्व दीपिका—७०  
 सिद्धात तिलक—२८०  
 सिद्धान्त पचनमात्रा—२१  
 सिद्धान्त पटल—२२  
 सिद्धान्त पचमात्रा—२६८, २६६  
 सिद्धात मुक्तावली—३०१  
 सियावार—१४



मिना—२०४  
 मिनागरण—४५  
 मिमिनी—३०८  
 मीतर—२८५  
 मीताराम—१३  
 मीताहुड—१४८  
 मीतापुर—१३८ १४०  
 मीताप्रगाद—२०६  
 मीतामर्दी—३०५ २०६  
 मीताराम कपूर—२८१  
 मीताराम गढ़वाटिया—२०३  
 मीताराम ब्याह मर्दी—३०६  
 मीतारामारण भगवानप्रगाद रुद्र-  
 कसा—२०३ ३०४  
 मीतारामीय हरिहर प्रगाद—२८०  
 २८७ ३०२  
 मुखराम गिरि—३०८  
 मुषाय—८  
 मुदरदास—२७२  
 मुदामापुरी—३००  
 मुघानर द्विनेनी—२७६  
 मुरसरि—३०२  
 मुरमुरानद—७१ ७५, ३०६  
 मुररवेत—१३६ १४०, १४२, १४४,  
 १४६ १५१ १५६ १६३, १६४  
 २०, २४५  
 मुरविशार—२६५ २६७, ३०६  
 ३२० ३२२, ३२३ ३२४  
 मुरजनाल—३१  
 मुरदास—२५, २७ १६५ २४५ ३०६

मुरपुंड—१४८  
 मुर मरिणाग—१५४  
 मीतुर (मिथिया)—३०७  
 मारा—१३७ १४५, १५३ १५७  
 १६० २८१  
 मोर्ग नामपी पर एन दुनि १५७  
 मारुवाग—३०६  
 ह  
 हंगारता—३०  
 हंगाराराम मरि—१७  
 हंगारीमना द्विनेनी—१५३  
 हडवाग—२६४  
 हनुमान—६ १३ १४ १५ १८,  
 १८  
 हनुमानपाट—१८  
 हनुमान प्रगाद पाहार—२८०, २८८  
 हनुमान माहुष—२२२, २३६  
 हनुमान मरि—२६१  
 हनुमान हनी—८१  
 हखार—३२७  
 हखारीलाल धर्मा—२८५  
 हखाला—४४, ४६  
 हरिदणाल—३०६  
 हरिजाणाल—३०६  
 हरिदासी सम्प्रदाय—१५८  
 हरिद्वार—३६  
 हरिनाम सनीन—३०४  
 हरिमऊ रगामून मिथुवेला—२०  
 हरिलाल—३०८  
 हरिवंगपुराण २४६  
 हरिमहचरी हरिया कापी—५३

हरिहरनाथ हृक्कू डा०— २८३  
 हरेराम - ३०६, ३०८  
 हरेराम जीवन--३०६  
 ह्याचाय— ४१, ४२, ५३  
 हपभारती-- ३०८  
 हपवघन— १०  
 हनेली— १५६  
 हस्तिनापुर-- २८१  
 हाजीपुर-- २८१  
 हिं लाज— २६४  
 हितहरिवंश— ३०८  
 हितापदना उपपाणवावनी - ८२

हिंदी वण्णव भक्तिवाक्य तथा काव्य  
 सिद्धान्त - २८३  
 हिंदी साहित्य-- १५३  
 हिंदी साहित्य का इतिहास— १३७,  
 १५६  
 हिंदी साहित्य को मराठी सता की दन—  
 २५७ २६८, २७२  
 हिंदुस्तान का मध्यकालीन साहित्य  
 विशेष रूप से तुलसीदास - २७८  
 हुमायू-- २३२  
 हृदयराम— १४०  
 हेमानंद— ४२ ४६





